उपन्यास और कहानी

(Novel and Story)

सीमा कुमारी

उपन्यास और कहानी

उपन्यास और कहानी
(Novel and Story)

सीमा कुमारी

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5613-4

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

उपन्यास की एक सर्वमान्य परिभाषा निर्धारित करना कठिन है। इस कठिनाई की ओर इंगित करते हुए डॉ. देवराज लिखते हैं, "उपन्यास की कोई निश्चित परिभाषा देना कठिन है। प्रायः यह अंग्रेजी में Novel शब्द का पर्यायवाची शब्द समझा जाता है। पर Novel का प्रयोग अंग्रेजी में जहां एक ओर सुसंगठित कथाओं के लिए भी किया जाता है, वहीं दूसरी ओर अतीत की स्मृतियों के लिए भी, जिन कथाओं का कोई विस्तृत रूप नहीं है।

सामाजिक जीवन की विशद् व्याख्या प्रस्तुत करने के साथ ही साथ आधुनिक उपन्यास वैयक्तिक चरित्र के सूक्ष्म अध्ययन की भी सुविधा प्रदान करता है। वास्तव में उपन्यास की उत्पत्ति की कहानी यूरोपीय पुनरुत्थान (रेनैसाँ) के फलस्वरूप अर्जित व्यक्ति स्वातंत्र्य के साथ जुड़ी हुई है। इतिहास के इस महत्वपूर्ण दौर के उपरांत मानव को, जिसे अब तक समाज की इकाई के रूप में ही देखा जाता था, वैयक्तिक प्रतिष्ठा मिली। सामंतवादी युग के सामाजिक बंधन ढीले पड़े और मानव व्यक्तित्त्व के विकास के लिए उन्मुक्त वातावरण मिला। यथार्थोन्मुख प्रवृत्तियों ने मानव चरित्र के अध्ययन के लिए भी एक नया दृष्टिकोण दिया। अब तक के साहित्य में मानव चरित्र के सरल वर्गीकरण की परंपरा चली आ रही है। पात्र या तो पूर्णतया भले होते थे या एकदम गए गुजरे। अच्छाइयों और त्रुटियों का सम्मिश्रण, जैसा वास्तविक जीवन में सर्वत्र देखने को मिलता है, उस समय के कथाकारों की कल्पना के परे की बात थी। उपन्यास

में पहली बार मानव चरित्र के यथार्थ, विशद् एवं गहन अध्ययन की संभावना देखने को मिली।

रोचकता, प्रभाव तथा वक्ता एवं श्रोता या कहानीकार एवं पाठक के बीच यथोचित सम्बद्धता बनाये रखने के लिये सभी प्रकार की कहानियों में निम्नलिखित तत्त्व महत्वपूर्ण माने गए हैं–कथावस्तु, पात्र अथवा चरित्र-चित्रण, कथोपकथन अथवा संवाद, देशकाल अथवा वातावरण, भाषा-शैली तथा उद्देश्य। कहानी के ढाँचे को कथानक अथवा कथावस्तु कहा जाता है। प्रत्येक कहानी के लिये कथावस्तु का होना अनिवार्य है, क्योंकि इसके अभाव में कहानी की रचना की कल्पना भी नहीं की जा सकती। कथानक के चार अंग माने जाते हैं-आरम्भ, आरोह, चरम स्थिति एवं अवरोह।

कहानी का संचालन उसके पात्रों के द्वारा ही होता है तथा पात्रों के गुण-दोष को उनका 'चरित्र-चित्रण' कहा जाता है। चरित्र-चित्रण से विभिन्न चरित्रों में स्वाभाविकता उत्पन्न की जाती है। संवाद कहानी का प्रमुख अंग होते हैं। इनके द्वारा पात्रों के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व एवं अन्य मनोभावों को प्रकट किया जाता है। कहानी में वास्तविकता का पुट देने के लिये देशकाल अथवा वातावरण का प्रयोग किया जाता है। प्रस्तुतीकरण के ढंग में कलात्मकता लाने के लिए उसको अलग-अलग भाषा व शैली से सजाया जाता है। कहानी में केवल मनोरंजन ही नहीं होता, अपितु उसका एक निश्चित उद्देश्य भी होता है।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करती हूँ। आशा करती हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**उपन्यास**	**1**
	हिंदी के प्रारंभिक उपन्यास	8
	उपन्यास के तत्त्व	9
	हिन्दी उपन्यास का इतिहास	19
	प्रेमचन्द युग	22
2.	**कहानी**	**33**
	परिभाषा	34
	कहानी के तत्त्व	35
	हिन्दी कहानी का इतिहास	35
	अन्य रचनाकार	44
3.	**कर्मभूमिः प्रेमचंद**	**48**
	उपन्यास के पात्र	48
	राजनीतिक उपन्यास	48
	समस्या	49
4.	**क्षमादान प्रेमचंद**	**52**
	प्रेम में परमेश्वर	67
5.	**गोदान उपन्यास**	**73**

6. छोटा जादूगर : जयशंकर प्रसाद 82
7. कंकालः जयशंकर प्रसाद 87
8. अपराधीः जयशंकर प्रसाद 149
9. इंद्रजालः जयशंकर प्रसाद 154
10. गुनाहों का देवताः धर्मवीर भारती 163

1

उपन्यास

उपन्यास 'उप' और 'न्यास' से मिलकर बना है। 'उप' का अर्थ समीप और 'न्यास' का अर्थ है रचना अर्थात उपन्यास वह है जिसमें मानव जीवन के किसी तत्त्व को उक्तिउक्त के रूप में समन्वित कर समीप रखा जाए।

इसमें उपन्यासकार मानवजीवन से संबंधित सुखद एवं दुखद किन्तु मर्मस्पर्शी घटनाओं को निश्चित तारतम्य के साथ चित्रित करता है।

संस्कृत लक्षण ग्रंथों में भी उपन्यास का अधिकाधिक प्रयोग हुआ है। किन्तु उस उपन्यास शब्द और आज के उपन्यास शब्द में भिन्नता है। संस्कृत साहित्य में एक स्थान पर कहा गया है, "उपन्यासः प्रसाधनम्" अर्थात प्रसन्नता प्रदान करने वाली कृति उपन्यास है। किन्तु संस्कृत नाट्य शास्त्र में उपन्यास को प्रतिमुख संधि का एक उपभेद माना गया है, जिसकी व्याख्या में कहा गया है 'उपपति वृतहथ उपन्यासः प्रकृतितः' अर्थात किसी अर्थ को उसके उक्तिउक्त अर्थ में उपस्थित करने को उपन्यास कहा जाता है। किन्तु आज उपन्यास शब्द के अन्तर्गत गद्य द्वारा अभिव्यक्त सम्पूर्ण कल्पना प्रसूत कथा साहित्य में ग्रहण किया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त उपन्यास शब्द और आधुनिक उपन्यास शब्द में जमीन आसमान का अंतर है।

इसमें उपन्यासकार मानव जीवन से संबंधित सुखद एवं दुखद किन्तु मर्मस्पर्शी घटनाओं को निश्चित तारतम्य के साथ चित्रित करता है। उपन्यास एक ऐसी लोकप्रिय साहित्यिक विधा है जिसे मानव जीवन का यथार्थ प्रतिबिंब कहा

जा सकता है। वस्तुत: उपन्यास में एक ऐसी विस्तृत कथा होती है, जो अपने भीतर अन्य गौण कथाएं समेटे रहती है। इस कथा के भीतर समाज और व्यक्ति की विविध अनुभूतियां और संवेदनाएं, अनेक प्रकार के दृश्य और घटनाएं और बहुत प्रकार के चरित्र हो सकते हैं और यह कथा विभिन्न शैलियों में कही जा सकती है।

इस प्रसंग में आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी ने अपनी पुस्तक "आधुनिक साहित्य" में लिखा है कि उपन्यास में आजकल गद्यात्मक कृति का अर्थ लिया जाता है। पद्यबद्ध उपन्यास नहीं हुआ करते। उपन्यास के विकास से गद्य का विकास का भी संबंध है। प्राय: वही परिस्थिति गद्य के विकास में सहायक हुई हैं, जो उपन्यास के विकास में योग दे रही थीं। यूरोप में गद्य उपन्यासों के पहले कुछ प्रेमाख्यान कविताएं प्रचलित थीं। उन्हें ही आधुनिक उपन्यास की जननि कहा जा सकता है।"

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार "उपन्यास आधुनिक युग की देन है। नए गद्य के प्रचार के साथ-साथ उपन्यास प्रचार हुआ है। आधुनिक उपन्यास केवल कथा मात्र नहीं है और पुरानी कथाओं और आख्यायिकाओं की भांति कथा-सूत्र का बहाना लेकर उपमाओं, रूपकों, दीपकों और 'लेषों की छटा और सरस पदों में गुम्फित पदावली की छटा दिखाने का कौशल भी नहीं है। यह आधुनिक वैक्तिकतावादी दृष्टिकोण का परिणाम है।"

डॉ. श्याम सुंदर दास उपन्यास को मानव के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा मानते हैं, किन्तु मुंशी प्रेमचंद जी कहते हैं, "मैं उपन्यास को मानव-जीवन का चित्र समझता हूं। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मुख्य स्वर है।"

क्षेमेन्द्र सुमन के अनुसार उपन्यास मानव जीवन की आन्तरिक और बाह्य परिस्थितियों का उसके मन के संघर्ष-विघर्ष का, उसके चारो ओर के वातावरण और समाज का काल्पनिक चित्र है, किन्तु काल्पनिक होता हुआ भी वह यथार्थ है। उसमें जीवन के स्त्य की अभिव्यक्ति होती है।

डॉ, जे. बी. क्रिस्टले लिखते हैं, "उपन्यास जीवन का विशाल दर्पण है और इसका विस्तार साहित्य के किसी भी रूप से बड़ा है।" इसी प्रकार रौल फ्रांस के अनुसार "उपन्यास केवल काल्पनिक गद्य नहीं है वरन वह मानव जीवन का गद्य है। ऐसी प्रथम कला जिसने सम्पूर्ण मानव को लेने और उसे अभिव्यंजना देने का प्रयास किया है, लेकिन इसके विपरीत विलियम हेनरी हेडसन के

अनुसार, "मानव और मानवीय भावों से तथा क्रियाओं की विस्तृत चित्रवलि ने नर एवं नारियों की सार्वकालिक, सार्वदेशिक रुचि ही उपन्यास के अस्तित्त्व का कारण है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यास की एक सर्वमान्य परिभाषा निर्धारित करना कठिन है। इस कठिनाई की ओर इंगित करते हुए डॉ. देवराज लिखते हैं, "उपन्यास की कोई निश्चित परिभाषा देना कठिन है। प्रायः यह अंग्रेजी में Novel शब्द का पर्यायवाची शब्द समझा जाता है। पर Novel का प्रयोग अंग्रेजी में जहां एक ओर सुसंगठित कथाओं के लिए भी किया जाता है वहीं दूसरी ओर अतीत की स्मृतियों के लिए भी, जिन कथाओं का कोई विस्तृत रूप नहीं है।

देवकी नंदन खत्री जी का चंद्रकांता और उसकी संतति, प्रेमचंद जी का सेवासदन तथा अज्ञेय की शेखर एक जीवनी के लिए हम एक शब्द उपन्यास का प्रयोग करते हैं। जो भी हो, जिस व्यक्ति ने उपन्यास शब्द का प्रयोग Novel के पर्यायवाची रूप में किया होगा वह अवश्य ही साहित्य तत्त्वज्ञ और उसके नूतन रूप विधान का मर्मज्ञ होगा। उप = निकट, निकट माने समीप और न्यास = रखने, अर्थात स्थापित करना अर्थात उपन्यास शब्द से यह ध्वनि निकलती है कि लेखक इसके द्वारा निकट की कोई बात करना चाहता है। यद्यपि उपर्युक्त परिभाषाओं में एक रूपता नहीं है तथापि प्रायः सभी विद्वान उपन्यास को मानव जीवन का काल्पनिक या कलात्मक चित्र मानते हैं। अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि उपन्यास मानव जीवन की कथा है। उपन्यास गद्य लेखन की एक विधा है।

परिचय

अर्नेस्ट ए. बेकर ने उपन्यास की परिभाषा देते हुए उसे गद्यबद्ध कथानक के वास्तव में द्वारा जीवन तथा समाज की व्याख्या का सर्वोत्तम साधन बताया है। यों तो विश्वसाहित्य का प्रारंभ ही संभवतः कहानियों से हुआ और वे महाकाव्यों के युग से आज तक के साहित्य का मेरुदंड रही हैं, फिर भी उपन्यास को आधुनिक युग की देन कहना अधिक समीचीन होगा। साहित्य में गद्य का प्रयोग जीवन के यथार्थ चित्रण का द्योतक है। साधारण बोलचाल की भाषा द्वारा लेखक के लिए अपने पात्रों, उनकी समस्याओं तथा उनके जीवन की व्यापक पृष्ठभूमि से प्रत्यक्ष संबंध स्थापित करना आसान हो गया है। जहाँ महाकाव्यों में

कृत्रिमता तथा आदर्शोन्मुख प्रवृत्ति की स्पष्ट झलक देखने को मिलती है, आधुनिक उपन्यासकार जीवन की विशृंखलताओं का नग्न चित्रण प्रस्तुत करने में ही अपनी कला की सार्थकता देखता है।

यथार्थ के प्रति आग्रह का एक अन्य परिणाम यह हुआ कि कथा साहित्य के अपौरुषेय तथा अलौकिक तत्त्व, जो प्राचीन महाकाव्यों के विशिष्ट अंग थे, पूर्णतया लुप्त हो गए। कथाकार की कल्पना अब सीमाबद्ध हो गई। यथार्थ की परिधि के बाहर जाकर मनचाही उड़ान लेना उसके लिए प्रायः असंभव हो गया। उपन्यास का आविर्भाव और विकास वैज्ञानिक प्रगति के साथ हुआ। एक ओर जहाँ विज्ञान ने व्यक्ति तथा समाज को सामन्य धरातल से देखने तथा चित्रित करने की प्रेरणा दी वहीं दूसरी ओर उसने जीवन की समसयाओं के प्रति एक नए दृष्टिकोण का भी संकेत किया। यह दृष्टिकोण मुख्यतः बौद्धिक था। उपन्यासकार के ऊपर कुछ नए उत्तरदायित्व आ गए थे। अब उसकी साधना कला की समस्याओं तक ही सीमित न रहकर व्यापक सामाजिक जागरूकता की अपेक्षा रखती थी। वस्तुतः आधुनिक उपन्यास सामाजिक चेतना के क्रमिक विकास की कलात्मक अभिव्यक्ति है। जीवन का जितना व्यापक एवं सर्वांगीण चित्र उपन्यास में मिलता है उतना साहित्य के अन्य किसी भी रूप में उपलब्ध नहीं।

सामाजिक जीवन की विशद व्याख्या प्रस्तुत करने के साथ ही साथ आधुनिक उपन्यास वैयक्तिक चरित्र के सूक्ष्म अध्ययन की भी सुविधा प्रदान करता है। वास्तव में उपन्यास की उत्पत्ति की कहानी यूरोपीय पुनरुत्थान (रेनैसाँ) के फलस्वरूप अर्जित व्यक्ति स्वातंत्रय के साथ लगी हुई है। इतिहास के इस महत्वपूर्ण दौर के उपरांत मानव को, जो अब तक समाज की इकाई के रूप में ही देखा जाता था, वैयक्तिक प्रतष्ठा मिली। सामंतवादी युग के सामाजिक बंधन ढीले पड़े और मानव व्यक्तित्त्व के विकास के लिए उन्मुक्त वातावरण मिला। यथार्थोन्मुख प्रवृत्तियों ने मानव चरित्र के अध्ययन के लिए भी एक नया दृष्टिकोण दिया। अब तक के साहित्य में मानव चरित्र के सरल वर्गीकरण की परंपरा चली आ रही है। पात्र या तो पूर्णतया भले होते थे या एकदम गए गुजरे। अच्छाइयों और त्रुटियों का सम्मिश्रण, जैसा वास्तविक जीवन में सर्वत्र देखने को मिलता है, उस समय के कथाकारों की कल्पना के परे की बात थी। उपन्यास में पहली बार मानव चरित्र के यथार्थ, विशद एवं गहन अध्ययन की संभावना देखने को मिली।

अंग्रेजी के महान् उपन्यासकार हेनरी फील्डिंग ने अपनी रचनाओं को गद्य के लिखे गए व्यंग्यात्मक महाकाव्य की संज्ञा दी। उन्होंने उपन्यास की इतिहास से तुलना करते हुए उसे अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण कहा। जहाँ इतिहास कुछ विशिष्ट व्यक्तियों एवं महत्वपूर्ण घटनाओं तक ही सीमित रहता है, उपन्यास प्रदर्शित जीवन के सत्य, शाश्वत और संर्वदेशीय महत्व रखते हैं। साहित्य में आज उपन्यास का वस्तुतः वही स्थान है, जो प्राचीन युग में महाकाव्यों का था। व्यापक सामाजिक चित्रण की दृष्टि से दोनों में पर्याप्त साम्य है। लेकिन जहाँ महाकाव्यों में जीवन तथा व्यक्तियों का आदर्शवादी चित्र मिलता है, उपन्यास, जैसा फील्डिंग की परिभाषा से स्पष्ट है, समाज की आलोचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करता है। उपन्यासकार के लिए कहानी साधन मात्र है, साध्य नहीं। उसका ध्येय पाठकों का मनोरंजन मात्र भी नहीं। वह सच्चे अर्थ में अपने युग का इतिहासकार है, जो सत्य और कल्पना दोनों का सहारा लेकर व्यापक सामाजिक जीवन की झाँकी प्रस्तुत करता है।

उपन्यासिका

उपन्यास के समानांतर इधर उपन्यासिका नामक नवीन गद्य विधा का सूत्रपात हुआ है

हिंदी साहित्य में उपन्यास

हिंदी साहित्य में उपन्यास शब्द के प्रथम प्रयोग के संदर्भ में गोपाल राय लिखते हैं कि- 'हिन्दी में नॉवेलके अर्थ में उपन्यास पद का प्रथम प्रयोग 1875 ई. में हुआ।'

प्रथम उपन्यास

बाणभट्ट की कादम्बरी को विश्व का प्रथम उपन्यास माना जा सकता है। कुछ लोग जापानी भाषा में 1007 ई. में लिखा गया "जेन्जी की कहानी" नामक उपन्यास को दुनिया का सबसे पहला उपन्यास मानते हैं। इसे मुरासाकी शिकिबु नामक एक महिला ने लिखा था। इसमें 54 अध्याय और करीब 1000 पृष्ठ हैं। इसमें प्रेम और विवेक की खोज में निकले एक राजकुमार की कहानी है।

यूरोप का प्रथम उपन्यास सेर्वैन्टिस का "डोन क्विक्सोट" माना जाता है, जो स्पेनी भाषा का उपन्यास है। इसे 1605 में लिखा गया था।

अंग्रेजी का प्रथम उपन्यास होने के दावेदार कई हैं। बहुत से विद्वान 1678 में जोन बुन्यान द्वारा लिखे गए "द पिल्ग्रिम्स प्रोग्रेस" को पहला अंग्रेजी उपन्यास मानते हैं।

भारतीय भाषाओं में उपन्यास

जिसे बँगला और हिंदी में उपन्यास कहा जाता है गोपाल राय के अनुसार उसे 'उर्दू' में 'नाविल', मराठी में 'कादम्बरी' तथा गुजराती में 'नवल कथा' की संज्ञा प्राप्त हुई है।'

हिन्दी का प्रथम उपन्यास

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार परीक्षा गुरु हिन्दी का प्रथम उपन्यास है। इसके लेखक लाला श्रीनिवास दास हैं। 'देवरा नी जेठानी की कहानी' (लेखक-पंडित गौरीदत्त य सन् 1870)। श्रद्धाराम फिल्लौरी की भाग्यवती को भी हिन्दी के प्रथम उपन्यास होने का श्रेय दिया जाता है।

हिन्दी उपन्यास

हिंदी उपन्यास का आरम्भ श्रीनिवासदास के 'परीक्षा गुरु' (1843 ई.) से माना जाता है। हिंदी के आरम्भिक उपन्यास अधिकतर ऐयारी और तिलस्मी किस्म के थे। अनूदित उपन्यासों में पहला सामाजिक उपन्यास भारतेंदु हरिश्चंद्र का 'पूर्णप्रकाश' और चंद्रप्रभा नामक मराठी उपन्यास का अनुवाद था। आरम्भ में हिंदी में कई उपन्यास बँगला, मराठी आदि से अनुवादित किए गए।

हिंदी में सामाजिक उपन्यासों का आधुनिक अर्थ में सूत्रपात प्रेमचंद (1880-1936) से हुआ। प्रेमचंद पहले उर्दू में लिखते थे, बाद में हिंदी की ओर मुड़े। आपके 'सेवासदन', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'गबन', 'निर्मला', 'गोदान', आदि प्रसिद्ध उपन्यास हैं, जिनमें ग्रामीण वातावरण का उत्तम चित्रण है। चरित्र-चित्रण में प्रेमचंद गांधी जी के 'हृदय परिवर्तन' के सिद्धांत को मानते थे। बाद में उनका रुझान समाजवाद की ओर भी हुई, ऐसा जान पड़ता है। कुल मिलाकर उनके उपन्यास हिंदी में आधुनिक सामाजिक सुधारवादी विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं।

जयशंकर प्रसाद के 'कंकाल' और 'तितली' उपन्यासों में भिन्न प्रकार के समाजों का चित्रण है, परंतु शैली अधिक काव्यात्मक है। प्रेमचंद की ही शैली

में, उनके अनुकरण से विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक, सुदर्शन, प्रताप नारायण श्रीवास्तव, भगवती प्रसाद वाजपेयी आदि अनेक लेखकों ने सामाजिक उपन्यास लिखे, जिनमें एक प्रकार का आदर्शोन्मुख यथार्थवाद अधिक था। परंतु पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', ऋषभचरण जैन, चतुरसेन शास्त्री आदि ने फ्रांसीसी ढंग का यथार्थवाद और प्रकृतवाद (नैचुरॉलिज्म) अपनाया और समाज की बुराइयों का दंभस्फोट किया। इस शेली के उपन्यासकारों में सबसे सफल रहे 'चित्रलेखा' के लेखक भगवतीचरण वर्मा, जिनके 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' और 'भूले-बिसरे चित्र' बहुत प्रसिद्ध हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क की 'गिरती दीवारें' का भी इस समाज की बुराइयों के चित्रणवाली रचनाओं में महत्वपूर्ण स्थान है। अमृतलाल नागर की 'बूँद और समुद्र' इसी यथार्थवादी शैली में आगे बढ़कर आंचलिकता मिलाने वाला एक श्रेष्ठ उपन्यास है। सियाराम शरण गुप्त की नारी' की अपनी अलग विशेषता है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास जैनेंद्रकुमार से शुरू हुए। 'परख', 'सुनीता', 'कल्याणी' आदि से भी अधिक आप के 'त्यागपत्र' ने हिंदी में बड़ा महत्वपूर्ण योगदान दिया। जैनेंद्र जी दार्शनिक शब्दावली में अधिक उलझ गए। मनोविश्लेषण में स. ही. वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने अपने 'शेखर–एक जीवनी', 'नदी के द्वीप', 'अपने-अपने अजनबी' में उत्तरोत्तर गहराई और सूक्ष्मता उपन्यासकला में दिखाई। इस शैली में लिखनेवाली बहुत कम मिलते हैं। सामाजिक विकृतियों पर इलाचंद्र जोशी के 'संन्यासी', 'प्रेत और छाया', 'जहाज का पंछी' आदि में अच्छा प्रकाश डाला गया है। इस शैली के उपन्यासकारों में धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' और नरेश मेहता का 'वह पथबंधु था' उत्तम उपलब्धियाँ हैं।

ऐतिहासिक उपन्यासों में हजारी प्रसाद द्विवेदी का 'बाणभट्ट की आत्मकथा' एक बहुत मनोरंजक कथा प्रयोग है जिसमें प्राचीन काल के भारत को मूर्त किया गया है। वृंदावनलाल वर्मा के 'महारानी लक्ष्मी बाई', 'मृगनयनी' आदि में ऐतिहासिकता तो बहुत है, रोचकता भी है, परंतु काव्यमयता द्विवेदी जी जैसी नहीं है। राहुल सांकृत्यायन (1895-1963), रांगेय राघव (1922-1963) आदि ने भी कुछ संस्मरणीय ऐतिहासिक उपन्यास दिए हैं।

यथार्थवादी शैली सामाजिक यथार्थवाद की ओर मुड़ी और 'दिव्या' और 'झूठा सच' के लेखक भूतपूर्व क्रांतिकारी यशपाल और 'बलचनमा' के लेखक नागार्जुन इस धारा के उत्तम प्रतिनिधि हैं। कहीं-कहीं इनकी रचनाओं में प्रचार का आग्रह बढ़ गया है। हिंदी की नवीनतम विधा आंचलिक उपन्यासों की है, जो शुरु होती है फणीश्वरनाथ 'रेणु' के 'मैला आँचल' से और उसमें अब कई

लेखक हाथ आजमा रहे हैं, जैसे राजेंद्र यादव, मोहन राकेश, शैलेश मटियानी, राजेंद्र अवस्थी, मनहर चौहान, शिवानी इत्यादि।

हिंदी के प्रारंभिक उपन्यास

हिंदी के मौलिक कथा साहित्य का आरम्भ ईशा अल्लाह खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' से होता है। भारतीय वातावरण में निर्मित इस कथा में लौकिक परंपरा के स्पष्ट तत्त्व दिखाई देते हैं। खाँ साहब के पश्चात पं. बालकृष्ण भट्ट ने 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान और एक सुजान' नामक उपन्यासों का निर्माण किया। इन उपन्यासों का विषय समाज सुधार है।

भारतेंदु तथा उनके सहयोगियों ने राजनीतिज्ञ या समाज सुधारक के रूप में लिखा। बाबू देवकीनंदन सर्वप्रथम ऐसे उपन्यास लेखक थे जिन्होंने विशुद्ध उपन्यास लेखक के रूप में लिखा। उन्होंने कहानी कहने के लिए ही कहानी कही। वह अपने युग के घात-प्रतिघात से प्रभावित थे। हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में खत्री जी ने जो परंपरा स्थापित की वह एकदम नई थी। प्रेमचंद ने भारतेंदु द्वारा स्थापित परंपरा में एक नई कड़ी जोड़ी। इसके विपरीत बाबू देवकीनंदन खत्री ने एक नई परंपरा स्थापित की। घटनाओं के आधार पर उन्होंने कहानियों की एक ऐसी शृंखला जोड़ी जो कहीं टूटती नजर नहीं आती। खत्री जी की कहानी कहने की क्षमता को हम ईशाकृत 'रानी केतकी की कहानी' के साथ सरलतापूर्वक संबद्ध कर सकते हैं।

वास्तव में कथा साहित्य के इतिहास में खत्री जी की 'चंद्रकांता' का प्रवेश एक महत्वपूर्ण घटना है। यह हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास है। खत्री जी के उपन्यास साहित्य में भारतीय संस्कृति की स्पष्ट छाप देखने को मिलती है। मर्यादा आपके उपन्यासों का प्राण है।

उपन्यास साहित्य की विकासयात्रा में पं. किशोरीलाल गोस्वामी के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। यह उपन्यासों की दिशा में घर करके बैठ गए। आधुनिक जीवन की विषमताओं के चित्र आपके जासूसी उपन्यासों में पाए जाते हैं। गोस्वामी जी के उपन्यास साहित्य में वासना का झीना परदा प्रायः सभी कहीं पड़ा हुआ है।

जासूसी उपन्यास लेखकों में बाबू गोपालराम गहमरी का नाम महत्वपूर्ण है। गहमरी जी ने अपने उपन्यासों का निर्माण स्वयं अनुभव की हुई घटनाओं के आधार पर किया है, इसलिए कथावस्तु पर प्रामाणिकता की छाप है। कथावस्तु

हत्या या लाश के पाए जाने के विषयों से संबंधित है। जनजीवन से संपर्क होने के कारण उपन्यासों की भाषा में ग्रामीण प्रयोग प्राय: मिलते हैं।

हिंदी के आरम्भिक उपन्यास लेखकों में बाबू हरिकृष्ण जौहर का तिलस्मी तथा जासूसी उपन्यास लेखकों में महत्वपूर्ण स्थान है। तिलस्मी उपन्यासों की दिशा में जौहर ने बाबू देवकीनंदन खत्री द्वारा स्थापित उपन्यास परंपरा को विकसित करने में महत्वपूर्ण योग दिया है। आधुनिक जीवन की विषमाओं एवं सभ्य समाज के यथार्थ जीवन का प्रदर्शन करने के लिए ही बाबू हरिकृष्ण जौहर ने जासूरी उपन्यासों का निर्माण किया है। 'काला बाघ' और 'गवाह गायब' आपके इस दिशा में महत्वपूर्ण उपन्यास हैं।।

हिंदी के आरम्भिक उपन्यासों का निर्माण लोकसाहित्य की आधारशिला पर हुआ। कौतूहल और जिज्ञासा के भाव ने इसे विकसित किया। आधुनिक जीवन की विषमताओं ने जासूसी उपन्यासों की कथा को जीवन के यथार्थ में प्रवेश कराया। असत्य पर सत्य की सदैव ही विजय होती है, यह सिद्धांत भारतीय संस्कृति का केंद्रबिंदु है। हिंदी के आरम्भिक उपन्यासों में यह प्रवृत्ति मूल रूप से पाई जाती है।

उपन्यास के तत्त्व

कथा वास्तु उपन्यास का प्राण होता है, इसकी कथावस्तु जीवन से सम्बन्धित होते हुये भी अधिकतर काल्पनिक होते है, किन्तु काल्पनिक कथानक स्वाभाविक एवं यथार्थ प्रतीत हो अन्यथा पाठक उसके साथ तादात्म्य (ताल –मेल) नहीं कर सकता। उपन्यासकार को यथार्थ जीवन से सम्बन्धित केवल विश्वसनीय और सम्भव घटनाओं काो ही अपनी रचनाओं में स्थान देना चाहिए, तथा तथ्यों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए यही गुण उपन्यास को कहानी से अलग करती है।

इसमें एक कथा मुख्य होती है तथा अन्य कथाएँ गौन हैं, जो की मुख्य कथा को गति देती रहती है, किन्तु गौण कथा मुख्या कथा की सहायक तथा विकास करने वाली होनी चाहिए तात्पर्य यह है कि मुख्य और प्रासंगिक कथाएं परस्पर सम्बंध कोतुहल और रोचकता के साथ–साथ संगठन भी अनिवार्य है upanyaas की सफलता इसी में है कि सभी घटनाएं एक सूत्र में पिरोई हुई हों तथा उनमे कारण शृंखला बंध जाए।

पात्र एवं चरित्र-चित्रण

upanyaas का मुख्य विषय मानव और उसका चरित्र है उपन्यास में पात्रों का चरित्र–चित्र्ण क्रियाकलापों के द्वारा होना चाहिए, इसी में उपन्यास की सफलता है। वैसे उपन्यासकार अपनी और से भी चरित्र-चित्रण करने में स्वतंत्र होता है। उपन्यास में पात्र दो प्रकार के होते हैं प्रधान पात्र और गौण पात्र।

प्रधान पात्र

शुरू से लेकर अंत तक उपन्यास के कथानक को गति देते हैं, लक्ष्य की ओर अग्रसर करते हैं। यह पात्र कथा के नायक होते हैं, इन्हीं के इर्द–गिर्द संपूर्ण कथा चलती रहती है।

गौण पात्र

प्रधान पात्रो को सहायक बनाकर आते हैं, इसका कार्य कथानक को गति देना वातावरण की गंभीरता को काम करना वातावरण की सृष्टि करना तथा अन्य पत्रों के चरित्र पर प्रकाश डालना भी होता है। बीच–बीच में उपस्थित होकर यह पात्र प्रधान पात्र अथवा कथावस्तु को गति देते रहते हैं। कभी यह हंसाने का कार्य करते हैं तो कभी दर्शकों का मनोरंजन करने के लिए उपस्थित होते हैं।

संवाद

संवादों का प्रयोग कथानक को गति देना नाटकीयता लाना पात्रों के चरित्र, का उद्‌घाटन करना, वातावरण की सृष्टि करना आदि कई उद्देश्यों से होता है। सम्बन्ध मुख्य रूप से कथोपकथन (संवाद) पात्रों के भावों-विचरों, संवेदनाओं मनोवृतियों आदि को व्यक्त करने में सहायक होते हैं। कथोपकथन की कथा और विषय पात्रों के अनुकूल होनी चाहिए, एक साफल उपन्यास के सफल कथोपकथन, कीतुहल, वर्धक नाटकीयता से पूर्ण सउद्देश्य व सभाविकता होते हैं, उनमे मुश्किल नहीं होती है।

वातवरण

देशकाल वातावरण का निर्माण प्रत्येक upanyaas में आवश्यक है। पाठक उपन्यास के युग और उसकी परिस्थिति से बहुत दूर होता है, उन्हें पूरी तरह समझने के लिए उसे उपन्यासकार के वर्णन का सहारा लेना पड़ता है इसीलिए

पाठक के प्रति उपन्यासकार का दायित्व बढ़ जाता है। इसके अतिरिक्त लेखक को पात्रों की मानसिकता स्थिति-परिस्थतियों आदि का भी वर्णन करना पड़ता है। पात्रों के बाह्य आंतरिक वातावरण का सफल चित्रण लेखक तभी कर सकता है जब वह अपने देश काल, वेश -भूषा आदि के बारे में पूरी जानकारी रखता है।

भाषा शैली

upanyaas में वास्तु अभिव्यक्ति कला का विशेष महत्व होता है। भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है और शैली उसके कथन का ढंग। भाषा के द्वारा उपन्यासकार अपनी भाषा के द्वारा वह अपनी भाषा पाठक तक सम्प्रेषण करता है।

अत: उसका सुबोध होना आवश्यक है ताकि पाठक लेखन के भावों एवं विचारों के साथ ही उसका साहित्य होना भी आवश्यक है, उसमें अलंकार, मुहावरे लोकोक्ति आदि का यथा स्थान प्रयोग होना चाहिए। कथावस्तु की अभिव्यक्ति की अनेक शैलियां हो सकती हैं, ऐतिहासिक उपन्यास अधिकतर कथ्यात्मक शैली में लिखे जाते हैं, वर्तमान जीवन से सम्बन्धित upanyaas आत्म कथ्यात्मक शैली में अधिक सजीव हो सकते हैं इसके अतिरिक्त पूर्व दीप्ती डायरी शैली आदि का प्रयोग भी उपन्यास में किय जाता है।

जीवन दर्शन व उद्देश्य

हमारी गद्य साहित्य सृष्टि के पीछे कोई न कोई भारतीय मान्यता या उद्‌देश्य आदि आवश्यक रहता है। एक अनुभवी उपन्यासकार का जीवन और जगत प्रति उसकी प्रत्येक समस्या के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण होता है, जो किसी न किसी रूप में उपन्यास के पात्रों व घटनाओं के माध्यम से अभिव्यक्ति पतड़े है, यही उपन्यासकार का उद्‌देश्य या अभिव्यक्ति जीवन दर्शन होता है। अत: इसकी अभिव्यक्ति शोषक ढंग से होनी चाहिए तभी वह प्रभावशाली सिद्ध होगा।

हिंदी उपन्यास की शुरुआत और 'परीक्षा गुरु'

लाला श्रीनिवासदास व्यवसाय से एक व्यापारी थे और अपने जीवन अनुभव को उन्होंने बखूबी रूप से इस उपन्यास में ढाला हैं। परीक्षा-गुरु

मदनमोहन नाम के एक रईस व्यापारी की कहानी है। वह दिल से अच्छा इन्सान है पर गलत संगत में आकर वह पतन को न्योता देता है। कर्जे में डूब जाने की वजह से उसे कारावास भुगतना पड़ता है और उसका वकील दोस्त ब्रजकिशोर उसे मुक्ति दिलाता है जिसके बाद उसका हृदय-परिवर्तन होता है।

इस उपन्यास को 41 सर्गो में बाँटा गया हैं। इस दौरान लिखे गए उपन्यासों के कुछ सामान्य लक्षण निम्नलिखित हैं–

1. कर्म के सिद्धांत में अत्यंत श्रद्धा
2. धर्म का पुनर्वास
3. पाप कितने गहरे हैं, उसके हिसाब से उसका फल मिलना,
4. राजा एवं खुद के धर्म के प्रति एक तरह का भक्तिभाव (डपीतं 1973),

आखरी लक्षण के अलावा परीक्षा-गुरु में और सभी लक्षण मौजूद है। यह उपन्यास अंग्रेज उपनिवेश के दौरान लिखा गया था। उपन्यास को एक आधुनिक स्वरूप माना जाता है और जहां तक हिंदी उपन्यास की बात है, तो हम कह सकते हैं कि हिंदी उपन्यास की गाथा परंपरा और आधुनिकता के बीच के द्वंद्व की गाथा है। परीक्षा-गुरु में भी यह द्वंद्व साफ दिखाई देता है।

आधुनिकता की पहली निशानी हैं उपन्यास का समय, जो की सिर्फ पाँच दिनों तक सीमित है। पुराने कथानकों की तरह पूरी जिंदगी की बात करने की जगह यहाँ मदनमोहन के जीवन के पाँच महत्वपूर्ण दिनों का चित्रण है। मध्यकालीन रूमानी कथाओं की जगह वास्तविक चरित्रों ने ली है और भाषा-कर्म विविध रंगों से खिला है। उपन्यास की भाषा में भी परंपरा और आधुनिकता का द्वंद्व दिखाई दे पड़ता है। अंग्रेजी पात्रों की प्रस्तुति के कारण कुछ अंग्रेजी शब्दों का उपयोग है, तो साथ ही प्रारंभिक हिंदी, एवं संस्कृत और फारसी का भी उपयोग है। श्रीनिवासदास भाषा-प्रयोजन के प्रति अति-जागरूक मालूम होते हैं और अलग-अलग परिस्थितियों में वह उचित भाषा का प्रयोग करना जानते हैं। जैसे कि नैतिक और उपदेशात्मक सर्गो में संस्कृत-फारसी का ज्यादा उपयोग हैं, तो सामान्य बातचीत में बोल-चाल की हिंदी का उपयोग है।

जहाँ तक चरित्रों की बात है, तो प्रस्तुत उपन्यास पहली बार चरित्रों को उनके मनुष्य-स्वरूप में समझने की कोशिश करता है। वसुधा दालमिया ने अपने लेख में निर्देश किया है कि कैसे परंपरा और आधुनिकता का द्वंद्व चरित्रों को एक-दूसरे के ध्रुवीय विपरीत रखकर दिखाया गया है (Dalmia, 2008)।

मदनमोहन को अंग्रेजी जीवन-पद्धति अपनाते हुए दिखाया हैं, जो उसके पतन का कारण बनती है, जबकि ब्रजकिशोर के चरित्र का आदर्श चित्रण किया गया है। वह समझदार है और वह अंग्रेजी जीवन-पद्धति का अँधा अनुकरण करने में नहीं मानता, बल्कि अंग्रेजों से जो चीजे सीखने लायक हैं, वही अपनाता है। ब्रजकिशोर कचेरी (कोर्ट) में काम करता है, जो की एक आधुनिक और उपनिवेशी संस्था है, मगर अपनी परंपरा को वह बिलकुल नहीं भूला। जहाँ तक स्त्री-पात्रों का सवाल हैं, उपन्यास अपने स्त्री-चरित्रों को उतना उजागर नहीं कर पाया। मदनमोहन की पत्नी उसको कारावास होने पर उसे छोड़ कर चली जाती है, पर जब मदनमोहन का हृदय-परिवर्तन होता है, तब वह वापस भी आ जाती है। इसके सिवा उसके हिस्से में ज्यादा कुछ नहीं है करने को।

परीक्षा-गुरु का मुख्य उद्देश्य नैतिक मूल्यों का चित्रण एवं शिक्षण था। कलाकृति बनाने का मोह इसमें इतना नहीं मौजूद जितना उपदेश मौजूद हैं। यह मानसिकता आनेवाले युग में बदल जाएगी।

परीक्षा-गुरु पर अनेक, विध-विध कथाओं व् पुस्तकों का असर था। श्रीनिवासदास अंग्रेजी उपन्यासकार ओलिवर गोल्डस्मिथ से प्रभावित थे और साथ ही संस्कृत साहित्य की नीति-कथाओ और जातक-कथाओं से भी उन्होंने उतना ही ग्रहण किया था। इससे भी साफ नजर आता है कि परीक्षा-गुरु पर आधुनिकता व व परंपरा दोनों का प्रभाव था।

वास्तववादी धरातल पर लिखे गए इस उपन्यास के बाद उपन्यास की वास्तु एवं रूप में किस प्रकार और किस तरह के बदलाव आए? किस ऐतिहासिक संदर्भो ने नए उपन्यास को जन्म दिया?

सामाजिक वास्तव या आदर्श यथार्थवाद? प्रेमचंद युग में हिंदी उपन्यास के प्रश्न

लाला श्रीनिवासदास के समय के कुछ नामांकित उपन्यासकारों में बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्ण दास, किशोरीलाल गोस्वामी, देवकीनंदन खत्री, गोपालराम गह्मारी और भारतेंदु हरिश्चंद्र का नाम लिया जा सकता है। उनके बाद की पीढ़ी में आए धनपतराय उर्फ 'प्रेमचंद', जो उर्दू और हिंदी दोनों भाषाओं में लिखते थे। भारतेंदु युग में हिंदी को हिंदुओं की भाषा जाहिर कर उसे संस्कृत के करीब लाने के प्रयत्न हुए थे, मगर प्रेमचंद उन सबसे अलग थे। उन्होंने अपनी अधिकतर कहानियाँ और कई उपन्यास प्रथम उर्दू और उसके बाद हिंदी में लिखे थे।

प्रेमचंद का जीवन उनकी कहानियों की तरह ही दिलचस्प हैं। यहाँ उनके जीवन की कुछ बातें करनी इसलिए आवश्यक है क्योंकि उनका सीधा संबंध उनकी रचनाओं से एवं उस समय की भारत की स्थिति से है। प्रेमचंद का जन्म बनारस के करीब लमही नामक एक गाँव में हुआ था। उन्होंने अपने जीवन में गरीबी देखी, सौतेली माँ से अन्याय का अनुभव किया, अपने आस-पास के टूटते हुए लोगों को देखा और साथ ही अंग्रेजों द्वारा किये जानेवाले अत्याचारों को भी देखा। यह सभी अनुभव उनके सर्जन-विश्व का बड़ा हिस्सा बननेवाले थे। बचपन से ही उन्हें पढ़ने-लिखने का बड़ा शौक था और उन पर चार्ल्स डिकन्स, मेक्सिम गोर्की, टॉलस्टॉय जैसे लेखकों का प्रभाव अधिक था।

प्रेमचंद पहले ऐसे लेखक थे जिन्होंने 'वास्तव' का सही ढंग से अपनी रचनाओं में विनियोग किया। 1900-1930 तक भारत में साम्यवादी विचारधारा का सामाजिक एवं राजनैतिक प्रभुत्व रहा। इसका असर उस समय के साहित्य पर भी हुआ। साहित्य-लेखन की प्रमुख धारा थी 'सामाजिक वास्तव' और प्रेमचंद उसके प्रमुख कर्ता थे। सामाजिक वास्तव की धारा का लेखन किसानों और गरीबों के जीवन को वस्तु बनाता था और शुद्ध साहित्यिक हिंदी से दूर हटकर बोल-चाल की हिंदी को प्राधान्य देता था। यह समय गाँधी का भी समय था और गाँधीवाद एवं राष्ट्रवाद का प्रभाव उतना ही प्रबल था जितना साम्यवाद का। गाँधी द्वारा की गई समाज के निम्न वर्ग और किसानों के उद्धार की बात का समर्थन प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं द्वारा दिया और गाँधी के शुरू किये गए 'असहयोग' आंदोलन के समर्थन में उन्होंने अपनी सरकारी नौकरी से त्यागपत्र भी दे दिया।

प्रेमचंद सामाजिक वास्तव के अग्रहारी तो थे ही, लेकिन उन्होंने 'आदर्श यथार्थवाद' को भी प्राधान्य दिया, बल्कि अपनी रचनाओं में 'आदर्श यथार्थवाद' का विनियोग करने का हमेशा प्रयत्न किया। इससे उनका मतलब यह था कि रचना यथार्थ का चित्रण करते हुए भी किसी आदर्श की तरफ अंगुलिनिर्देश करनी चाहिए।

यहाँ पर प्रेमचंद के उपन्यास गोदान (1963) के द्वारा यह देखा जाएगा कि कैसे हिंदी उपन्यास में भारी बदलाव आए और कैसे राष्ट्रवाद, साम्यवाद जैसे आंदोलनोंने इस रचना को प्रभावित किया।

गोदान होरी नाम के एक किसान की कहानी हैं, जो गोदान करना चाहता है। होरी और उसकी पत्नी धनिया गोदान के लिए एक के बाद एक मुश्किलों

का सामना करते हैं और गोदान की संभावना के साथ उपन्यास समाप्त होता है। यह बात प्रेमचंद के 'आदर्श यथार्थवाद' का नमूना है, क्योंकि पूरा उपन्यास नग्न यथार्थ का चित्रण कर होरी के दर्द और मुश्किलों का दस्तावेज है, लेकिन अंत में होरी के मौत के साथ गोदान की संभावना खड़ी होती है। गोदान की स्थिति होरी के लिए एक आदर्श स्थिति है जहाँ वह कभी पहुँच नहीं पाता, लेकिन उस स्थिति का अंगुलिनिर्देश जरूर किया गया है। उल्का अंजारिया के अनुसार प्रेमचंद के लेखन को भिन्नता युक्त यथार्थ और समानता युक्त आदर्श के बीच के तकरार का लेखन माना जा सकता है।

यह उपन्यास अनेक तरीके से आधुनिक है। भाषा, जैसा कि आगे सूचित किया गया है, बोल-चाल की और रोज-ब-रोज की है। उपन्यास में होरी की कथा मुख्य है, जो गाँव में स्थित है, पर गोदान में इसके समान्तर शहर के कथानक का भी उपयोग किया गया है। यह दोनों अंतिम एक दूसरे के पूरक साबित होते हैं। प्रेमचंद काफी प्रगतिशील थे। 'ऑल इण्डिया प्रोग्रेसिव राईटर्ज एसोसिएशन' के उद्घाटन के दौरान अपने वक्तव्य में उन्होंने निर्देश किया था कि लेखक और वकील का काम एक-सा होता है, क्योंकि दोनों का धर्म निम्न-वर्ग के शोषित और पीड़ित के लिए लड़ना है (प्रेमचंद 1936)। यह प्रगतिशीलता उनके इस उपन्यास में भी नजर आती हैं। अपने कथानक में वह अंतरजातीय शादी को समर्थन देते हुए मिलते है। यह बात उस समय में बहुत ही क्रांतिकारी थी।

पहली बार निम्न-वर्ग के चरित्रों का बड़ी संकुलता से चित्रण हुआ मिलता है। इस उपन्यास में स्त्री-चरित्र का चित्रण भी पहले के उपन्यासों से अलग है। धनिया, होरी की पत्नी, एक अत्यंत सबल चरित्र है। उसकी आंतरिकता को उजागर करने में भी प्रेमचंद सफल रहे हैं। यह कहा जा सकता है कि अगर धनिया न होती तो होरी ने जल्द ही जीवन की विषमताओं के सामने हार मान ली होती। मगर फिर भी, धनिया का पात्र होरी के पात्र का साथ देने के लिए ही है- होरी से हटकर उसकी अपनी अलग पहचान नहीं मिलती।

हम देख सकते हैं कि कैसे प्रेमचंद ने 'वास्तव' का बखूबी निरूपण किया और अनेक चरित्रों को मिलकर एक संकुल वास्तविक सृष्टि की रचना की, जिसका नाता परंपरा से जरूर है, मगर बहुत तरीके से वह आधुनिक है।

प्रेमचंदोत्तर युग में उपन्यास और शेखरः एक जीवनी

प्रेमचंद के बाद आई पीढ़ी के लेखकों में जैनेन्द्र कुमार, सच्चिदानंद हिरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय', उपेन्द्रनाथ अश्क और यशपाल का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। जैनेन्द्र कुमार को मनोवैज्ञानिक उपन्यास की शुरुआत करने का श्रेय दिया जाता है। उनके उपन्यास सुनीता और त्यागपत्र इसके प्रमाण हैं। जैनेन्द्र के दोस्त 'अज्ञेय' ने भी उनकी राह पर चलकर शेखरः एक जीवनी द्वारा मनोवैज्ञानिक उपन्यास को एक नयी ऊंचाई पर पहुँचाया। अज्ञेय की बात करने में जैनेन्द्र की बात करनी भी आवश्यक है, क्योंकि जैनेन्द्र ने अपने उपन्यास सुनीता और त्यागपत्र से जो हिंदी भाषा को तोडा-मरोड़ा और पात्रों की आंतरिकता, खास करके भय, काम-वासना और यादों की अनेक परतों को उजागर करने के लिए नयी हिंदी का प्रयोग किया, उसी से प्रभावित होकर 'अज्ञेय' ने उस भाषा, वातावरण एवं स्वरूप के नवोन्मेष को शेखरः एक जीवनी द्वारा नया आयाम दिया।

कौन-सी परिस्थियों की वजह से हिंदी साहित्य में ऐसे बदलाव आए? उस समय की सामाजिक और राजकीय स्थिति क्या थी? यह जानने से शायद हिंदी उपन्यास में अचानक आए परिवर्तन का पता चले।

अज्ञेय की पीढ़ी गाँधी के विचारों से प्रभावित जरूर थी, मगर साथ ही वह गाँधी का अँधा अनुकरण करने में नहीं मानती थी। गाँधी से हटकर यह क्रांतिकारियों की पीढ़ी हिंसा को देश की आजादी के लिए इस्तेमाल करने में हिचकिचाती नहीं थी। अज्ञेय को कारावास की सजा मिली थी क्योंकि वह चंद्रशेखर आजाद और साथियों के साथ बम बनाते हुए पकड़े गए थे। कारावास का अनुभव शेखर का एक बहुत ही महत्वपूर्ण हिस्सा है क्योंकि यह उपन्यास अज्ञेय ने कारावास में ही लिखा था, जो बाद में दो हिस्सों में प्रकाशित हुआ।

उस समय के अज्ञेय जैसे क्रांतिकारियों को काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ा, क्योंकि वे लोग न तो गाँधी के असहयोग और अहिंसा के मार्ग पर चलने को तैयार थे और न ही अपनी क्रान्ति छोड़ देने को। साथ ही यह क्रांतिकारी मार्क्सवादी विचारधारा में मानते थे और जितना तीव्र उनका राष्ट्रवाद था, उतनी ही तीव्र उनकी सामाजिक चेतना भी थी। यह क्रांतिकारियों की जिंदगी भी कायदे-कानून से बचने के लिए रास्तों पर या जंगलों में गुजरी और इन असामान्य विस्तारों में युवा स्त्री-पुरुष क्रांतिकारियों ने काफी समय साथ में बिताया, जिससे प्रेम और कामावेग की अभिव्यक्ति के नए पहलू उन्मुक्त हुए।

एक विस्तार था यह कामावेग और प्रेम का विस्तार, एक विस्तार था कारावास का जो इन्हें अपनी जिंदगी के बारे में सोचने और चिंतन करने के लिए आवश्यक समय एवं जगह देता था।

शेखर: एक जीवनी कारावास में ही शुरू होती है, जहाँ शेखर अपनी फाँसी के लिए इंतजार कर रहा है। उपन्यास सामयिक और स्थानिक आयामों को तोड़ मरोड़ देता है, क्योंकि कथा वर्तमान और भूतकाल के बीच घूमती रहती हैं और इसी की वजह से स्थल भी बदलते रहते हैं। शेखर खुद क्रांतिकारी होने के साथ एक लेखक भी हैं और इसी वजह से उपन्यास की भाषा हिंदी एवं संस्कृत शब्दों से संपन्न हैं और उसकी काव्यात्मकता उपन्यास खत्म होने पर भी पाठक को पूरी तरह नहीं छोड़ती। यह उपन्यास प्रेमचंद के उपन्यासों से बहुत ही अलग हैं क्योंकि 'यहाँ व्यक्ति का मनश्लोक आख्यान की अग्रभूमि में है, जबकि सामाजिक जीवन पृष्ठभूमि में' (कुमार 2012)।

कथानक प्रथम पुरुष एकवचन और तृतीय पुरुष एकवचन के बीच झोंके खाता रहता है जिससे बाहर का सामाजिक वास्तव और अंदर का आंतरिक वास्तव दोनों की बात कही जा सके। यह प्रयोग शेखर को गोदान से अधिकतर आधुनिक स्थापित कर देते है। प्रेम और कामावेग का कथानक में जिस तरह अन्वेषण हुआ हैं वह भी नयेपन का ही प्रमाण है। क्रांतिकारी पहलू यह है कि यह प्रेम और वासना का संबंध दूर के भाई-बहन शेखर और शशी के बीच स्थापित होता है, जिससे कई पारंपरिक मूल्यों का ह्रास होता दिखता है।

शशी हिंदी साहित्य के सबसे चहेते और सबसे करुण चरित्रों में से एक है। शेखर में मुख्य पात्र शेखर का विकास शशी के पतन के साथ ही होता है। शशी का चरित्र मजबूत है, वह अपने पति को छोड़कर शेखर के साथ एक गुन्हेगार की जिंदगी जीने लगती है और आखिर शेखर के लिए अपनी जान दे देती है। जो उपन्यास शेखर की मृत्यु की बात से शुरू होता हैं, वह शशी के मृत्यु के साथ समाप्त होता है। निखिल गोविन्द सूचित करते हैं कि कैसे अपनी मृत्यु के मूल्य के कारण शशी उपन्यास के केंद्र में आ जाती हैं और अंत में वह शशी ही है, जो पाठक के साथ रहती है, न कि शेखर।

यह देखा जा सकता है कि कैसे शेखर: एक जीवनी से हिंदी उपन्यास ने एक नयी दिशा में ही प्रस्थान किया, जिस दिशा में नयी कहानी के लेखकों की पीढ़ी बढती है।

निष्कर्ष

हमने इस लेख में तीन मील के पत्थर समान उपन्यासों की मदद से देखा कि कैसे हिंदी उपन्यास में परिवर्तन आए। अज्ञेय के बाद की पीढ़ी में नयी कविता और नयी कहानी के आंदोलन ज्यादा प्रचलित रहे, हालाँकि उपन्यास की विधा में भी इन लेखकों का उतना ही बड़ा योगदान रहा। यहाँ कुछ बात नयी कहानी के बारे में भी करना आवश्यक है।

नयी कहानी आंदोलन हिंदी साहित्य के इतिहास में बड़ा महत्त्वपूर्ण रहा हैं'। पश्चिम के 'हाई-मोडर्निज्म' (आधुनिकतावाद) से यह आंदोलन प्रभावित जरूर था, मगर नयी कहानी के लेखक अपनी भारतीयता को भूलकर पश्चिम का अँधा अनुकरण नहीं कर रहे थे। उनके लिए पश्चिम एक संदर्भ मात्र था। नयी कहानी आंदोलन अपने पूर्व-सूरिओ से नाता तोड़ता भी हैं और जोड़ता भी। प्रगतिवादी लेखकों का 1936 में जो आंदोलन हुआ, उसके बाद बहुत से प्रगतिवादी लेखक सामाजिक चेतना के साहित्य को ही सच्चा साहित्य मानने लगे थे। उनकी कहानियाँ निम्न और गरीब वर्ग की, स्त्रियों की बात करती जरूर थी, मगर मार्क्सवादी विचारधारा रखने वाले लेखक और वैसी मानसिकता वाले साहित्य को ही अच्छा साहित्य समझना उनकी बहुत बड़ी भूल थी। प्रगतिवादी लेखकों में अहमद अली, उपेन्द्रनाथ अश्क, प्रेमचंद, मुल्कराज आनंद इत्यादि लेखक शामिल थे।

इक तरफ था प्रगतिवादी लेखकों का वर्ग, दूसरी ओर था अज्ञेय और जैनेन्द्र जैसे रूमानी कथाकारों का वर्ग। नये कहानीकार इन दोनों वर्गों से असहमत थे। उनके लिए सामाजिक चेतना का उतना ही मूल्य था जितना आंतरिक चेतना का। उसी तरह, स्त्री-पुरुष संबंधों के बारे में लिखी गई रूमानी कथाओं में उन्हें आंतरिक चेतना तो दिखती थी, मगर उनके लिए यह बहुत ही संकुचित दृष्टिवाला साहित्य था। दोनों वर्गों में से उचित और जरूरी सामग्री लेकर नये कहानीकार अपनी खुद की ही साहित्यिक दुनिया बनाने में जुड़ गए।

नयी कहानी आंदोलन प्रेमचंद के साथ भी कुछ ऐसा ही 'लव-हैट' का नाता रखता है। यह कहानीकार प्रेमचंद के 'यथार्थ' के विचार को सम्मान देते थे और यथार्थ को किसी भी कहानी का जरूरी आयाम मानते थे, मगर साथ ही यह प्रेमचंद के आदर्शवाद को नकारते थे। प्रेमचंद के लिए यथार्थ साधन था और आदर्श साध्य, जबकि नयी कहानी के लेखकों के लिए यथार्थ ही साध्य

था और उस यथार्थ को सिद्ध करने के लिए जो भी कुछ सामग्री जरूरी थी, वह सब साधन।

नयी कहानी के लेखक यथार्थ के बहुमुखी परिमाण का अन्वेषण करने में मानते थे और वह इसमें ज्यादातर सफल भी रहे। निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, मन्नू भंडारी, फणीश्वरनाथ रेणु आदि लेखकों ने अपने स्थल-काल से प्रमाणिक रहकर नए तरीके की कहानियों का और उपन्यासों का सर्जन किया, जिसमें बटवारें की वेदना थी, आजादी मिलने के बाद सामाजिक विषमताओं में कोई सुधार न आने पर मोहभंग की अनूभूति थी, जातीयता के नए आयामों का अन्वेषण था और मनुष्य का दूसरे मनुष्य से संपर्क-संचार का टूट जाना, मूल्यों का ह्रास इत्यादि कथा-वस्तुओं का समावेश था और उसका अध्ययन भी उतना ही रसप्रद है जितना कि बटवारें के पहले के उपन्यासों का अभ्यास।

हिन्दी उपन्यास का इतिहास

भारतेन्दु युग

इस युग का नाम भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाम पर रखा गया था।इसी युग में हिंदी में पहली उपन्यास 'परीक्षा गुरु ' लाला श्रीनिवासदास द्वारा लिखी गयी थी। हिंदी में भारतेंदु से पूर्व जो कथात्मक पुस्तकें लिखी गईं। वे आधुनिक उपन्यास और कहानी से मिलती-जुलती होने पर भी उनसे भिन्न थीं। वास्तव में उपन्यास और कहानी पश्चिमी साहित्य की देन है। भारतेन्दु-युग में जो उपन्यास लिखे गये, उनमें उपन्यास विद्या का उचित निर्वाह न होने के कारण उन्हें सच्चा उपन्यास नहीं कहा जा सकता है। सच तो यह है कि हिन्दी में वास्तविक उपन्यास की रचना सर्वप्रथम प्रेमचन्द ने ही की। यों, ऐतिहासिक दृष्टि से लाला श्रीनिवास दास का 'परीक्षा-गुरु' (1882 ई.) ही हिन्दी का पहला उपन्यास माना जाता है। यह पश्चिमी उपन्यास की शैली पर आधारित है और यथार्थ जीवन का चित्र भी प्रस्तुत करता है, परन्तु कला की दृष्टि से बहुत अपरिपक्व है। इसमें उपदेश की प्रवृत्ति प्रधान है। 'परीक्षा-गुरु' के पूर्व भी 'देवरानी-जेठानी' (1872 ई.) 'रीति-रत्नाकर', 'वामा शिक्षक', 'भाग्यवती' आदि कुछ उपन्यास जैसी कथा-पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं परन्तु वे भी मुख्यत: शिक्षात्मक तथा अपरिपक्व हैं। भारतेन्दु ने भी 1866 ई. में कहानी 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती' लिखने का यत्न किया था और 'चन्द्र प्रभा और पूर्ण प्रकाश शीर्षक मराठी उपन्यास का अनुवाद

व संशोधन भी किया था। उनकी प्रेरणा से राधा चरण गोस्वामी, गदाधर सिंह, राधाकृष्णदास, प्रतापनारायण मिश्र आदि ने बंगला के बहुत से उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद किया और मौलिक उपन्यास भी लिखे। इन लेखकों के अतिरिक्त बाबू कार्तिकप्रसाद खत्री, रामकृष्ण वर्मा आदि और भी कई लेखकों ने बंगला उपन्यासों का अनुवाद किया। अंग्रेजी से भी कुछ उपन्यासों का अनुवाद हुआ।

भारतेन्दु काल के मौलिक कथा-ग्रन्थों और उपन्यासों में महत्वपूर्ण हैं–ठाकुर जगमोहन सिंह का 'श्याम स्वप्न' (काव्यात्मक गद्य-कथा), पं. बालकृष्ण भट्ट रचित 'नूतन ब्रह्मचारी' तथा 'सौ अजान और एक सुजान' किशोरी लाल गोस्वामी का 'स्वर्गीय कुसुम', राधाचरण गोस्वामी का 'विधवा-विपत्ति', राधाकृष्ण दास का 'निस्सहाय हिन्दू', अयोध्यासिंह उपा

द्विवेदी युग

द्विवेदी युग में भी मौलिक और अनूदित दोनों प्रकार के उपन्यासों का प्रकाशन हुआ। इस समय अधिकतर तिलस्म, ऐयारी, जासूसी और रोमांस के कथानक प्रस्तुत किए गए। उपन्यास घटना-प्रधान बना रहा। अंग्रेजी से भी साहसिक, जासूसी तथा प्रेमचर्या-प्रधान उपन्यासों का अनुवाद हुआ। इस युग के तीन उपन्यासकार बहुत प्रसिद्ध हैं–देवकीनन्दन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी और गोपालराम गहमरी। खत्री जी ने 'चन्द्रकांता', 'चन्द्रकांता-संतति' तथा 'भूतनाथ' नामक तिलस्म और ऐयारी के रोचक उपन्यास कई भागों में प्रकाशित किए। इन उपन्यासों के पहले भी भारतेन्दु काल में उन्होंने 'नरेन्द्रमोहनी', वीरेन्द्र वीर' आदि उपन्यास लिखे थे। हरेकृष्ण जोहरी आदि कई लेखकों ने उनके अनुकरण पर तिलस्मी उपन्यास लिखे। बहुत लोगों ने उनके मनोरंजक उपन्यास पढ़ने के लिए ही हिन्दी सीखी।

किशोरीलाल गोस्वामीने सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। गोस्वामी जी के सामाजिक उपन्यास वस्तुतः नाम के ही सामाजिक है। उनमें समाज की बहुत ही स्थूल और ऊपरी झलक है, यथार्थ चित्रण नहीं। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास के तथ्यों का उचित निर्वाह नहीं हुआ। देशकाल का भी ध्यान उन्होंने कहीं-कहीं नहीं रखा। कुछ उपन्यासों में समाज की कुरीतियों पर प्रहार करने का यत्न किया गया और यत्र-तत्र राष्ट्र-प्रेम की भावना भी है। परन्तु गोस्वामी जी के अधिकांश उपन्यास उत्तेजक शृंगार से युक्त हल्के

मनोरंजन के साधन है। गोस्वामी जी ने लगभग पैंसठ उपन्यास लिखे हैं। उनमें कुछ उपन्यासों के नाम हैं 'कुसुमकुमारी', 'हृदयहारिणी', 'लबंगलता', 'रजिया बेगम', 'तारा', 'कनक कुसुम', 'मल्लिका देवी', 'राजकुमारी', लखनऊ की कब्र', 'चपला', 'प्रेममयी'। जैसा कि नामों में प्रकट है ये उपन्यास नारी-प्रधान और शृंगारिक हैं। वास्तव में उनमें समाज और इतिहास के संदर्भ में कामुकता तथा विलासिता का अंकन हुआ है। उन्होंने 'उपन्यास' नामक पत्रिका भी निकाली थी जिसमें उनके पैंसठ छोटे-बड़े उपन्यास प्रकाशित हुए थे। आचार्य शुक्ल ने गोस्वामी जी के सम्बन्ध में लिखा है कि 'इस द्वितीय उत्थानकाल के भीतर उपन्यासकार इन्हीं को कह सकते हैं, परन्तु वस्तुतः उपन्यासकार की सच्ची प्रतिभा इनमें भी नहीं है।'

गोपालराम गहमरी 'जासूस' नामक पत्रिका प्रकाशित करते थे, जिसमें उनके साठ के लगभग उपन्यास छपे। अंग्रेजी के जासूसी उपन्यासों के अनुकरण पर उन्होंने 'जासूस की भूल', 'घर का भेदी', 'अद्‌भुत खून', 'भोजपुर की ठगी', आदि रहस्यपूर्ण, साहसिक और डकैती तथा ठगी की कथाएं निर्मित कीं। वैसे उन्होंने जासूसी उपन्यासों के क्षेत्र में भी आदर्श के निर्वाह और लोकोपकार की भावना के समावेश का यत्न किया और आदर्श जासूसों की सृष्टि की। गहमरी जी ने वंगला से गृहस्थ जीवन-सम्बन्धी कुछ उपन्यासों का अनुवाद भी किया था। दूसरी ओर द्विवेदी युग में कुछ ऐसे उपन्यासकार भी हुए, जिन्होंने अपनी रचनाओं में नैतिकता का ध्यान रखते हुए स्वच्छ-स्वस्थ सामग्री प्रस्तुत की। इस तरह के उपन्यासकारों में उल्लेखनीय हैं–हरिऔध, लज्जाराम मेहता और ब्रजनन्दन सहाय। हरिऔध जी ने 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' और 'अधखिला फूल' लिखकर इनमें मुहावरेदार ठेठ भाषा का नमूना भी पेश किया। मेहता जी ने सुधारवादी दृष्टिकोण से 'आदर्श हिन्दू', 'आदर्शदम्पति' और 'हिन्दू गृहस्थ आदि उपन्यास लिखे। ब्रजनन्दन सहाय के 'सौन्दर्योपासक' में काव्य का आनन्द मिलता है। स्पष्ट है कि गोस्वामी जी, गहमरी जी और खत्री जी के उपन्यासों में जहाँ स्थूल सौन्दर्य और उत्तेजक शृंगारिकता प्रस्तुत है वहाँ इन उपन्यासकारों के ग्रन्थ 'उपदेशात्मक भावना की छटा दिखाने वाले या काव्यात्मक है। मानव चरित्र और मानव जीवन के सच्चे चित्रण और उपन्यास-काल की पूर्णता की ओर इस समय तक किसी का भी यथोचित ध्यान नहीं गया था। इस काल में किशोरीलाल गोस्वामी के अतिरिक्त कुछ और लेखकों ने भी ऐतिहासिक उपन्यास लिखें। इनमें उल्लेखनीय

हैं–गंगाप्रसाद गुप्त का 'वीर पत्नी' और 'मिश्रबंधुओं के विक्रमादित्य', चन्द्रगुप्त मौर्य' तथा 'पुष्य मित्र'।

द्विवेदी युग में भी अधिकतर साधारण जनता के मनोरंजन और मनोविनोद के लिए घटना प्रधान उपन्यास ही लिखे गये। उनमें कथा का रस तो है, किन्तु चरित्र-चित्रण का सौन्दर्य, समाज का सही अंकन और उपन्यास का परिपक्व शिल्प नहीं। इस समय के उपन्यासकारों को न तो मानव-जीवन का और न मानव-स्वभाव का सूक्ष्म एवं व्यापक ज्ञान था और न उपन्यास की कला से ही उनका अच्छा परिचय था। इस काल में अधि कतर प्रेमप्रधान, साहसिक तथा विस्मयकारक (तिलस्मी-जासूसी) उपन्यास ही लिखे गये। ऐतिहासिक, शिक्षात्मक और काव्यात्मक उपन्यास भी लिखे गये, परन्तु कम। पात्र अधिकतर सौंदर्य के प्रति आकर्षित होने वाले विलासी प्रेमी-प्रेमिका और राजकुमार-राजकुमारी है या फिर ऐयार तथा जासूस। इस काल के उपन्यास भारतेन्दु काल के उपन्यासों की अपेक्षा रोचक और मनोरंजक अधिक हैं। शिक्षा देने की प्रवृत्ति भी कम है। प्रताप नारायण मिश्र, गोपालराम गहमरी, ईश्वरीप्रसाद शर्मा, हरिऔध, कार्तिक प्रसाद खत्री, रूपनारायण पाण्डेय, रामकृष्ण वर्मा आदि साहित्यकारों ने बंगला, अंग्रेजी और उर्दू आदि भाषाओं के उपन्यासों का अनुवाद किया। आचार्य शुक्ल का कथन है कि हिन्दी के मौलिक उपन्यास-सृजन पर इन अनुवाद कार्यों का अच्छा प्रभाव पड़ा और इसके कारण हिन्दी उपन्यास का आदर्श काफी ऊँचा हुआ।

प्रेमचन्द युग

द्विवेदी युग के अन्त तक (1917 ई. तक) हिन्दी के मौलिक और अनूदित दोनों प्रकार के उपन्यास काफी संख्या में लिखे जा चुके थे। मौलिक उपन्यास अनेक प्रकार के और अनेक विषयों पर थे। उपन्यास क्रमशः जीवन और समाज के निकट आ रहा था, परन्तु अब भी उसमें बहुत-सी, त्रुटियां थी। प्रेमचन्द के समय से विशेष कर उनके 'सेवासदन' के प्रकाशन काल (सन् 1918 ई.) से हिन्दी-कथा साहित्य में एक नये युग का आरम्भ होता है। प्रेमचंदने ही उपन्यास में मानव मन का स्वाभाविक एवं सजीव अंकन आरम्भ किया। उन्होंने ही पहली बार हिन्दी उपन्यास में घटना और चरित्र का संतुलन स्थापित कर मनोविज्ञान का उचित समावेश किया। उन्होंने ही समाज की समस्याओं को सर्वप्रथम कथा-साहित्य में स्थापित किया। उन्होंने जीवन और जगत के विविध क्षेत्रों का, समाज के विभिन्न वर्गों का ग्रामीण तथा नागरिक क्षेत्रों की बहुत-सी दशाओं तथा

परिस्थितियों का सूक्ष्म निरीक्षण कर व्यापक अनुभव प्राप्त किया था। मनोविज्ञान के वे पंडित थे। मानव-स्वभाव के विविध पक्षों से भली-भांति परिचित थे। उपन्यास-कला का भी उन्हें बहुत अच्छा ज्ञान था। पश्चिम के ताल्सताय, दोस्तोवस्की, तुर्गनेव, गोर्की, अनातोले फ्रांस आदि महान उपन्यासकारों की रचनाओं का भी उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया था।

प्रेमचन्द प्रारम्भ में उर्दू के लेखक थे और कहानियां लिखते थे। उर्दू में उनके कुछ उपन्यास भी प्रकाशित हुए थे। बाद में उन्होंने हिन्दी में लिखना प्रारम्भ किया। उनके महत्वपूर्ण उपन्यास हैं–सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, निर्मला, गबन, कर्मभूमि, गोदान और मंगलसूत्र (अपूर्ण)। प्रेमचन्द उपन्यास को मनोरंजन की वस्तु नहीं मानते थे। वे अपने उपन्यासों द्वारा भारतीय जनता के जागरण और सुधार तथा निर्माण की भावना का प्रसार करना चाहते थे। प्रेमचन्द मानवतावादी सहृदय व्यक्ति थे। वे गरीबी में पले थे, गरीबों के दु:ख-दर्द को समझते थे। समाज के निम्न वर्ग से उन्हें सहानुभूति थी। जीवन के अन्तिम समय में, जैसा कि उनके अन्तिम उपन्यासों ('गोदान' और 'मंगलसूत्र') से प्रकट है, उनका झुकाव साम्यवाद की ओर हो गया था और वे सच्चे अर्थ में यथार्थवादी और प्रगतिशील हो गये थे। अपनी पुस्तकों में प्रेमचन्द ने किसानों की आर्थिक दशा, जमींदारों और पुलिस के अत्याचारों, ग्रामीण जीवन की कमजोरियों, समाज की कुरीतियों, शहरी समाज की कमियों, विधवाओं और वेश्याओं की समस्याओं, नारी की आभूषणप्रियता, मध्यवर्ग की झूठी शान और दिखावे की प्रवृत्ति, सम्मिलित हिन्दू-परिवार में नारी की दयनीय स्थिति आदि प्रश्नों और पक्षों पर प्रकाश डाला। उन्होंने अपने कई उपन्यासों में गांव और शहर की कहानी, ग्रामीण और नागरिक जीवन की झांकी साथ-साथ प्रस्तुत की है। उनके उपन्यासों में कथानक सुगठित है, चरित्र-चित्रण प्राय: मनोविज्ञान के अनुकूल सजीव और स्वाभाविक है। संवाद पात्रों और परिस्थितियों के अनुसार हैं और भाषा सरल एवं व्यावहारिक है।

प्रेमचन्द की उपन्यास-कला की मुख्य विशेषताएं हैं–व्यापक सहानुभूति-विशेषकर शोषित किसान, मजदूर और नारी का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण, यथार्थवाद अर्थात् उपन्यास में जीवन का यथार्थ चित्रण, मानव-जीवन और मानव-स्वभाव की अच्छी जानकारी होने से सजीव पात्रों और सजीव वातावरण का निर्माण, चरित्र-चित्रण में नाट्कीय कथोपकथनात्मक तथा घटनापरक पद्धतियों का उपयोग, समाज के विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधि पात्रों की सृष्टि,

अपने व्यक्तित्त्व को पात्रों से पृथक रखकर उन्हें प्रायः अपनी सहज-स्वच्छन्द गति से चलने देना, अनेकानेक सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं का चित्रण, समाज के साथ पारिवारिक जीवन की सुन्दर अभिव्यक्ति, मानव-कल्याण की ओर संकेत करने वाले नैतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा और सरल व्यावहारिक भाषा का संग्रह। प्रेमचन्द युग के अन्य उल्लेखनीय उपन्यासकार हैं। विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, प्रसाद, निराला, सुदर्शन, चतुरसेन शास्त्री, वृन्दावन लाल वर्मा, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, सियारामशरण गुप्त, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', भगवती प्रसाद वाजपेयी, गोविन्द वल्लभ पंत, राहुल सांकृत्यायन और जैनेन्द्र।

कोशिक जी के उपन्यास 'मां' और भिखारिणी नारी-हृदय का मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत करते हैं। आचार्य चतुरसेन ने नारी की समस्या पर 'हृदय की परख', 'हृदय की प्यास', 'अमर अभिलाषा' आदि उपन्यास प्रारम्भ में लिखे थे। बाद में उनके बहुत से सामाजिक ऐतिहासिक और वैज्ञानिक उपन्यास प्रकाशित हुए। उनके कुछ उल्लेखनीय उपन्यास हैं–'गोली', 'वैशाली की नगर वधू' 'वयं' रक्षामः' 'सोमनाथ' 'महालय', 'सोना और खून' तथा 'खग्रास'। वृन्दावनलाल वर्मा ने इतिहास के तथ्यों की पूर्णतः रक्षा करते हुए कई महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की है। उन्होंने 'विराटा की पद्मिनी', 'झाँसी की रानी', 'कचनार', 'मृगनयनी', 'माधवजी सिंधिया' आदि उच्चकोटि के ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। हिन्दी के कुछ अन्य उल्लेखनीय ऐतिहासिक उपन्यास हैं। जयशंकर प्रसाद का 'इरावती' (अधूरा), हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'वाणभट्ट की आत्मकथा' और 'चारु चन्द्रलेख', चतुरसेन का 'वैशाली की नगरवधू', 'राजसिंह', 'सोमनाथ', 'सह्याद्रि की चट्टानें', सेठ गोविन्ददास का 'इन्दुमती', राहुल सांकृत्यायन के 'सिंह सेनापति', 'जय यौधेय', सत्यकेतु दिद्यालंकार का 'आचार्य चाणक्य', रांगेय राघव का 'अंधा रास्ता', उमाशंकर का 'नाना फड़नवीस' तथा 'पेशवा की कंचना'।

प्रसाद जी ने 'इरावती' के पहले 'कंकाल' और 'तितली' नामक दो उपन्यास और लिखे थे, 'कंकाल' में हिन्दू नारी की असहाय स्थिति और धार्मिक पाखंड पर प्रकाश डाला गया है। 'तितली' में नारी-हृदय की महत्ता के उद्घाटन के साथ-साथ ग्राम-सुधार और यथास्थिति के विरुद्ध आन्दोलन की भावना है। प्रसाद जी मूलतः कवि हैं। उनके उपन्यासों में भी प्रायः जीवन की काव्यात्मक और भावपूर्ण व्याख्या मिलती है। निराला जी ने भी 'अप्सरा' 'अल्का', 'निरूपमा' आदि उपन्यास लिखे। इनके उपन्यासों में भी प्रसाद जी की भांति

रोमांटिक वातावरण है। नारी को निराला जी ने महत्वपूर्ण स्थान दिया है। श्री प्रतापनारायण श्रीवास्तव के प्रारम्भिक उपन्यासों में 'विदा', 'विसर्जन' और 'विजय' उल्लेखनीय हैं।

सियारामशरण गुप्तके 'गोद', 'अन्तिम आकांक्षा' और 'नारी' उपन्यासों में नारी-जीवन और उसकी सामाजिक स्थिति का मार्मिक अंकन हुआ है। साधारण मनुष्य में भी उच्च गुण दिखाने में गुप्त जी निपुण है। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' के प्रारम्भिक उपन्यासों में पत्रात्मक शैली में लिखे 'चन्द हसीनों के खतूत' का विशिष्ट स्थान है। इसमें हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रश्न उपस्थित करते हुए प्रेम का महत्व दिखाया गया है। उनके 'दिल्ली का दलाल', 'बुधुआ की बेटी', 'जीजी जी' आदि उपन्यासों में दुष्टों द्वारा भोली युवतियों को फंसाएं जाने की कथाएं हैं। सभ्य समाज की भीतरी दुर्बलताओं और दुष्प्रवृत्तियों का उन्होंने अच्छा उद्घाटन किया है। भगवती प्रसाद वाजपेयी के 'प्रेममयी', 'अनाथ स्त्री', 'त्यागमयी', 'पतिता की साधना' आदि शुरू के उपन्यासों में स्त्री-पुरुष के रूपाकर्षण और प्रेम के चित्र हैं। उनके 'गुप्त धन', 'चलते-चलते', 'पतवार', 'उनसे न कहना', 'रात और प्रभाव', 'टूटते बन्धन' आदि कई उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। गोविन्द वल्लभ पंतके 'सूर्यास्त', 'प्रतिमा', आदि उपन्यास काफी पहले प्रकाशित हुए थे। बाद में भी उनके 'जल समाधि', 'नारी के सपने', 'मैत्रेय' आदि उपन्यास निकले हैं।

जैनेन्द्र के परख (सन् 1929 ई.) से हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में एक नई प्रवृत्ति का आरम्भ होता है। वस्तुतः यह उपन्यास एक लम्बी कहानी है जिसमें कट्टो नाम की देहातिन बालविधवा के भावुकतापूर्ण आत्मसमर्पण का चित्रण किया गया है। जैनेन्द्र ने आगे चलकर कई महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक उपन्यास 'सुनीता', 'सुखदा', 'त्यागपत्र', विवतर्त' आदि लिखे, जिनमें प्रायः स्त्री का पर-पुरुष की ओर झुकाव दिखाकर आधुनिक नारी के कुण्ठाग्रस्त मन पर प्रकाश डाला है। मनोविश्लेषण की इस प्रवृत्ति का विकास किया इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय ने। प्रेमचन्द काल के उत्तरार्ध में इस क्षेत्र में आने वाले अन्य प्रतिभाशाली उपन्यासकार हैं। ऋषभचरण जैन (कैंदी गदर, भाई, भाग्य, रहस्यमयी, तपोभूमि, बादशाह की बेटी, सत्याग्रह, दिल्ली का व्यभिचार आदि), भगवतीचरण वर्मा (पतन, तीन वर्ष, चित्रलेखा, टेढ़े-मेढ़े रास्ते, सबहिं नचावत राम गुसाईं), राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह (राम-रहीम, पुरुष और नारी, टूटा तारा, सूरदास, संस्कार आदि)।

इस काल में जो उपन्यास लिखे गए, उन्हें चार वर्गों में विभिक्त किया जा सकता है–यथार्थवादी सामाजिक उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यास, स्वच्छन्दतापरक उपन्यास और मनोवैज्ञानिक उपन्यास। उपन्यास-लेखन की बहुत-सी शैलियों (ऐतिहासिक, आत्मकथात्मक, पत्रात्मक आदि) का प्रयोग हुआ है। इस काल में यूरोप की अनेक समृद्ध भाषाओं (रूसी, अंग्रेजी, फ्रांसीसी आदि) से उपन्यासों का अनुवाद भी हुआ।

प्रेमचन्दोत्तर युग

प्रेमचन्द के बाद हिन्दी उपन्यास कई मोड़ों से गुजरता हुआ दिखाई पड़ता है। सन् '40 से' 50 तक की कालावधि के उपन्यास मुख्यत: फ्रॉयड और मार्क्स की विचारधारा से, सन् '50 से' 60 तक के उपन्यास प्रयोगात्मक विशेषताओं से और सन् '60 से अब तक के उपन्यास आधुनिकतावादी विचारधारा से प्रभावित हैं। प्रेमचन्द समाज की स्वीकृत मान्यताओं के भीतर संघर्ष करते रहे। किन्तु प्रथम महायुद्ध के बाद पश्चिम के पुराने मूल्यों का तेजी के साथ विघटन हुआ। फ्रॉयड ने काम-सम्बन्धी मान्यताओं को नैतिकता-अनैतिकता से परे बताकर सामाजिक नैतिकता के आगे प्रश्नचिह्न" लगा दिया। पूंजीवादी समाज में व्यक्ति-चेतना उभर कर सामने आई। मार्क्स ने समष्टि चेतना पर विशेष बल दिया। हिन्दी उपन्यास इन विचारधाराओं से प्रभावित हुए बिना न रहा। फलस्वरूप सन् '50 के बाद उपन्यासकारों का ध्यान व्यक्ति और समाज की मुक्ति की ओर गया। किन्तु स्वतंत्रता के बीस वर्षों बाद भी मानव जीवन में एक विशेष प्रकार की कुण्ठा, निराशा, त्रास, अर्थहीनता आदि की अनुभूति होने के कारण सन् '60 के बाद के उपन्यासों में इन्हीं मनोदशाओं का चित्रण किया गया। प्रेमचन्द-युग में ही जैनेन्द्र ने फ्रॉयड से प्रभावित होकर मानव-चरित्र के स्थान पर व्यक्ति-चरित्र की सृष्टि की थी। किन्तु सन्' 51 में अज्ञेय के 'शेखर–एक जीवनी' के प्रकाशन के साथ ही हम उपन्यास की दिशा में एक नया मोड़ पाते हैं। अज्ञेय के तीन उपन्यास प्रकाशित हुए हैं–'शेखर–एक जीवनी' (दो भाग), 'नदी के द्वीप' और 'अपने-अपने अजनबी'। पहले दो उपन्यासों में व्यक्ति पात्रों के मनो विश्लेषण की प्रवृत्ति है। तीसरी रचना में कोई सम्बद्ध कथानक नहीं है। अज्ञेय ने उपन्यास को पात्र-प्रधान बनाया और सामाजिक मानव के स्थान पर व्यक्ति-मानव के अन्तर्मन का विश्लेषण करने का यत्न किया।

इलाचन्द्र जोशी को उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठा 'संन्यासी' (1914) उपन्यास-प्रकाशन के द्वारा मिली। इसने उपन्यासों में ही पहली बार मनोविश्लेषणात्मक पद्धति की विकृति देखी जा सकती है। 'सन्यासी' के अतिरिक्त 'पर्दे की रानी' (1941), 'प्रेत और छाया' 'निर्वासित', 'मुक्तिपथ' (1950) 'सुबह के भूले' (1957), 'जिप्सी', 'जहाज का पंछी' (1955) और 'ऋतुचक्र' उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। उनके उपन्यासों की विकास-यात्रा में 'मुक्तिपथ' एक नए मोड़ की सूचना देता है। 'मुक्तिपथ' के पूर्ववर्ती उपन्यास ग्रन्थियों के विश्लेषण पर आधारित है। उनकी भाव-भूमियाँ एकांगी, संकुचित और छोटी हैं। 'मुक्तिपथ' तथा उसके बाद जो उपन्यास लिखे गये, उनमें परिदृष्य का विस्तार और सामाजिकता का समावेश दिखाई पड़ता है।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों में अपनी विशिष्ट विचारधारा, ईमानदारी और सर्जनात्मक शक्ति के कारण यशपाल ने स्वतंत्र व्यक्तित्त्व बना लिया। ऐतिहासिक दृष्टि से यशपाल को प्रेमचन्द उपन्यास-परम्परा की अगली कड़ी के रूप में माना जा सकता है। यशपाल का प्रारम्भिक जीवन क्रांतिकारी दल से सम्बद्ध था। वे इसके सक्रिय सदस्य थे, इसके लिए उन्हें चौदह वर्ष का कारावास भी मिला। कारावास काल में उनका सारा समय अध्ययन-मनन में व्यतीत हुआ। इसी समय मार्क्सवादी विचारधारा का इन पर गहरा प्रभाव पड़ा। साहित्य के क्षेत्र में उतरने पर उन्होंने इसी विचारधारा को आगे बढ़ाया। उनके उपन्यास हैं–'अमिता', 'दिव्या', 'दादा कामरेड' (1941), 'देशद्रोही' (1943), 'पार्टी कामरेड' (1946), 'मनुष्य के रूप में' (1949), 'झूठा सच'–प्रथम भाग, 'वतन और देश' (1958), दूसरा भाग 'देश का भविष्य' (1960)।

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' यशपाल की परम्परा में आते हैं। चढ़ती धूप, नई इमारत, उल्का और मरुप्रदीप उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। पर इनमें द्वन्द्वात्मक चेतना पूरे तौर पर नहीं उभरती। भगवतीचरण वर्मा प्रेमचन्दीय परम्परा के उपन्यासकार हैं। सन् '50 तक यह परम्परा चलती रही प्रेम चन्द ने अपने साहित्य में समसामयिक समस्याओं को चित्रित किया और वर्मा जी परिवर्तमान ऐतिहासिक धारा को मध्यमवर्ग के माध्यम से अंकित करते रहे हैं–मुख्यत: '40 के बाद लिखे गये उपन्यासों में। इनमें टेढ़े-मेढ़े रास्ते', 'आखिरी दाव' 'भूले-बिसरे-चित्र', 'सामर्थ्य और सीमा', 'सबहिं नचावत राम गुसाईं', मुख्य हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क को प्रेमचन्द-परम्परा का उपन्यासकार कहा जाता है। पर वे समग्र रूप से प्रेमचन्दीय परम्परा से नहीं जुड़ पाते। जहाँ तक मध्यवर्गीय परिवारों और व्यक्तियों की

परिस्थितियों, समस्याओं और परिवेश का सम्बन्ध है, वहाँ तक वे प्रेमचन्दीय परम्परा के उपन्यासकार हैं। प्रेमचन्द की अपेक्षा अधिक यथार्थवादी, इसलिए प्रामाणिक भी। प्रेमचन्द के वैविध्य और जीवन-चेतना का इनमें अभाव है। 'सितारों के खेल' के बाद इनके कई उपन्यास प्रकाशित हुए हैं–गिरती दीवारें, 'गर्म राख' 'बड़ी-बड़ी आँखें', पत्थर अल पत्थर', 'शहर में घूमता आइना' और 'एक नन्हीं किन्दील'। 'गिरती दीवारें' इनका सर्वोत्तम उपन्यास है। गर्म राख, बड़ी-बड़ी आँखें, पत्थर अल पत्थर सुगठित उपन्यासों की श्रेणी में रखे जायेंगे। अन्तिम दोनों उपन्यास 'गिरती दीवारें' का विस्तार हैं।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं के आवर्त में पड़ा व्यक्ति कभी अपने को उनके अनुरूप ढालता है, कभी उनसे आहत होता है, कभी छोटे-मोटे सुधारों के द्वारा समाज का परिष्कार करता है। वहाँ समाज प्रधान है, व्यक्ति गौण। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों ने व्यक्ति की सनकों, अन्तद्वन्द्वों को समाज से अधिक महत्व दिया है।

अमृतलाल नागर के उपन्यासों में व्यक्ति और समाज के सापेक्षिक सम्बन्धों को चित्रित किया गया है। 'नवाबी मसनद', 'सेठ बाँकेमल', 'महाकाल', 'बूंद और समुद्र', शतरंज के मोहरे', 'सुहाग के नूपुर', 'एकदा नैमिषारण्ये' और 'मानस का हंस' उनके प्रकाशित उपन्यास हैं। अपने विस्तार और गहराई के कारण 'बूंद और समुद्र' विशेष महत्वपूर्ण बन पड़ा है।

50 के बाद के दशक को आंचलिक उपन्यासों का दशक मान लिया जाता है। वस्तुतः इस समय के उपन्यासों वैयक्तिकता और सामाजिकता दोनों हैं। वैयक्तिक इसलिए कि वह पुराने नैतिक मूल्यों से मुक्त होकर खुले वातावरण में सांस लेना चाहता है, सामाजिक इसलिए कि अभी समाज को आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र होने में लम्बी मंजिल तय करनी थी। देश के विभाजन के कारण जो नई समस्याएं उत्पन्न हुई, उन्हें भी औपन्यासिक रूप दिया गया। प्रवृत्तिक दृष्टि से इस दशक के उपन्यासों को तीन प्रवृत्तियों में बांटा जा सकता है–ग्रामांचल के उपन्यास, मनोवैज्ञानिक उपन्यास और प्रयोगशील उपन्यास।

ग्रामांचल को ही समग्रता से चित्रित करने वाले उपन्यासों को ही आंचलिक कहकर आंचलिकता के अर्थ को सीमित कर दिया जाता है। फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आंचल' के प्रकाशन के पूर्व नागार्जुन का 'बलचनमा' (1952) प्रकाशित हो चुका था। पर इसे आंचलिक नहीं कहा गया। यद्यपि इसमें आंचलिकता का कम रंग नहीं है। नागार्जुन के उपन्यासों में दरभंगा-पूर्णिया जिले

का राजनीतिक-सांस्कृतिक साक्षात्कार होता है। इनका मार्क्सवादी दृष्टिकोण गाँव की कहानी पर आरोपित प्रतीत होता है। कथानक स्वयं विकसित न होकर पूर्वनिधार्रित योजना के अनुसार चलता है। इसके फलस्वरूप उपन्यासों की सर्जनात्मकता शिथिल और अवरुद्ध हो जाती है। 'बलचनमा', 'रतिनाथ की चाची', 'नई पौध', 'बाबा बटेसरनाथ', 'दुखमोचन', 'वरुण के बेटे' आदि उनके प्रकाशित उपन्यास हैं।

फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों को ही सर्वप्रथम आंचलिक उपन्यास की संज्ञा दी गयी, क्योंकि स्वयं रेणु ने ही 'मैला आंचल' को आंचलिक उपन्यास कहा। 'मैला आंचल' के प्रकाशन के बाद 'परती परिकथा' प्रकाशित हुआ।

उदयशंकर भट्ट का 'सागर, लहरे और मनुष्य' (1955) में बम्बई के पश्चिमी तट पर बसे हुए बरसोवा गांव के मछुओं की जीवन-गाथा वर्णित है। रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूँ' में जरायमपेशा नटों की जिन्दगी को उजागर किया गया है। नट-जीवन और आधुनिक जीवन की असंगतियों को चित्रित करते हुए लेखक ने उज्ज्वल भविष्य का संकेत किया है कि शोषण की घुटन सदैव नहीं रहेगी। भैरवप्रसाद गुप्त का 'सत्ती मैया का चौरा' मार्क्सवादी दृष्टिकोण से लिखा गया ग्रामांचल का ही उपन्यास है।

सातवें दशक में भी ग्रामांचल को आधार बना कर राही मासूम रजा, शिवप्रसाद सिंह, रामदरश मिश्र आदि ने उपन्यास लिखे। राही का 'आधा गांव' शिया मुसलमानों की जिन्दगी पर लिखा गया है और शिवप्रसाद सिंह की 'अलग-अलग वैतरणी' में आधुनिकता-बोध को सन्निविष्ट करने का प्रयास किया गया है। किन्तु इनके मूल स्वर त्रसद (ट्रेजिक) हैं। रामदरश मिश्र के 'जल टूटता हुआ' तथा 'सूखता हुआ तालाब' और देवेन्द्र सत्यार्थी का 'रथ के पहिये' ग्रामांचलीय उपन्यास हैं। श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी' पारंपरिक अर्थ में उपन्यास नहीं है। यद्यपि इसकी कथा ग्रामांचल से सम्बद्ध है। फिर भी यह आंचलिक नहीं है। रिपोर्ताज शैली में लिखे गये इस उपन्यास में स्वतंत्र देश की नवीन व्यवस्थाओं का मखौल उड़ाया गया है।

छठे दशक में देवराज मुख्यतः मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार की श्रेणी में आते हैं। धर्मवीर भारती का 'गुनाहों का देवता' मनोविज्ञान पर आधारित उपन्यास है, यद्यपि वह पांचवें दशक में प्रकाशित हुआ। भारती और देवराज दोनों के उपन्यासों का वातावरण महाविद्यालयीय है। 'गुनाहों का देवता' अपनी कैशोर्य भावुकता तथा रूमानियत के कारण काफी लोकप्रिय हुआ। 'पथ को खोज', 'बाहर

भीतर', 'रोड़े और पत्थर', 'अजय की डायरी' और 'मैं, वे और आप' देवराज के उपन्यास हैं। इन सभी उपन्यासों की मूलवर्तिनीधारा है–विवाह के बाहर का प्रेम।

मन्मथनाथ गुप्त, भैरवप्रसाद गुप्त, अमृतराय, लक्ष्मीनारायण लाल, राजेन्द्र यादव आदि नवीन सामाजिक चेतना के उपन्यासकार हैं। भैरवप्रसाद गुप्त के 'मशाल', 'गंगा मैया', 'सती मैया का चौरा', अमृतराय के 'बीज', 'नागफनी का देश', 'हाथी के दांत' संघर्ष और प्रगति के मिथक के सूचक हैं। लक्ष्मीनारायण लाल के 'ध रती की आँखें', काले फूलों का पौधा', रूपाजीवा' में उपर्युक्त स्तर की सामाजिक चेतना को उभारने की कोशिश है। 'काले फूलों का पौधा' चरित्र-चित्रण, संस्कृति-संघर्ष और नव्यतर तकनीक के कारण विशिष्ट बन पड़ा है।

'प्रेत बोलते हैं', 'सारा आकाश', 'उखड़े हुए लोग' और 'एक इंच मुस्कान' राजेन्द्र यादव के उपन्यास हैं। 'एक इंच मुस्कान' यादव और मन्नू भंडारी का सहयोगी लेखन है। इसमें खंडित व्यक्तित्त्व वाले आधुनिक व्यक्तियों की प्रेम-त्रासदी (ट्रेजिडी) है। आधुनिक जीवन की इस त्रासदी को अंकित करने के कारण यह उपन्यास यादव के अन्य उपन्यासों की अपेक्षा कहीं अधिक समकालीन और महत्वपूर्ण है।

कविता में नए प्रयोगों के साथ-साथ कहानी-उपन्यास आदि में भी नये प्रयोग हुए हैं। अब कहानी का तत्त्व क्षीण हो गया है, कथानक का पुराना रूप विघटित होकर नया हो गया है। अब जिन्दगी पूरे तौर पर विश्लेषित न होकर चेतना प्रवाह, स्वप्न सृष्टि के साथ जुड़ गई है, प्रतीक, कालांतर आदि के द्वारा उपन्यासों में नए शिल्प के दर्शन हुए हैं। इस प्रयोग-संपर्क में प्रभाकर माचवे के परन्तु', 'साँचा' और आभा', भारतीका 'सूरज का सांतवा घोड़ा', गिरधर गोपाल का 'चांदनी रात के खंडहर', सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का 'सोया हुआ जल' नरेश मेहता का 'डूबते मस्तूल' आदि अनेक प्रकार की विसंगतियों से भरे हुए प्रयोगशील उपन्यास हैं। उद्योगीकरण, महानगरीय सभ्यता, बदले हुए मानसिक परिवेश और भ्रष्ट व्यवस्था के कारण आज व्यक्ति यांत्रिक, अजनवी, अकेला या विद्रोही हो गया है। इसकी अभिव्यक्ति मुख्यत: साठोत्तरी साहित्य में होती है, भले ही उपन्यास, नाटक की अपेक्षा इसका तेवर कविता और कहानी में ही अधिक तेजस्वितापूर्ण दिखाई देता है। इस प्रकार के उपन्यासों को तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है–

(1) यौन विकृतियों में पनाह खोजने वाले उपन्यास–मोहन राकेश के 'अन्धेरे बन्द कमरे', 'न आने वाला कल' और 'अन्तराल', निर्मल वर्मा का 'वे दिन', महेन्द्र भल्ला का 'एक पति के नोट्स' राजकमल चौधरी के 'मछली मरी हुई' और 'शहर था शहर नहीं था', श्री कान्त वर्मा का 'दूसरी बार', ममता कालिया का 'बेघर', गिरिराज किशोर का 'यात्राएं' मणिमधुकर का 'सफेद मेमने', कृष्णा सोबती का' सूरजमुखी अंधेरे के' आदि उपन्यास इसी कोटि के हैं। इन उपन्यासों के प्राय: सभी नायक मानसिक दृष्टि से अनिर्णयात्मक, आत्म-निर्वासित और नपुंसक हैं। वे मुक्त होने की प्रक्रिया में ऐसी उलझन में फंस जाते हैं, जहां से उन्हें निष्कृति नहीं मिलती। इन उपन्यासों से आधुनिकता का जो चित्र प्रस्तुत किया गया है, उसमें स्त्री-शरीर 'नशे' या 'ड्रग' का काम करता है। राकेश को छोड़कर शेष उपन्यासों में प्रामाणिकता की भी कमी है।

(2) दी हुई मानवीय स्थितियों में बेमेल व्यक्तियों को चित्रित करने वाले उपन्यास–इस श्रेणी में उषा प्रियंवदा का 'रुकोगी नहीं राधिका'और मन्नू भंडारी के 'आय बंटी'की गणना की जाएगी। इन उपन्यासों की आधारभूमियां ठोस और प्रामाणिक हैं।

(3) व्यवस्था की घुटन को अपनी नियति मानने या उसके विरुद्ध युद्ध करने वाले उपन्यास–नरेश मेहता का 'वह पथ बन्धु था', गोविन्द मिश्र का वह 'अपना चेहरा', बदीउज्जमा का 'एक चूहे की मौत', काशीनाथ सिंह का 'अपना मोर्चा, नरेन्द्र कोहली का 'आश्रितों का विद्रोह' आदि उपन्यास इस कोटि के अन्तर्गत आते हैं। लक्ष्मीकान्त वर्मा ने भी कई प्रयोगशील और प्रतिबद्ध उपन्यास लिखे हैं।

इनके अतिरिक्त गिरिराज किशोर का 'जुगलबन्दी' और 'ढाई आखर', लेख बख्शी का 'वैशाखियों वाली इमारत', देवराज उपाध्याय का 'दूसरा सूत्र' और 'अजय की डायरी' कमलेश्वर का 'डाक बंगाला' और 'काली आंधी' और मन्नू भंडारी का 'महाभोज' श्री लाल शुक्ल का 'मकान' शिवप्रसाद सिंह का 'नीला चाँद' आदि उपन्यास उल्लेखनीय हैं। रमेश चौधरी आरिगमूडि, ओंकार शरद, मार्कण्डेय, मुद्राराक्षस, आनन्द प्रकाश चौबे, श्रीलाल शुक्ल, मोहन सिंह सेंगर, सत्येन्द्र गुप्त, राजेन्द्र अवस्थी, हंसराज रहबर, रामदरश मिश्र, मनहर चौहान, शिवप्रसाद सिंह, राही मासूम रजा, शिवानी आदि उपन्यास के क्षेत्र में अच्छा कार्य कर रहे हैं। यूरोप के पुराने और नये उपन्यासों के अनुवाद का कार्य भी हो रहा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास का युग प्रयोग का युग रहा। जीवन-मरण सम्बन्धी पुराने सभी मत मतान्तरों को चुनौती दी गई है। महानगरीय अकेलापन, अत्यधिक निकटता में अजनबी पन, विसंगति, संत्रास यांत्रिक तटस्थता आदि का चित्रण किया गया है। बाह्य यथार्थ की अपेक्षा आन्तरिक यथार्थ को अधिक महत्ता दी गई है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का 'सोया हुआ लाल', लक्ष्मी नारायण लाल का 'हरा समन्दर गोपी चन्दर' जैसे आधुनिक उपन्यासों में कथा का ह्रास हुआ है कथानक का नहीं। उपन्यासों में पीढ़ियों का वैचारिक मतभेद, पति-पत्नी, भाई-बहन, माँ-बाप के सम्बन्ध में दोहरा व्यक्तित्त्व, अन्त:बाह्य संघर्ष, मिल मालिक और मजदूरों का संघर्ष, कृषकों का जागरूक होना पुलिस की धांधलियाँ, महाजनों के धन शोषण के तरीके महानगर, कस्बे और गावों के परिवर्तन को समग्रता में रेखांकित किया गया है। उपन्यासों में पूर्वदीप्ति शैली, आत्म कथात्मक शैली, संकेत शैली, प्रतीक शैली द्वारा मानवीय संवेदना को उभारा गया है। विषय और शैली दोनों दृष्टियों से आज के उपन्यास समृद्ध दिखाई देते हैं।

2

कहानी

कहानी हिन्दी में गद्य लेखन की एक विधा है। उन्नीसवीं सदी में गद्य में एक नई विधा का विकास हुआ जिसे कहानी के नाम से जाना गया। बंगला में इसे गल्प कहा जाता है। कहानी ने अंग्रेजी से हिंदी तक की यात्रा बंगला के माध्यम से की। कहानी गद्य कथा साहित्य का एक अन्यतम भेद तथा उपन्यास से भी अधिक लोकप्रिय साहित्य का रूप है। मनुष्य के जन्म के साथ ही साथ कहानी का भी जन्म हुआ और कहानी कहना तथा सुनना मानव का आदिम स्वभाव बन गया। इसी कारण से प्रत्येक सभ्य तथा असभ्य समाज में कहानियाँ पाई जाती हैं। हमारे देश में कहानियों की बड़ी लंबी और सम्पन्न परंपरा रही है। वेदों, उपनिषदों तथा ब्राह्मणों में वर्णित 'यम-यमी', 'पुरुरवा-उर्वशी', 'सौपर्णी-काद्रव', 'सनत्कुमार- नारद', 'गंगावतरण', 'श्रृंग', 'नहुष', 'ययाति', 'शकुन्तला', 'नल-दमयन्ती' जैसे आख्यान कहानी के ही प्राचीन रूप हैं।

प्राचीनकाल में सदियों तक प्रचलित वीरों तथा राजाओं के शौर्य, प्रेम, न्याय, ज्ञान, वैराग्य, साहस, समुद्री यात्र, अगम्य पर्वतीय प्रदेशों में प्राणियों का अस्तित्त्व आदि की कथाएँ, जिनकी कथानक घटना प्रधान हुआ करती थीं, भी कहानी के ही रूप हैं। 'गुणढ्य' की 'वृहत्कथा' को, जिसमें 'उदयन', श्वासवदत्ता', समुद्री व्यापारियों, राजकुमार तथा राजकुमारियों के पराक्रम की घटना प्रधान कथाओं का बाहुल्य है, प्राचीनतम रचना कहा जा सकता है। वृहत्कथा का प्रभाव 'दण्डी' के 'दशकुमार चरित', 'बाणभट्ट' की 'कादम्बरी',

'सुबन्धु' की 'वासवदत्ता', 'धनपाल' की 'तिलकमंजरी', 'सोमदेव' के 'यशस्तिलक' तथा 'मालतीमाधव', 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्', 'मालविकाग्निमित्र', 'विक्रमोर्वशीय', 'रत्नावली', 'मृच्छकटिकम्' जैसे अन्य काव्यग्रंथों पर साफ-साफ परिलक्षित होता है। इसके पश्चात् छोटे आकार वाली 'पंचतंत्र', 'हितोपदेश', 'बेताल पच्चीसी', 'सिंहासन बत्तीसी', 'शुक सप्तति', 'कथा सरित्सागर', 'भोजप्रबन्ध' जैसी साहित्यिक एवं कलात्मक कहानियों का युग आया। इन कहानियों से श्रोताओं को मनोरंजन के साथ ही साथ नीति का उपदेश भी प्राप्त होता है। प्रायः कहानियों में असत्य पर सत्य की, अन्याय पर न्याय की और अधर्म पर धर्म की विजय दिखाई गई है।

परिभाषा

अमेरिका के कवि-आलोचक-कथाकार 'एडगर एलिन पो' के अनुसार कहानी की परिभाषा इस प्रकार है: 'कहानी वह छोटी आख्यानात्मक रचना है, जिसे एक बैठक में पढ़ा जा सके, जो पाठक पर एक समन्वित प्रभाव उत्पन्न करने के लिये लिखी गई हो, जिसमें उस प्रभाव को उत्पन्न करने में सहायक तत्त्वों के अतिरिक्त और कुछ न हो और जो अपने आप में पूर्ण हो।' हिंदी कहानी को सर्वश्रेष्ठ रूप देने वाले 'प्रेमचन्द' ने कहानी की परिभाषा इस प्रकार से की है: 'कहानी वह ध्रुपद की तान है, जिसमें गायक महफिल शुरू होते ही अपनी संपूर्ण प्रतिभा दिखा देता है, एक क्षण में चित्त को इतने माधुर्य से परिपूर्ण कर देता है, जितना रात भर गाना सुनने से भी नहीं हो सकता।' हिन्दी के लेखकों में प्रेमचंद पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने अपने तीन लेखों में कहानी के सम्बंध में अपने विचार व्यक्त किए हैं-'कहानी (गल्प) एक रचना है जिसमें जीवन के किसी एक अंग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहता है। उसके चरित्र, उसकी शैली, उसका कथा-विन्यास, सब उसी एक भाव को पुष्ट करते हैं। उपन्यास की भाँति उसमें मानव-जीवन का संपूर्ण तथा बृहत रूप दिखाने का प्रयास नहीं किया जाता। वह ऐसा रमणीय उद्यान नहीं जिसमें भाँति-भाँति के फूल, बेल-बूटे सजे हुए हैं, बल्कि एक गमला है जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है।' कहानी की और भी परिभाषाएँ उद्धृत की जा सकती हैं। पर किसी भी साहित्यिक विधा को वैज्ञानिक परिभाषा में नहीं बाँधा जा सकता, क्योंकि साहित्य में विज्ञान की सुनिश्चितता नहीं होती। इसलिए उसकी जो भी परिभाषा दी जाएगी वह अधूरी होगी।

कहानी के तत्त्व

रोचकता, प्रभाव तथा वक्ता एवं श्रोता या कहानीकार एवं पाठक के बीच यथोचित सम्बद्धता बनाये रखने के लिये सभी प्रकार की कहानियों में निम्नलिखित तत्त्व महत्वपूर्ण माने गए हैं–कथावस्तु, पात्र अथवा चरित्र-चित्रण, कथोपकथन अथवा संवाद, देशकाल अथवा वातावरण, भाषा-शैली तथा उद्देश्य। कहानी के ढाँचे को कथानक अथवा कथावस्तु कहा जाता है। प्रत्येक कहानी के लिये कथावस्तु का होना अनिवार्य है, क्योंकि इसके अभाव में कहानी की रचना की कल्पना भी नहीं की जा सकती। कथानक के चार अंग माने जाते हैं-आरम्भ, आरोह, चरम स्थिति एवं अवरोह। कहानी का संचालन उसके पात्रों के द्वारा ही होता है तथा पात्रों के गुण-दोष को उनका 'चरित्र-चित्रण' कहा जाता है। चरित्र-चित्रण से विभिन्न चरित्रों में स्वाभाविकता उत्पन्न की जाती है। संवाद कहानी का प्रमुख अंग होते हैं। इनके द्वारा पात्रों के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व एवं अन्य मनोभावों को प्रकट किया जाता है। कहानी में वास्तविकता का पुट देने के लिये देशकाल अथवा वातावरण का प्रयोग किया जाता है। प्रस्तुतीकरण के ढंग में कलात्मकता लाने के लिए उसको अलग-अलग भाषा व शैली से सजाया जाता है। कहानी में केवल मनोरंजन ही नहीं होता, अपितु उसका एक निश्चित उद्देश्य भी होता है।

हिन्दी कहानी का इतिहास

1910 से 1960 के बीच हिन्दी कहानी का विकास जितनी गति के साथ हुआ उतनी गति किसी अन्य साहित्यिक विधा के विकास में नहीं देखी जाती। सन 1900 से 1915 तक हिन्दी कहानी के विकास का पहला दौर था। मन की चंचलता (माधवप्रसाद मिश्र) 1907 गुलबहार (किशोरीलाल गोस्वामी) 1902, पंडित और पंडितानी (गिरिजादत्त वाजपेयी) 1903, ग्यारह वर्ष का समय (रामचंद्र शुक्ल) 1903, दुलाईवाली (बंगमहिला) 1907, विद्या बहार (विद्यानाथ शर्मा) 1909, राखीबंद भाई (वृन्दावनलाल वर्मा) 1909, ग्राम (जयशंकर 'प्रसाद') 1911, सुखमय जीवन (चंद्रधर शर्मा गुलेरी) 1911, रसिया बालम (जयशंकर प्रसाद) 1912, परदेसी (विश्वम्भरनाथ जिज्जा) 1912, कानों में कंगना (राजाराधिकारमण प्रसाद सिंह) 1913, रक्षाबंधन (विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक') 1913, उसने कहा था (चंद्रधर शर्मा गुलेरी) 1915, आदि के प्रकाशन से सिद्ध होता है कि इस प्रारंभिक काल में हिन्दी कहानियों के विकास

के सभी चिह्न मिल जाते हैं। प्रेमचंद के आगमन से हिन्दी का कथा-साहित्य आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की ओर मुड़ा और प्रसाद के आगमन से रोमांटिक यथार्थवाद की ओर। चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की कहानी 'उसने कहा था' में यह अपनी पूरी रंगीनी में मिलता है। सन 1922 में उग्र का हिन्दी-कथा-साहित्य में प्रवेश हुआ। उग्र न तो प्रसाद की तरह रोमांटिक थे और न ही प्रेमचंद की भाँति आदर्शोन्मुख यथार्थवादी। वे केवल यथार्थवादी थे–प्रकृति से ही उन्होंने समाज के नंगे यथार्थ को सशक्त भाषा-शैली में उजागर किया।

1927-1928 में जैनेन्द्र ने कहानी लिखना आरंभ किया। उनके आगमन के साथ ही हिन्दी-कहानी का नया उत्थान शुरू हुआ। 1936 प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हो चुकी थी। इस समय के लेखकों की रचनाओं में प्रगतिशीलता के तत्त्व का जो समावेश हुआ उसे युगधर्म समझना चाहिए। यशपाल राष्ट्रीय संग्राम के एक सक्रिय क्रांतिकारी कार्यकर्ता थे, अत: वह प्रभाव उनकी कहानियों में भी आया। अज्ञेय प्रयोगधर्मा कलाकार थे, उनके आगमन के साथ कहानी नई दिशा की ओर मुड़ी। जिस आधुनिकता बोध की आज बहुत चर्चा की जाती है उसके प्रथम पुरस्कर्ता अज्ञेय ही ठहरते हैं। अश्क प्रेमचंद परंपरा के कहानीकार हैं। अश्क के अतिरिक्त वृंदावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, इलाचन्द्र जोशी, अमृतलाल नागर आदि उपन्यासकारों ने भी कहानियों के क्षेत्र में काम किया है। किन्तु इनका वास्तविक क्षेत्र उपन्यास है कहानी नहीं। इसके बाद सन 1950 के आस-पास से हिन्दी कहानियाँ नए दौर से गुजरने लगीं। आधुनिकता बोध की कहानियाँ या नई कहानी नाम दिया गया।

हिंदी कहानियों का इतिहास भारत में सदियों पुराना है। प्राचीन काल से ही कहानियां भारत में बोली, सुनी और लिखी जा रही है। ये कहानियां ही है, जो हमें हिम्मत से भर देती है और हम असंभव कार्य को भी करने को तैयार हो जाते हैं और अत्यंत कठिनाइयों के बावजूद ज्यादातर कार्य पूरे भी होते हैं शिवाजी महाराज को उनकी माता ने कहानी सुना सुनाकर इतना महान बना दिया कि शिवाजी महाराज छत्रपति शिवाजी महाराज बन गए। हिंदी कहानियों को पढ़ कर आप अपने आत्म विश्वास को बढ़ा सकते हैं। हिन्दी कहानी हिंदी साहित्य की प्रमुख कथात्मक विधा है। आधुनिक हिंदी कहानी का आरंभ 20 वीं सदी में हुआ। पिछले एक सदी में हिंदी कहानी ने आदर्शवाद, यथार्थवाद, प्रगतिवाद, मनोविश्लेषणवाद, आँचलिकता, आदि के दौर से गुजरते हुए सुदीर्घ यात्रा में अनेक उपलब्धियां हासिल की है। निर्मल वर्मा के वे दिन जैसे कहानी संग्रह

साहित्य अकादमी से भी सम्मानित हो चुके हैं। प्रेमचंद, जैनेंद्र, अज्ञेय, यशपाल, फणीश्वरनाथ रेणु, उषा प्रियंवदा, मन्नु भंडारी, ज्ञानरंजन, उदय प्रकाश, ओमप्रकाश बाल्मिकी आदि हिंदी के प्रमुख कहानीकार हैं।

पहली कहानी कौन

कहानी के तत्त्वों की पर्याप्त उपस्थिति के आधार पर हिंदी कहानियों के वर्गीकरण की शृंखला में 'हिंदी की पहली कहानी' का प्रश्न विवाद ग्रस्त है। सबसे प्राचीन कहानियों में, कालक्रम की दृष्टि से सैयद इंशा अल्लाह खान द्वारा 1803 या 1808 ईस्वी में रचित 'रानी केतकी की कहानी' जहां मध्यकालीन किस्म की किस्सागोई मात्र है, जो पारसी थियेटर के लटको- झटको से भरी है, वहीं 1871 ईस्वी में अमेरिकी पादरी रेवरेंड जे. न्यूटन द्वारा रचित कहानी 'एक जमीदार का दृष्टांत' आदर्शवादी धर्म प्रचारक दृष्टिकोणान्मुख-आंतरिक संरचना की दृष्टि से कमजोर रचना है। इसी क्रम में किशोरी लाल गोस्वामी की ' प्रणयिनी परिणय', राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिंद' की 'राजा भोज का सपना', भारतेंदु हरिश्चंद्र कृत 'एक अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न' भी अपने परंपरागत स्वरूप के कारण कहानी की कसौटी पर खरी नहीं उतरती।

बीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में 'सरस्वती' तथा अन्य पत्रिकाओं में प्रकाशित किशोरी लाल गोस्वामी कृत 'इंदुमति', माधवराव सप्रे द्वारा रचित 'एक टोकरी भर मिट्‌टी', आचार्य रामचंद्र शुक्ल कृत 'ग्यारह वर्ष का समय' तथा राजेंद्र वाराघोष बंग महिला द्वारा रचित 'दुलाईवाली' आदि कहानियों की गिनती भी हिंदी की पहली कहानी बनने की होड़ में की जाती है। उपर्युक्त कहानियों में से 'इंदुमती' (1900 ई.) को शुक्ल जी इस शर्त पर 'हिंदी की पहली कहानी' मानते हैं कि वह किसी बंगला कहानी की छाया ना हो। बाद में उसे शेक्सपियर की रचना 'द टेंपेस्ट' से प्रभावित पाए जाने पर की हिंदी की पहली कहानी बनने की होड़ से बाहर कर दिया गया।

विकास का पहला दौर

वस्तुतः सन 1900 ई. से 1915 ई. तक हिन्दी कहानी के विकास का पहला दौर था। मन की चंचलता (माधवप्रसाद मिश्र) 1907 ई. गुलबहार (किशोरीलाल गोस्वामी) 1902 ई., पंडित और पंडितानी (गिरिजादत्त वाजपेयी) 1903 ई., ग्यारह वर्ष का समय (रामचंद्र शुक्ल) 1903 ई., दुलाईवाली

(बगमहिला) 1907 ई., विद्या बहार (विद्यानाथ शर्मा) 1909 ई., राखीबंद भाई (वृन्दावनलाल वर्मा) 1909 ई., ग्राम (जयशंकर 'प्रसादश) 1911 ई., सुखमय जीवन (चंद्रधर शर्मा गुलेरी) 1911 ई., रसिया बालम (जयशंकर प्रसाद) 1912 ई., परदेसी (विश्वम्भरनाथ जिज्जा) 1912 ई., कानों में कंगना (राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह)1913 ई., रक्षाबंधन (विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक') 1913 ई., उसने कहा था (चंद्रधर शर्मा गुलेरी) 1915 ई., आदि के प्रकाशन से सिद्ध होता है कि इस प्रारंभिक काल में हिन्दी कहानियों के विकास के सभी चिन्ह मिल जाते हैं। 1950 ई तक हिन्दी कहानी का एक विस्तृत दौर समाप्त हो जाता है और हिन्दी कहानी परिपक्वता के दौर में प्रवेश करती है।

विकास का दूसरा दौर

सन् 1916 ई., प्रेमचंद की पहली कहानी सौत प्रकाशित हुई। प्रेमचंद के आगमन से हिन्दी का कथा-साहित्य समाज-सापेक्ष सत्य की ओर मुड़ा। प्रेमचंद की आखिरी कहानी 'कफन' 1936 ई., में प्रकाशित हुई और उसी वर्ष उनका देहावसान ली हुआ। बीस वर्षों की इस अवधि में कहानी की कई प्रवृत्तियाँ उभर कर आईं। किंतु इन प्रवृत्तियों को अलग-अलग न देखकर यदि समग्रत: देखा जाय तो इस समूचे काल को आदर्श और यथार्थ के द्वन्द्व के रूप में लिया जा सकता है। इस कालावधि में 'प्रसाद' और प्रेमचंद कहानियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रसाद मुख्यत रोमांटिक कहानीकार हैं। किंतु उनके अंतिम कहानी संग्रह 'इंद्रजाल' (1936 ई.) में संग्रहीत इन्द्रजाल, गुंडा, सलीम, विरामचिन्ह से उनकी यथार्थोंमुखी प्रवृत्ति को पहचाना जा सकता है। पर रोमांटिक होने के कारण वे आदर्शवादी थे। प्रेमचंद ने अपने को आदर्शोंमुखी यथार्थवादी कहा है। वस्तुत: वे भी आदर्शवादी थे। किंतु अपने विकास के अंतिम काल में वे यथार्थ की कटुता को भोगकर यथार्थवादी हो गए। 'पूस की रात' और 'कफन' इसके प्रमाण हैं। सन '33 में निराला का एक संग्रह 'लिली' प्रकाशित हो चुका था। उसकी कहानियाँ बहुत कुछ यथार्थवादी ही हैं।

प्रसाद का रोमांटिक आदर्श उनकी प्रारम्भिक कहानियों में भी दिखाई देता है। पर चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की कहानी 'उसने कहा था' (1915 ई.) में यह अपनी पूरी रंगीनी में मिलता है। प्रसाद की महत्त्वपूर्ण रोमांटिक कहानियाँ 'उसने कहा था' के बाद लिखी गईं। 'उसने कहा था' अपने परिपार्श्व (सेटिंग), चरित्र-कल्पना, परिणति में रोमांटिक है। प्रेमजन्य त्याग, बलिदान–यहाँ तक कि

मृत्यु का वरण सभी कुछ रोमांटिक आदर्श की परिपूर्ति करते हैं। आठ वर्ष की लड़की और बारह वर्ष के लड़के में जिस प्रेम का उदय होता है वह पच्चीस वर्षों के अन्तराल के बाद भी इस तरह उभर आता है कि उस रोमांटिक प्रेम के निमित्त लहना सिंह प्राण दे देता है। इस आदर्श की रक्षा के लिए वास्तविकता को नजरअंदाज कर दिया गया है। इस कहानी की तकनीकी उपलब्धियाँ अभूतपूर्व हैं। नाटकीयता, स्थानिक रंग, रंगीन सेटिंग, जीवंत वर्णन, फ्लैश बैक, स्वप्न आदि को कहानी में समाविष्ट करने का पहला श्रेय उन्हीं को है। प्रसाद ने अपनी कहानियों में गुलेरजी की कतिपय तकनीकी विशेषताओं को ग्रहण किया हा पर वे मूलत प्रगीतात्मक (लीरिकल) हैं। प्रगीतों में कथा तत्त्व कम, भाव अधिक होता है। वे छायावाद के प्रतिनिधि कवि हैं। अतीत के शौर्यमूलक चित्रों, प्रभावशाली प्राकृतिक वातावरणों, प्रेमगत अन्तर्द्वन्द्वों में उनका मन अधिक रमा है। प्रेम और सौन्दर्य के चित्रण में उन्होंने सर्वाधिक मनोयोग से काम लिया है। एक दूसरी विशेषता, जो प्रायः अलक्षित रह जाती है, यह है कि उन्होंने कहानी के पात्रों को व्यक्तित्त्व दिया। व्यक्तिनिष्ठता छायावादी काव्य की विशेषता रही है। नाटकों के पात्रों को भी उन्होंने सर्वप्रथम व्यक्तित्त्व दिया। वही बात कहानी को संबंध में भी कही जा सकती है। 'गुण्डा' के बाबू नन्हूक सिंह जैसे व्यक्ति चरित्र की सृष्टि अद्वितीयता में अकेली है। इस प्रकार मधूलिका, चम्पा, सालवती आदि भी अविस्मरणीय हैं। राष्ट्रीय चेतना छायावादी काव्य के एक वैशिष्टय है। इसे 'पुरस्कार' जैसी कहानियों में देखा जा सकता है। मन का गहन अन्तर्द्वन्द्व तो इनकी कहानी का मूलाधार है। 'आकाशदीप' इसका जीवंत उदाहरण है। प्रगीतात्मकता के सभी तत्त्व–अत्यधिक धनत्वपूर्ण वेदना, एकतानता आदि के लिए विसाती द्रष्टव्य हैं।

एक अलग दृष्टिकोण अपनाने के कारण उनकी कहानियाँ प्रेमचंद की कहानियों से भिन्न हो जाती हैं। इसलिये आलोचकों ने प्रसाद संस्थान की कहानियों को प्रेमचंद-संस्थान की कहानियों से पृथक माना है। दृष्टिकोण का अलगाव संरचना का अलगाव होता है। उनके कथानक में घटनाएँ कम और स्थितियों (सिचुएशन्स) के प्रति प्रतिक्रियाएँ अधिक हैं। फलस्वरूप उनमें नाटकीयता का प्राधान्य हो गया है। उनके चरित्र भी स्थितियों से गुजर कर अपने क्रिया-कलापों द्वारा अपने व्यक्तित्त्व को प्रतिष्ठित करते हैं। प्राकृतिक सेटिंग जहाँ कहीं भी ले आई गई है वह संपूर्ण कहानी का अनिवार्य अंग बन गई है। छायावादी काव्य की तरह उस पर भी मानवीय चेतना की आरोप दिखाई देता

है। अनुभूति और कल्पना का इतना एकता संयोग अन्यत्र नहीं मिलेगा। प्रेमचंद ने कहानियों को व्यष्टि-जीवन से समष्टि-जीवन की ओर मोड़ा। प्रसाद की कहानियों छायावादी काव्य-चेतना के इतने समीप है कि वे स्वयं प्रगीतात्मक हो गई हैं। उनमें मिश्रित भावों के द्वंद्व मुख्यत: काव्यात्मक और व्यक्तिमूलक हैं, इसलिए सामान्य जीवन का प्रवाह वहाँ नहीं मिलेगा। प्रेमचंद ने कहानियों पर लदी हुई आलंकारिता को अनलंकृत कर उन्हें सहज बनाया।

यों प्रेमचंद की आरंभिक कहानियों में एक दूसरा अलगाव दिखाई पड़ता है। इसे सामान्यत: आदर्शवाद के नाम से पुकारा जाता है। पर उसे सुधारवाद कहना चाहिए। बड़े घर की बेटी का बड़प्पन, बाल-विवाह का विरोध, विधवा-विवाह का समर्थन सुधारवाद के अंतर्गत ही आता है। पर क्रमश: उनमें परिवर्तन आया और उन्होंने यथार्थ भारतीय जीवन को आँकने का पूरा प्रयास किया। इस देश के मध्यवर्गीय समाज को इतने वैविध्य के साथ कहानियों में चित्रित करने का प्रयत्न किसी अन्य व्यक्ति ने नहीं किया। संख्या में भी उन्होंने काफी कहानियाँ लिखी हैं–दो सौ चौबीस। कुछ ही कहानियाँ लिखने के बाद प्राय: कहानीकार अपने को दुहराने लगते हैं, किन्तु प्रेमचंद ने अपने को दुहराया नहीं है। यह उनकी दृष्टि-व्याप्ति का सूचक है। घरेलू जीवन की समस्याओं तथा सामाजिक जीवन की विडम्बनाओं को जिस ढंग से उन्होंने चित्रित किया है वे बहुत जटिल तो नहीं पर तात्कालीन परिवारों और संस्थाओं को उजागर करने में पूर्णत: समर्थ हैं। उनकी आदर्शोन्मुख और अनसंकृत कथा-शैली भारतीय कथा-आख्यायिका के मेल में अधिक है।

पर बाद में चलकर प्रेमचंद ने अनुभव किया कि उनके आदर्श जीवन में फलीभूत नहीं हुए। इसलिये कल्पनात्मक आदर्श का पल्ला छोड़कर वे यथार्थ जीवन की कटुताओं का चित्रण करने लगे। 'पूस की रात' और 'कफन' में उनके बदले हुए दृष्टिकोण तथा नई संरचना को देखा जा सकता है। इन दोनों कहानियों को विशेष रूप से अंतिम कहानी को पूर्णत: आधुनिक कहा जा सकता है। ये कहानियाँ किसी आदर्श की खूँटी पर नहीं टँगी हैं। इनमें आलोचक यह नहीं बता सकता कि कहानी का संप्रेश्य कोई खास वस्तु है। वे अपना संप्रेश्य स्वयं हैं-आदि से अन्त तक। कोई परिणति नहीं है कोई चरमोत्कर्ष नहीं है। केवल सांकेतिकता है, पाठकों की कल्पना को उड़ान भरने की छूट है। आज की आलोचना में जिस भाषिक सर्जना की चर्चा की जाती है उसे इनमें पूरी ऊँचाई पर देखा जा सकता है। दोनों ही कहानियाँ अन्वेषण की प्रक्रिया का सुन्दर नमूना

हैं। आश्चर्य तो यह देख कर होता है कि आज की जिंदगी में जिस विदूषकत्व का प्रवेश देखा जा रहा है उसके तेवर 'कफन' में मौजूद हैं। किन्तु इस विदूषकत्व को (जो तथाकथित आलोचकों की दृष्टि में विकृति है) उन्होंने रचनात्मक संदर्भ में रखा है, जो समूचे समाज को नंगा करते हुए एक अर्थपूर्ण मूल्यदृष्टि को संकेतिक करता है। एक ऐतिहासिक संगति के फलस्वरूप कफन में आधुनिक जीवन का अकेलापन और डीह्यूमनाइजेशन सदृश्य में ही समाविष्ट हो गया है। यह हिन्दी की पहली आधुनिकता बोध की कहानी है। प्रसाद और प्रेमचंद संस्थान के जो लेखक हुए उनमें विकास का कोई क्रम लक्षित नहीं होता है। उनकी कहानियों में अपने स्वतंत्र व्यक्तित्त्व की झलक प्राय नहीं मिलती। रायकृष्णदास प्रसाद-संस्थान के लेखक हैं। चंडीप्रसाद हृदयेश में प्रसाद की काव्यात्मकता नहीं है, उनकी अलंकृति मात्र है। प्रेमचंद संस्थान के लेखकों में सुदर्शन, विश्वम्भरनाथ कौशिक, राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह, भगवतीप्रसाद वाजपेयी आदि की गणना की जाती है।

उग्र और जैनेन्द्र

सन 1922 ई. में उग्र का हिन्दी-कथा-साहित्य में प्रवेश होता है। उग्र न तो प्रसाद की तरह रोमांटिक थे और न ही प्रेमचंद की भाँति आदर्शोन्मुख यथार्थवादी। वे केवल यथार्थवादी थे–प्रकृति से ही उन्होंने समाज के नंगे यथार्थ को सशक्त भाषा-शैली में उजागर किया। समाज की गंदगी को अनावृत करने के कारण तथाकथित शुद्धतावादी आलोचकों ने उनकी तीखी आलोचना की। उनके साहित्य को घासलेटी साहित्य कहा गया। उन्होंने सामाजिक कुरूपताओं पर तीखा प्रहार किया। दोजख की आग, चिन्गारियाँ, बलात्कार, सनकी अमीर, चाकलेट, इन्द्रधनुष आदि उनकी सुप्रसिद्ध कहानियाँ हैं। इन कहानियों को अमर्यादित और विघातक बताया गया है। लेकिन यदि उनकी बहुत सी कहानियाँ अमर्यादित हैं तो आज के लेखकों की अनेक कहानियों के संबंध में भी यही कहना होगा। उग्र की कहानियों के लिये एक प्रतिमान तथा आज की वैसी ही कहानियों के लिये दूसरा प्रतिमान नहीं लागू किया जा सकता। आज के संदर्भ में उग्र की कहानियों पर पुनर्विचार करने की जरूरत है। चतुरसेन शास्त्री, ऋषभचरण जैन आदि पर उग्र का प्रभाव देखा जा सकता है।

27-28 ई. में जैनेन्द्र ने कहानी लिखना आरंभ किया। उनकी पहली कहानी खेल (सन 1927 ई) विशाल भारत में प्रकाशित हुई थी। फाँसी (1928

ई.) वातायन (1930 ई.) नीलम देश की राजकन्या (1933 ई.), एक रात (1934 ई.), दो चिड़ियाँ (1934 ई.), पाजेब (1942 ई.), जयसंधि (1947 ई.) आदि उनके कहानी संग्रह हैं। उनके आगमन के साथ ही हिन्दी-कहानी का नया उत्थान शुरू होता है।

नए उत्थान का मतलब मनोवैज्ञानिक कहानियाँ कहने से स्पष्ट नहीं होता। उन्हें हिन्दी का शरद्चंद्र कह कर भी लोग भ्रांति की सृष्टि करते हैं। जैनेंद्र में शरद्चंद्र की रुआँसी भावुकता नहीं है। जैनेन्द्र की कहानियों में एक विशिष्ट प्रकार के जीवन-दर्शन की खोज है। प्रसाद की कहानियों में भी मन का गहरा द्वंद्व चित्रित हुआ है। पर इस द्वंद्व के आयाम सीमित हैं। जैनेन्द्र मन की परतें उघाड़ते हैं और उसके माध्यम से सत्यान्वेषण का प्रयास करते हैं। कहानियों के माध्यम से सत्यान्वेषण का यह प्रयास पहली बार जैनेन्द्र की कहानियों में दिखाई पड़ता है। जैनेन्द्र का कहना है–कहानी तो एक भूख है, जो निरंतर समाधान पाने की कोशिश करती है। हमारे अपने सवाल होते हैं, शंकाएँ होती हैं, चिंताएँ होती हैं और हम उनका उत्तर, उनका समाधान खोजने का सतत् प्रयत्न करते रहते हैं। हमारे प्रयोग होते रहते हैं। ...। इस अन्वेषण की प्रक्रिया गाँधीवादी अहिंसा और फ्रॉयडवादी अचेतन मन के व्यापार से संबंध है। इसलिये जगह-जगह नैतिक मानों का प्रश्न उठता है। पर जैनेन्द्र में एक प्रकार के रहस्य और गुह्यता के भी दर्शन होते हैं। यह उनकी विशेषता और कमजोरी दोनों हैं। आगे चलकर जहाँ उनका दर्शन शिथिल और अन्वेषणहीन हो गया है वहाँ उसका तेवर अधिक स्थूल और चटकीला है। परवर्ती कहानियों की मुद्राएँ इसी तरह की हैं। उनकी कहानियों की संरचना व्यक्ति के बिंदु से शुरु होती है। अवचेतन मन की कुछ गुत्थियाँ उछाल दी जाती हैं। वे कभी अपनी ही किसी दूसरी प्रवृत्ति अथवा बाह्य नैतिकता से टकराती हैं। यह टकराहट आत्मपीड़ा और अहं के विलगन में परिणत होकर कहानी बन जाती है। उनमें प्राय तार्किक अन्विति का अभाव मिलता है और उसकी पूर्ति वे तर्कातीत रहस्य से करते हैं। आगे कुछ दिनों तक प्रेमचंद और जैनेन्द्र की परंपराओं का विकास ही हिन्दी–कहानी का विकास माना गया है।

यशपाल

यशपाल मूलत: प्रेमचंद की परम्परा के कहानीकार हैं। '36 ई. में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हो चुकी थी। इस समय के लेखकों की

रचनाओं में प्रगतिशीलता के तत्त्व का जो समावेश हुआ उसे युगधर्म समझना चाहिए। यशपाल राष्ट्रीय संग्राम के एक सक्रिय क्रांतिकारी कार्यकर्ता थे। इसलिये साहित्य के वे साधन समझते थे, साध्य नहीं। स्पष्ट है कि उनकी कहानियाँ किसी न किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये लिखी गई हैं। प्रेमचंद धन के दुश्मन थे तो यशपाल धनी के। धनी वर्ग हमारे समाज के कोढ़ हैं। सारी सांस्कृतिक–नैतिक असंगतियों के मूल में धन की विषमता ही क्रियाशील है। मार्क्स के साथ ही इन पर फ्रॉयड का भी गहरा प्रभाव है। फलत यौन–चेतना के खुले चित्र भी इनके कहानी उपन्यासों में मिलेंगे। इनके दर्जनों कहानी–संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं–पिंजड़े की उड़ान, वो दुनिया, ज्ञानदान, अभिशप्त, तर्क का तूफान, भस्मावृत चिन्गारी, फूलों का कुर्ता, उत्तमी की माँ आदि। यशपाल की कहानियों को दृष्टांत के रूप में ग्रहण करते हैं। इसलिए उनकी कहानियाँ बहुत कुछ नियोजित (कांट्राइव्ड) होती हैं। इस नियोजन का मुख्य आधार कल्पना है–अनुभूति नहीं। प्रेमचंद की रचना–प्रक्रिया से इनकी रचना–प्रक्रिया काफी मिलती–जुलती है। प्रेमचंद की कहानियों में (कुछ को छोड़कर) पहले कोई स्थिर विचार आता है और बाद में उसके अनुसार कहानी के पात्र, स्थितियाँ घटनाएँ आदि को अन्वेषित कर लिया जाता है। यशपाल की प्रक्रिया इससे भिन्न नहीं है। प्रेमचंद में सुधारवाद की प्रमुखता है तो यशपाल में मार्क्सवाद और फ्रॉयडवाद की। वे विचारों के कहानीकार हैं, चिन्तन के नहीं। सामाजिक विशेषताओं और मध्यवर्गीय समाज के खोखलेपन पर गहरा व्यंग करने में ये बेजोड़ हैं। यशपाल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कथा का रस उनमें सर्वत्र मिलता है।

अज्ञेय

अज्ञेय प्रयोगधर्मा कलाकार थे। उनके आगमन के साथ कहानी नई दिशा की ओर मुड़ी। जिस आधुनिकता बोध की आज बहुत चर्चा की जाती है उसके प्रथम पुरस्कार कर्ता अज्ञेय ही ठहरते हैं– काव्य में भी, कथा–साहित्य में भी। प्रयोगधर्मा होने के साथ–साथ वे अपने अभिजातीय संस्कारों के कारण सचेत भी हैं। उनकी आरंभिक कहानियों में रोमानी विद्रोह दिखाई पड़ता है। लेकिन क्रमश वे रोमांस से हटते गये। अहं के विसर्जन का उल्लेख वे बार–बार करते हैं, यह रोमांस से अलग होने का प्रयत्न ही है। उनकी श्रेष्ठ कहानियों में उनके अहं ने दखल नहीं दिया है। इसलिये वे अपनी संश्लिष्टता में अपूर्व बन पड़ी है। विपगाथा (1937 ई.), परंपरा (1944 ई.), कोठरी की बात (1945 ई.),

शरणार्थी (1947 ई.), जयदोल (1951 ई.) और ये तेरे प्रतिरूप उनके कहानी संग्रह हैं। पहले दोनों संग्रहों की कहानियों में अहं का विस्फोट और रोमानी विद्रोह है। शरणार्थी की कहानियाँ बौद्धिक सहानुभूति से प्रेरित होने के कारण रचनात्मक नहीं बन पड़ी हैं। पर जयदोल संग्रह की कहानियाँ अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। इस संग्रह की अधिकांश कहानियों में अहं पूर्णत विसर्जित है। अपने से हट कर उसकी दृष्टि में समग्रता और रचना में संश्लिष्टता आ गई है। उदाहरणार्थ उनकी दो कहानियों को (गैंग्रीन-रोज और पठार का धीरज) देखा जा सकता है। 'गैंग्रीन' में मध्यवर्ग की एकरसता (बोर्डम) को समग्रत लिया गया है। यह एकरसता उसके संरचनात्मक स्तर पर चित्रित मिलेगी। उसे परिणति या निचोड़ के रूप में नहीं पाया जा सकता है-उसे पाने के लिये कहानी को समग्रत ही लेना होगा। 'गैंग्रीन' मध्यवर्गीय जीवन की एकरसता का जबरदस्त प्रतीक है। पर इसे परिवेश, फ्लैश बैक, बिंब, प्रतीक के माध्यम से रचा गया है। न फालतू शब्द और न ही प्रारंभिक कहानियों की तरह विशेषणों की भरमार। घरेलू वातावरण, तीन का गजर, घंटे का टन-टन, पाइप का टप-टप आदि सभी कुछ एकरस परिवेश की रचना करते हैं। 'पठार का धीरज' भी अपनी रचनात्मक संश्लिष्टता और आधुनिकता बोध के कारण महत्त्वपूर्ण बन पड़ी है। दो युगों की प्रेम-कहानियाँ जो अपना अलग-अलग बोध देती हैं, एक आन्तरिक संगति में बंधकर पैरेबुल के निकट पहुँच जाती हैं।

अन्य रचनाकार

अश्क प्रेमचंद परंपरा के कहानीकार थे। उन्होंने भी मध्यवर्गीय समाज से कथावस्तु का चयन किया है। कहानी संबंधी विविध प्रयोग उनकी रचना में मिलेंगे। पर प्रयोगधर्मी रचनाओं में एक प्रकार की आयासजन्य कृत्रिमता मिलती है। जीवन की गहरी अनुभूति डाची, काकड़ां का तेली जैसी कहानियों में उपलब्ध होती है। अश्क के अतिरिक्त वृंदावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, इलाचन्द्र जोशी, अमृतलाल नागर आदि उपन्यासकारों ने भी कहानियों के क्षेत्र में काम किया है। किन्तु इनका वास्तविक क्षेत्र उपन्यास है कहानी नहीं। इसके बाद सन 50 ई. के आस-पास से हिन्दी कहानियाँ नए दौर से गुजरने लगती हैं। इन दो दशकों में विकसित कहानियों की प्रवृति को एक नाम देना कठिन है। यदि कोई नाम दिया जा सकता है तो वह है आधुनिकता बोध की कहानियाँ। आधुनिकता यानि विज्ञान और प्रविधि की यांत्रिकता में जकड़े जटिल-जीवन-बोध की कहानियाँ।

परंपरागत हिन्दी कहानियों से अलगाने के लिए इन्हें नई-नई कहानियाँ कहा जाने लगा। वस्तुत नई कहानियाँ नाम नई कविता के वजन पर रखा गया। कुछ लोग इन कहानियों को पूर्ववर्ती पीढ़ी की कहानियों का विकास मानते हैं और कुछ परंपरा से कटकर या उसे अस्वीकार कर इसे एकदम नई कहने की हठधर्मी से बाज नहीं आते। वस्तुत इन नामों में कुछ अर्थपूर्ण नहीं है।

नई कहानी से भी अपने को अलगाने के लिए और और नाम रखे गये- सचेतन कहानी, अकहानी आदि। पर नामों पर बहस करना बेमानी है। कहानी तो कहानी है। युग परिवर्तन के साथ उसकी प्रवृत्तियाँ बदलेंगी ही। स्वतंत्रता–प्राप्ति के कुछ ही वर्षों बाद भारतीय परिवेश में प्रसन्नता–अवसाद के विरोधी स्वर सुनाई पड़ने लगे। कुछ लोग राष्ट्रीय आकांक्षाओं के पूर्णतया आशान्वित थे और कुछ लोगों का मोह-भंग हो चुका था। स्वतंत्रता की प्राप्ति एक रोमांटिक घटना थी। ग्राम तथा उसके अंचल संबद्ध कहानियों में रोमानी यथार्थ चित्रित हुआ है। शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय और फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों को इसी कोटि में रखा जा सकता है। उनकी कुछ कहानियों में जीवट भी मिलता है। किंतु इस तरह की अधिकांश कहानियाँ, जाने-समझे और आंशिक रूप से भोगे यथार्थ पर आधारित होने पर भी, पुराने मूल्यों का ही प्रतिपादन करती हैं। इन दो दशकों में देखते-देखते दादा, बाबा, माई के प्रति व्यक्त की गई आस्था उलट गई और वह पुराने-नए मूल्यों के संघर्ष के रूप में चित्रित की जाने लगी। यह टकराहट नए बदलाव की सूचना देती है।

आधुनिक जीवन में कुछ ऐसा टूट गया है कि पुराने सारे संबंध बदल गए हैं। रागपूर्ण संबंध अपने तनावों में मूल्यहीन होने के साथ अर्थहीन भी हो गये हैं। मोहन राकेश ने इन तनावों को मुख्य रूप से अपनी कहानियों में व्यक्त किया है। कमलेश्वर तनावों के बीच मुल्य दृष्टि की तलाश करते हैं। निर्मल वर्मा मूलत: रोमांटिक होते हुए भी कुछ कहानियों में आज की सामाजिक विडंबना–निरर्थक चीख–को प्रभावशाली ढंग से चित्रित करते हैं। धर्मवीर भारती, रघुवीर सहाय और नरेश मेहता कवि पहले हैं और कहानीकार बाद में। इनमें भारती का व्यक्तित्त्व सबसे अधिक निर्लेप क्षमतावान और मूल्यपरक है। उनकी कहानियों पर उनका कवि व्यक्तित्त्व कहीं हावी नहीं होता। यथाप्रसंग वह सहायता ही पहुँचाता है। इस संग्रह में संग्रहित 'गुलकी बन्नो' इसका प्रमाण है।

राजेंद्र यादव, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, श्रीकांत वर्मा, कृष्ण बलदेव वैद, राजकमल चौधरी आदि तनावों के ही कहानीकार हैं। ये

तनाव, पति-पत्नी, पिता-पुत्र, भाई-बहन, प्रेमी-प्रेमिका सभी में दिखाई पड़ेंगे। व्यक्ति और समाज के बीच गहरी खाई पैदा हो गई है। तनावों के बीच रहने वाले व्यक्ति अपने को अकेले, अजनबी और संत्रस्त पा रहे हैं। यह इस देश के बुद्धिजीवियों की ही स्थिति नहीं है। अन्य देशों के लोग भी इल स्थिति का और भी तीखेपन के साथ अनुभव कर रहे हैं। सारा जीवन इतना जटिल और यांत्रिक हो गया है कि मनुष्य यंत्रगतिक हो चला है। उसकी अपनी पहचान (आडेंटिटी) गुम हो गई है। स्थिति यहाँ तक बिगड़ गई है कि उसके लियें जिंदगी का अर्थ है कि वह अर्थहीन है। एक और पीढ़ी। यानि ज्ञानरंजन, दूधनाथ सिंह, विजयमोहन सिंह, रवीन्द्र कालिया, महेन्द्र भल्ला आदि की कृतियाँ इनकी कहानियों में आधुनिकता का वह रूप है, जो ऊब, घुटन, व्यर्थता आदि को अभिव्यक्त करता है। ये कहानीकार प्रायः त्रासद मानवीय स्थितियों से उबर नहीं पाते। इन कहानीकारों में ज्ञानरंजन की दृष्टि सर्वाधिक संतुलित, गैर-रोमानी और नए उन्मेशों को पकड़ पाने में समर्थ है। अगले दौर के कहानीकारों की सूची लंबी है-काशीनाथ सिंह, इब्राहिम शरीफ, इजराइल, विश्वेशवर, सुधा अरोड़ा आदि। काशीनाथ सिंह और इब्राहिम शरीफ आधुनिकता से अलग हट कर जीवन की विसंगतियों में ही सही रास्ते की तलाश की कोशिश की है। अर्थहीन जीवन को अर्थ देने की यह प्रक्रिया स्वस्थ प्रवृति की सूचक है।

समालोचना

कहानी एक अत्यंत लोकप्रिय विधा के रूप में स्वीकृत हो चुकी है। प्रायः सभी पत्र-पत्रिकाओं में, पाठकीय माँग के फलस्वरूप, कहानियों का छापा जाना अनिवार्य हो गया है। इस देश की प्रत्येक भाषा में केवल कहानियों की पत्रिकाएँ भी संख्या में कम नहीं हैं। रहस्य, रोमांस और साहस की कहानियों के अतिरिक्त उनमें जीवन को गंभीर रूप में लेने वाली कहानियाँ भी छपती हैं। साहित्यिक दृष्टि से इन्हीं का महत्व है। ये कहानियाँ चारित्रिक विशेषताओं, 'मूड', वातावरण, जटिल स्थितियों आदि के साथ सामाजिक-आर्थिक जीवन से भी संबंद्ध होती हैं। सामानयतः कहानी मीमांसा के लिए छः तत्त्वों का उल्लेख किया जाता है-

1. कथावस्तु,
2. चरित्र-चित्रण,
3. कथोपकथन,

4. देशकाल,
5. भाषाशैली और
6. उद्देश्य।

किंतु इन प्रतिमानों का प्रयोग नाटक और उपन्यासों के लिए भी होता है। ऐसी स्थिति में भ्रांति की सृष्टि हो सकती है। लेकिन इसका परिहार यह कह कर लिया जाता है कि कहानी की कथावस्तु इकहरी होती है। चरित्र के लिए किसी पहलू का चित्रण होता है। कथोपकथन अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्म तथा मर्मस्पर्शी होता है। कहानी में एक देश और एक काल की जरूरत होती है। सन साठ के बाद की कहानियों का तेवर बदला हुआ है। इन कहानियों को साठोत्तरी कहानी कहा जाता है। इस दौर में कई कहानी आंदोलन चले जिनमें अकहानी, सहज कहानी, सचेतन कहानी, समांतर कहानी और सकिय कहानी आंदोलन प्रमुख थे। बाद में जनवादी कहानी आंदोलन में इनका समाहार हो जाता है। नब्बे के दशक की कहानी और 21 वीं सदी के पहले दशक की कहानी का अभी तक समुचित मूल्यांकन नहीं हो पाया है, लेकिन उनमें वैश्वीकरण, सूचना तंत्र और बाजारवाद की अनुगूँज साफ सुनी जा सकती है। नब्बे का दशक दलित विमर्श और स्त्री विमर्श के उभार का दशक भी था। इस दशक में स्त्री सशक्तिकरण, उसके अधिकारों की लड़ाई और अभिव्यक्ति की छटपटाहट की अनुगूंज स्त्री रचनाकारों की कहानियों में बखूबी सुनाई देती है। इसी तरह दलित रचनाकारों ने भी अपनी स्वानुभूतियों के रंग से हिंदी कहानी को नया रंग और मोड़ दिया। आज के दौर में तकनीकी विकास को रेखांकित करती हुई और उससे उत्पन्न खतरों को व्याख्यायित करने वाली कहानियां भी खूब लिखी जा रही हैं।

3

कर्मभूमिः प्रेमचंद

प्रेमचंद द्वारा रचित 'कर्मभूमि' नामक उपन्यास सन् 1932 में प्रकाशित हुआ था। यह राजनीतिक कथानक पर आधारित उपन्यास है।

उपन्यास के पात्र

प्रेमचन्द्र का यह उपन्यास पाँच भागों में विभाजित है। इस उपन्यास में लाला समरकांत, उनके पुत्र अमरकांत, पुत्रवधु सुखदा, रेणुकांत (सुखदा का पुत्र), पुत्री नैना सकीना, हाफिज हलीम और उनके पुत्र सलीम, धनीराम और उनके पुत्र मनीराम, डॉ. शांतिकुमार और स्वामी आत्मानन्द, गूदड़, प्रयाग, काशी, सलोनी और मुन्नी आदि की कहानी है। कर्मभूमि में परिवारों की कथा है। इसमें प्रेमचन्द देशानुराग, समाज- सुधार, मठिरा- निवारण, अछूतोद्धार, शिक्षा, गरीबों के लिए मकानों की समस्या, देश के प्रति कर्तव्य, जन- जागृति आदि की ओर संकेत करते हैं। कृषकों की समस्या उपन्यास में है तो, किंतु वह प्रमुख नहीं हो पायी। सम्पूर्ण कथा का कार्य- क्षेत्र प्रधानतः काशी और हरिद्वार के पास का देहाती इलाका है।

राजनीतिक उपन्यास

प्रेमचन्द का कर्मभूमि उपन्यास एक राजनीतिक उपन्यास है जिसमें विभिन्न राजनीतिक समस्याओं को कुछ परिवारों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया

है। ये परिवार यद्यपि अपनी पारिवारिक समस्याओं से जूझ रहे हैं तथापि तत्कालीन राजनीतिक आन्दोलन में भाग ले रहे हैं। उपन्यास का कथानक काशी और उसके आस-पास के गाँवों से संबंधित है। आन्दोलन दोनों ही जगह होता है और दोनों का उद्देश्य क्रान्ति है। किन्तु यह क्रान्ति गाँधी जी के सत्याग्रह से प्रभावित है। गाँधीजी का कहना था कि जेलों को इतना भर देना चाहिए कि उनमें जगह न रहे और इस प्रकार शक्ति और अहिंसा से अंग्रेज सरकार पराजित हो जाए।

समस्या

इस उपन्यास की मूल समस्या यही है। उपन्यास के सभी पात्र जेलों में ठूस दिए जाते हैं। इस तरह प्रेमचन्द क्रान्ति के व्यापक पक्ष का चित्रण करते हुए तत्कालीन सभी राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याओं को कथानक से जोड़ देते हैं। निर्धनों के मकान की समस्या, अछूतोद्धार की समस्या, अछूतों के मन्दिर में प्रवेश की समस्या, भारतीय नारियों की मर्यादा और सतीत्व की रक्षा की समस्या, ब्रिटिश साम्राज्य के दमन चक्र से उत्पन्न समस्याएँ, भारतीय समाज में व्याप्त धार्मिक पाखण्ड की समस्या, पुनर्जागरण और नवीन चेतना के समाज में संचरण की समस्या, राष्ट्र के लिए आन्दोलन करने वालों की पारिवारिक समस्याएँ आदि इस उपन्यास में बड़े यथार्थवादी तरीके से व्यक्त हुई हैं।

कथानक

अमरकांत बनारस के रईस समरकांत के पुत्र हैं। वे विद्यार्थी- जीवन से ही सार्वजनिक जीवन में कार्य करने के शौकीन हैं। अपने मित्र सलीम की आर्थिक सहायता भी करते रहते हैं। प्रारम्भ में उनके लोभी पिता के आदर्शों में काफी अंतर बना रहता है। अमरकांत का विवाह लखनऊ के एक धनी परिवार की एकमात्र संतान सुखदा से हो जाता है, किंतु दोनों के दृष्टिकोणों में साम्य नहीं है। साथ-साथ रहते हुए भी दोनों को एक-दूसरे से प्रेम नहीं है। सुखदा को अपने पति का खादी बेचना और सार्वजनिक कार्य पसन्द नहीं। पत्नी से प्रेम न पाकर अमरकांत सकीना की मुहब्बत में पड़ जाते हैं। वे पहले से ही डॉक्टर शांतिकुमार के साथ काशी में कार्य करते थे। गोरे सिपाहियों द्वारा सताई गयी मुन्नी के मुकदमे के सम्बन्ध में उन्होंने काफी कार्य किया। व्यावहारिकता और आर्दश में संघर्ष होने के कारण अपने पिता तथा सुखदा से उनका पहले से ही

जी ऊबा हुआ था, लेकिन जब सकीना के साथ उनका प्रेमपूर्ण व्यवहार देखकर पठानिन ने उन्हें फटकारा तो वे शहर छोड़कर चले गये।

हरिद्वार में

शहर छोड़कर वे हरिद्वार के पास एक ऐसे देहाती इलाके में पहुँचे जहाँ मुर्दाखोर और अछूत कहे जाने वाले लोग और किसान रहते थे। वे सलोनी के यहाँ रहते हुए गूदड़, प्रयाग, काशी आदि के सम्पर्क में आये और गाँववालों में शिक्षा, अच्छी- अच्छी आदतों, सफाई आदि का प्रचार करने प्रचार करने लगे। यहाँ रहते हुए उनकी मुन्नी से भेंट हुई। दोनों में परस्पर आकर्षण भी उत्पन्न हुआ। काशी से आये आत्मानन्द से उन्हें अपने सेवा- कार्य में बराबर सहायत प्राप्त होती रहती थी। कृषकों की सहायता के लिए वे महंत आशाराम गिरि से मिले किंतु उन्हें अधिक सफलता प्राप्त न हुई किंतु काशी में सुखदा के त्याग समाचार सुनकर भी वे उत्तेजित हो उठते हैं और लगानबन्दी का आंदोलन शुरू कर देते हैं। उनका पुराना मित्र सलीम, अब आई. सी. एस. ऑफिसर और उस इलाके का इंचार्ज, उन्हें पकड़ ले जाता है। किंतु लाला समरकांत, जिनमें अब परिवर्तन हो चुका था, जन-सेवा की ओर मुड़कर उसी इलाके में पहुँच जाते हैं और किसान-आन्दोलन के सिलसिले में कारावास दण्ड भी भुगतते हैं। उनके प्रभाव से सलीम के हृदय में भी परिवर्तन हो जाता है। वह स्वंय आन्दोलन की बागडोर सम्हालता है और अंत में पकड़ा जाता है। तत्पश्चत मुन्नी और सकीना (वह भी उस इलाके में पहुँच जाती है) भी गिरफ्तार हो जाती हैं। उग्र आत्मनन्द भी सरकारी शिकंजे से बच नहीं पाते।

काशी में

उधर काशी के मन्दिरों में अछूतों के प्रवेश, गरीबों के लिए मकान बनवाने आदि समस्याओं को लेकर आन्दोलन छिड़ जाता है और सरकार से संघर्ष होता है। इस आन्दोलन का संचालन सुखदा, पठानिन, रेणुकादेवी और यहाँ तक कि समरकांत भी करते हैं। ये सब और डॉक्टर शांतिकुमार जेल-यात्रा करते हैं। नैना भी वहाँ आ जाती है और एक जलूस का नेतृत्व करते हुए चुंगी की ओर जाती है। वहाँ उसका पति मनीराम उसे गोली मार देता है। उसकी मृत्यु से चुंगी के मेम्बरों में भी हृदय-परिर्वतन हो जाता है और वे गरीबों के मकानों के लिए जमीन दे देते हैं। जो आन्दोलन सुखदा ने प्रारम्भ किया था, उसका अंत नैना की बलि

से होता है। लखनऊ के सेण्ट्रल जेल में अमरकांत, मुन्नी, सकीना, सुखदा, पठानिन, रेणुका आदि सब मिल जाते हैं। धनीराम का पुत्र मनीराम मृत्यु को प्राप्त होता है।

अंत

अंत में सेठ धनीराम की मध्यस्थता से सरकार द्वारा एक कमेटी नियुक्त हो जाती है, जो सरकार से मिलकर किसानों और गरीबों की समस्याओं पर विचार करेगी। उस कमेटी में अमर और सलीम तो रहते ही हैं, उनके अतिरिक्त तीन अन्य सदस्यों को चुनने का उन्हें अधिकार दिया गया। सरकार ने भी उस कमेटी में दो सदस्यों अपने रखे। यह समझौते वाली नीति 1930 के कांग्रेस और सरकार के अस्थायी समझौते के प्रभाव के रूप में है। सरकार तब कैदियों को छोड़ देती है। अमरकांत, सकीना और मुन्नी को बहन के रूप में स्वीकार करते हैं और अमरकांत और सुखदा एक दूसरे का महत्त्व पहचानते हैं।

प्रेमचन्द की रचना कौशल

प्रेमचन्द की रचना कौशल इस तथ्य में है कि उन्होंने इन समस्याओं का चित्रण सत्यानुभूति से प्रेरित होकर किया है कि उपन्यास पढ़ते समय तत्कालीन राष्ट्रीय सत्याग्रह आन्दोलन पाठक की आँखों के समक्ष सजीव हो जाता है। छात्रों तथा घटनाओं की बहुलता के बावजूद उपन्यास न कहीं बोझिल होता है न कहीं नीरस। प्रेमचन्द हर पात्र और घटना की डोर अपने हाथ में रखते हैं इसलिए कहीं शिथिलता नहीं आने देते। आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से ओतप्रोत कर्मभूमि उपन्यास प्रेमचन्द की एक प्रौढ़ रचना है, जो हर तरह से प्रभावशाली बन पड़ी है।

4

क्षमादान : प्रेमचंद

दिल्ली नगर में भागीरथ नाम का युवक सौदागर रहता था। वहाँ उसकी अपनी दो दुकानें और एक रहने का मकान था। वह सुंदर था। उसके बाल कोमल, चमकीले और घुँघराले थे। वह हँसोड़ और गाने का बड़ा प्रेमी था। युवावस्था में उसे मद्य पीने की बान पड़ गई थी। अधिक पी जाने पर कभी-कभी हल्ला भी मचाया करता था, परंतु विवाह कर लेने पर मद्य पीना छोड़ दिया था।

गर्मी में एक समय वह कुंभ पर गंगा जाने को तैयार हो, अपने बच्चों और स्त्री से विदा माँगने आया।

स्त्री- प्राणनाथ, आज न जाइए, मैंने बुरा सपना देखा है।

भागीरथ- प्रिये, तुम्हें भय है कि मैं मेले में जाकर तुम्हें भूल जाऊँगा ?

स्त्री- यह तो मैं नहीं जानती कि मैं क्यों डरती हूँ, केवल इतना जानती हूँ कि मैंने बुरा स्वप्न देखा है। मैंने देखा है कि जब तुम घर लौटे हो तो तुम्हारे बाल श्वेत हो गए हैं।

भागीरथ- यह तो सगुन है। देख लेना मैं सारा माल बेच, मेले से तुम्हारे लिए अच्छी-अच्छी चीजें लाऊँगा।

यह कह गाड़ी पर बैठ, वह चल दिया। आधी दूर जाकर उसे एक सौदागर मिला, जिससे उसकी जान पहचान थी। वे दोनों रात को एक ही सराय में ठहरे। संध्या समय भोजन कर पास की कोठरियों में सो गए।

भागीरथ को सबेरे जाग उठने का अभ्यास था। उसने यह विचार करके कि ठंडे-ठंडे राह चलना सुगम होगा, मुँह अँधेरे उठ, गाड़ी तैयार कराई और भटियारे के दाम चुका कर चलता बना। पच्चीस कोस जाने पर घोड़ों को आराम देने के लिए एक सराय में ठहरा और आँगन में बैठकर सितार बजाने लगा।

अचानक एक गाड़ी आई- पुलिस का एक कर्मचारी और दो सिपाही उतरे। कर्मचारी उसके समीप आ कर पूछने लगा कि तुम कौन हो और कहाँ से आए हो? वह सब कुछ बतला कर बोला कि आइए, भोजन कीजिए। परंतु कर्मचारी बारबार यही पूछता था कि तुम रात को कहाँ ठहरे थे? अकेले थे या कोई साथ था? तुमने साथी को आज सवेरे देखा या नहीं। तुम मुँह अँधेरे क्यों चले आए?

भागीरथ को अचंभा हुआ कि बात क्या है? यह प्रश्न क्यों पूछे जा रहे हैं? बोला- आप तो मुझसे इस भाँति पूछते हैं, जैसे मैं कोई चोर या डाकू हूँ। मैं तो गंगास्नान करने जा रहा हूँ। आपको मुझसे क्या मतलब है?

कर्मचारी- मैं इस प्रांत का पुलिस अफसर हूँ और यह प्रश्न इसलिए करता हूँ कि जिस सौदागर के साथ तुम कल रात सराय में सोए थे, वह मार डाला गया। हम तुम्हारी तलाशी लेने आए हैं।

यह कह वह उसके असबाब की तलाशी लेने लगा। एकाएक थैले में से एक छुरा निकला, वह खून से भरा हुआ था। यह देखकर भागीरथ डर गया।

कर्मचारी- यह छुरा किसका है ? इस पर खून कहाँ से लगा ?

भागीरथ चुप रह गया, उसका कंठ रुक गया। हिचकता हुआ कहने लगा- मेरा नहीं है। मैं नहीं जानता।

कर्मचारी- आज सवेरे हमने देखा कि वह सौदागर गला कटे चारपाई पर पड़ा है। कोठरी अंदर से बंद थी, सिवाय तुम्हारे भीतर कोई न था। अब यह खून से भरा हुआ छुरा इस थैले में से निकला है। तुम्हारा मुख ही गवाही दे रहा है। बस, तुमने ही उसे मारा है। बतलाओ, किस तरह मारा और कितने रुपये चुराए हैं ?

भागीरथ ने सौगंध खाकर कहा- मैंने सौदागर को नहीं मारा। भोजन करने के पीछे फिर मैंने उसे नहीं देखा। मेरे पास अपने आठ हजार रुपये हैं। यह छुरा मेरा नहीं।

परंतु उसकी बातें उखड़ी हुई थीं, मुख पीला पड़ गया था और वह पापी की भाँति भय से काँप रहा था।

पुलिस अफसर ने सिपाहियों को हुक्म दिया कि इसकी मुस्कें कसकर गाड़ी में डाल दो। जब सिपाहियों ने उसकी मुस्कें कसीं, तो वह रोने लगा। अफसर ने पास के थाने पर ले जाकर उसका रुपया पैसा छीन, उसे हवालात में दे दिया।

इसके बाद दिल्ली में उसके चाल-चलन की जाँच की गई। सब लोगों ने यही कहा कि पहले वह मद्य पीकर बकझक किया करता था, पर अब उसका आचार बहुत अच्छा है। अदालत में तहकीकात होने पर उसे रामपुर निवासी सौदागर का वध करने और बीस हजार रुपये चुरा लेने का अपराधी ठहराया गया।

भागीरथ की स्त्री को इस बात पर विश्वास न होता था। उसके बालक छोटे-छोटे थे। एक अभी दूध पीता था। वह सबको साथ लेकर पति के पास पहुँची। पहले तो कर्मचारियों ने उसे उससे मिलने की आज्ञा न दी, परंतु बहुत विनय करने पर आज्ञा मिल गई और पहरे वाले उसे कैद घर में ले गए। ज्यों ही उसने अपने पति को बेड़ी पहने हुए चोरों और डाकुओं के बीच में बैठा देखा, वह बेसुध होकर धरती पर गिर पड़ी। बहुत देर में सुध आई। वह बच्चों सहित पति के निकट बैठ गई और घर का हाल कह कर पूछने लगी कि यह क्या बात है ? भागीरथ ने सारा वृतांत कह सुनाया।

स्त्री- तो अब क्या हो सकता है ?

भागीरथ- हमें महाराज से विनय करनी चाहिए कि वह निरपराधी को जान से न मारें।

स्त्री- मैंने महाराज से विनय की थी, परंतु वह स्वीकार नहीं हुई।

भागीरथ ने निराश होकर सिर झुका लिया।

स्त्री- देखा, मेरा सपना कैसा सच निकला! तुम्हें याद है न, मैंने तुमको उस दिन मेले जाने से रोका था। तुम्हें उस दिन न चलना चाहिए था, लेकिन मेरी बात न मानी। सच सच बताओ, तुमने तो उस सौदागर को नहीं मारा न?

भागीरथ- क्या तुम्हें भी मेरे ऊपर संदेह है?

यह कह कर वह मुँह ढाँप रोने लगा। इतने में सिपाही ने आकर स्त्री को वहाँ से हटा दिया और भागीरथ सदैव के लिए अपने परिवार से विदा हो गया।

घर वालों के चले जाने पर जब भागीरथ ने यह विचारा कि मेरी स्त्री भी मुझे अपराधी समझती है तो मन में कहा- बस, मालूम हो गया, परमात्मा के बिना और कोई नहीं जान सकता कि मैं पापी हूँ या नहीं। उसी से दया की आशा रखनी

चाहिए। फिर उसने छूटने का कोई यत्न नहीं किया। चारों ओर से निराश हो कर ईश्वर के ही भरोसे बैठा रहा।

भागीरथ को पहले तो कोड़े मारे गए। जब घाव भर गए तो उसे लोहग बंदीखाने में भेज दिया गया।

वह छब्बीस वर्ष बंदीखाने में पड़ा रहा। उसके बाल पककर सन के से हो गए, कमर मोटी हो गई, देह घुल गई, सदैव उदास रहता। न कभी हँसता, न बोलता, परंतु भगवान का भजन नित्य किया करता था।

वहाँ उसने दरी बुनने का काम सीखकर कुछ रुपया जमा किया और भक्तमाल मोल ले ली। दिन भर काम करने के बाद साँझ को जब तक सूरज का प्रकाश रहता, वह पुस्तक का पाठ करता और इतवार के दिन बंदीखाने के निकट वाले मंदिर में जाकर पूजापाठ भी कर लेता था। जेल के कर्मचारी उसे सुशील जानकर उसका मान करते थे। कैदी लोग उसे बूढ़े बाबा अथवा महात्मा कहकर पुकारा करते थे। कैदियों को जब कभी कोई अर्जी भेजनी होती, तो वे उसे अपना मुखिया बनाते और अपने झगड़े भी उसी से चुकाया करते।

उसे घर का कोई समाचार न मिलता था। उसे यह भी न मालूम था कि स्त्री-बालक जीते हैं या मर गए।

एक दिन कुछ नए कैदी आए। संध्या समय पुराने कैदी उनके पास आकर पूछने लगे कि भाई, तुम कहाँ से आए हो और तुमने क्या क्या अपराध किए हैं? भागीरथ उदास बैठा सुनता रहा। नए कैदियों में एक साठ वर्ष का हट्टा-कट्टा आदमी, जिसके दाढ़ी-बाल खूब छंटे हुए थे, अपनी रामकहानी यों सुना रहा था!

भाइयो, मेरे मित्र का घोड़ा एक पेड़ से बंधा हुआ था। मुझे घर जाने की जल्दी पड़ी हुई थी। मैं उस घोड़े पर सवार होकर चला गया। वहाँ जाकर मैंने घोड़ा छोड़ दिया। मित्र कहीं चला गया था। पुलिस वालों ने चोर ठहराकर मुझे पकड़ लिया। यद्यपि कोई यह नहीं बतला सका कि मैंने किसका घोड़ा चुराया और कहाँ से, फिर भी चोरी के अपराध में मुझे यहाँ भेज दिया है। इससे पहले एक बार मैंने ऐसा अपराध किया था कि मैं लोहग में भेजे जाने लायक था, परंतु मुझे उस समय कोई नहीं पकड़ सका। अब बिना अपराध ही यहाँ भेज दिया गया हूँ।

एक कैदी- तुम कहाँ से आए हो?

नया कैदी- दिल्ली से। मेरा नाम बलदेव सिंह है।

भागीरथ– भला बलदेव सिंह, तुम्हें भागीरथ के घर वालों का कुछ हाल मालूम है, जीते हैं कि मर गए?

बलदेव– जानना क्या? मैं उन्हें भली–भाँति जानता हूँ। अच्छे मालदार हैं। हाँ उनका पिता यहीं कहीं कैद है। मेरे ही जैसा अपराध उनका भी था। बूढ़े बाबा, तुम यहाँ कैसे आए?

भगीरथ अपनी विपत्ति–कथा न कही। केवल हाय कहकर बोला– मैं अपने पापों के कारण छब्बीस वर्ष से यहाँ पड़ा सड़ रहा हूँ।

बलदेव– क्या पाप, मैं भी सुनूं?

भागीरथ– भाई, जाने दो, पापों का फल अवश्य भोगना पड़ता है।

वह और कुछ न कहना चाहता था, परंतु दूसरे कैदियों ने बलदेव को सारा हाल कह सुनाया कि वह एक सौदागर का वध करने के अपराध में यहाँ कैद है। बलदेव ने यह हाल सुना तो भागीरथ को ध्यान से देखने लगा। घुटने पर हाथ मारकर बोला– वाह वाह, बड़ा अचरज है! लेकिन दादा, तुम तो बिल्कुल बूढ़े हो गए।

दूसरे कैदी बलदेव से पूछने लगे कि तुम भागीरथ को देखकर चकित क्यों हुए, तुमने क्या पहले कहीं उसे देखा है? परंतु बलदेव ने उत्तर नहीं दिया।

भागीरथ के चित्त में यह संशय उत्पन्न हुआ कि शायद बलदेव रामपुरी सौदागर के असली मारने वाले को जानता है। बोला– बलदेव सिंह, क्या तुमने यह बात सुनी है और मुझे भी पहले कहीं देखा है।

बलदेव– वह बातें तो सारे संसार में फैल रही हैं। मैं किस तरह न सुनता, बहुत दिन बीत गए, मुझे कुछ याद नहीं रहा।

भागीरथ– तुम्हें मालूम है कि उस सौदागर को किसने मारा था?

बलदेव– (हँसकर) जिसके थैले में छुरा निकला, वही उसका मारने वाला। यदि किसी ने थैले में छुरा छिपा भी दिया हो, तो जब तक कोई पकड़ा न जाए, उसे चोर कौन कह सकता है? थैला तुम्हारे सिरहाने धरा था। यदि कोई दूसरा पास आकर छुरा थैले में छिपाता तो तुम अवश्य जाग उठते।

यह बातें सुनकर भागीरथ को निश्चय हो गया कि सौदागर को इसी ने मारा है। वह उठकर वहाँ से चल दिया, पर सारी रात जागता रहा। दु:ख से उसका चित्त व्याकुल हो रहा था। उसे अनेक प्रकार की बातें याद आने लगीं। पहले स्त्री की उस समय की सूरत दिखाई दी जब वह उसे मेले जाने को मना कर रही थी। सामने ऐसा जान पड़ा कि वह खड़ी है। उसकी बोली और हँसी तक सुनाई

दी। फिर बालक दिखाई पड़े, फिर युवावस्था की याद आई, कितना प्रसन्नचित्त था, कैसा आनंद से द्वार पर बैठा सितार बजाया करता था। फिर वह सराय दिखाई दी, जहाँ वह पकड़ा गया था। तब वह जगह सामने आई, जहाँ उस पर कोड़े लगे थे। फिर बेड़ी और बंदीखाना, फिर बुढ़ापा और छब्बीस वर्ष का दु:ख। यह सब बातें उसकी आँखों में फिरने लगीं। वह इतना दु:खी हुआ कि जी में आया कि अभी प्राण दे दूँ।

'हाय, इस बलदेव चंडाल ने यह क्या किया! मैं तो अपना सर्वनाश करके भी इससे बदला अवश्य लूँगा।'

सारी रात भजन करने पर भी उसे शांति नहीं हुई। दिन में उसने बलदेव को देखा तक नहीं। पंद्रह दिन बीत गए, भागीरथ की यह दशा थी कि न रात को नींद, न दिन को चैन। क्रोधाग्नि में जल रहा था।

एक रात वह जेलखाने में टहल रहा था कि उसने कैदियों के सोने के चबूतरे के नीचे से मिट्टी गिरते देखी। वह वहीं ठहर गया कि देखूँ मिट्टी कहाँ से आ रही है। सहसा बलदेव चबूतरे के नीचे से निकल आया और भय से काँपने लगा। भागीरथ आँखें मूँदकर आगे जाना चाहता था कि बलदेव ने उसका हाथ पकड़ लिया और बोला- देखो, मैंने जूतों में मिट्टी भर के बाहर फेंककर यह सुरंग लगाई है, चुप रहना। मैं तुमको यहाँ से भगा देता हूँ। यदि शोर करोगे तो जेल के अफसर मुझे जान से मार डालेंगे, परंतु याद रखो कि तुम्हें मारकर मरुँगा, यों नहीं मरता।

भागीरथ अपने शत्रु को देखकर क्रोध से काँप उठा और हाथ छुड़ाकर बोला- मुझे भागने की इच्छा नहीं और मुझे मारे तो तुम्हें छब्बीस वर्ष हो चुके। रही यह हाल प्रकट करने की बात, जैसी परमात्मा की आज्ञा होगी, वैसा होगा।

अगले दिन जब कैदी बाहर काम करने गए तो पहरे वालों ने सुरंग की मिट्टी बाहर पड़ी देख ली। खोज लगाने पर सुरंग का पता चल गया। हाकिम सब कैदियों से पूछने लगे। किसी ने न बतलाया, क्योंकि वे जानते थे कि यदि बतला दिया तो बलदेव मारा जाएगा। अफसर भागीरथ को सत्यवादी जानते थे, उससे पूछने लगे- बूढ़े बाबा, तुम सच्चे आदमी हो, सच बताओ कि यह सुरंग किसने लगाई है?

बलदेव पास ही ऐसे खड़ा था कि कुछ जानता ही नहीं। भागीरथ के होंठ और हाथ काँप रहे थे। चुपचाप विचार करने लगा कि जिसने मेरा सारा जीवन नाश कर दिया, उसे क्यों छिपाऊँ? दु:ख का बदला दु:ख उसे अवश्य भोगना

चाहिए, परंतु बतला देने पर फिर वह बच नहीं सकता। शायद यह सब मेरा भरम मात्र हो, सौदागर को किसी और ने ही मारा हो। यदि इसने ही मारा तो इसे मरवा देने से मुझे क्या लाभ होगा?

अफसर– बाबा, चुप क्यों हो गए? बतलाते क्यों नहीं?

भागीरथ– मैं कुछ नहीं बतला सकता, आप जो चाहें सो करें।

हाकिम ने बार–बार पूछा, परंतु भागीरथ ने कुछ भी नहीं बतलाया। बात टल गई।

उसी रात भागीरथ जब अपनी कोठरी में लेटा हुआ था, बलदेव चुपके से भीतर आकर बैठ गया। भागीरथ ने देखा और कहा– बलदेव सिंह, अब और क्या चाहते हो? यहाँ तुम क्यों आए?

बलदेव चुप रहा।

भागीरथ– तुम क्या चाहते हो? यहाँ से चले जाओ, नहीं तो मैं पहरे वाले को बुला लूँगा।

बलदेव– (पाँव पर पड़कर) भागीरथ, मुझे क्षमा करो, क्षमा करो।

भागीरथ– क्यों?

बलदेव– मैंने ही उस सौदागर को मारकर छुरा तुम्हारे थैले में छिपाया था। मैं तुम्हें भी मारना चाहता था। परंतु बाहर से आहट हो गई, मैं छुरा थैले में रखकर भाग निकला।

भागीरथ चुप हो गया, कुछ नहीं बोला।

बलदेव– भाई भागीरथ, भगवान के वास्ते मुझ पर दया करो, मुझे क्षमा करो। मैं कल अपना अपराध अंगीकार कर लूँगा। तुम छूटकर अपने घर चले जाओगे।

भागीरथ– बातें बनाना सहज है। छब्बीस वर्ष के इस दुःख को देखो, अब मैं कहाँ जा सकता हूँ? स्त्री मर गई, लड़के भूल गए, अब तो मेरा कहीं ठिकाना नहीं है।

बलदेव धरती से माथा फोड़, रो–रो कर कहने लगा– मुझे कोड़े लगने पर भी इतना कष्ट नहीं हुआ था, जो अब तुम्हें देखकर हो रहा है। तुमने दया करके सुरंग की बात नहीं बतलाई। क्षमा करो, क्षमा करो, मैं अत्यंत दुःखी हो रहा हूँ!

यह कह बलदेव धाड़ मारकर रोने लगा। भागीरथ के नेत्रों से भी जल की धारा बह निकली। बोला– पूर्ण परमात्मा, तुम पर दया करें, कौन जाने कि मैं अच्छा हूँ अथवा तुम अच्छे हो। मैंने तुम्हें क्षमा किया।

अगले दिन बलदेव सिंह ने स्वयं कर्मचारियों के पास जाकर सारा हाल सुनाकर अपना अपराध मान लिया, परंतु भागीरथ को छोड़ देने का जब परवाना आया, तो उसका देहांत हो चुका था।

एक चिनगारी घर को जला देती है–

तोल्सतोय

अनुवाद–प्रेमचंद

एक समय एक गांव में रहीम खां नामक एक मालदार किसान रहता था। उसके तीन पुत्र थे, सब युवक और काम करने में चतुर थे। सबसे बड़ा ब्याहा हुआ था, मंझला ब्याहने को था, छोटा क्वांरा था। रहीम की स्त्री और बहू चतुर और सुशील थीं। घर के सभी प्राणी अपना–अपना काम करते थे, केवल रहीम का बूढ़ा बाप दमे के रोग से पीड़ित होने के कारण कुछ कामकाज न करता था। सात बरसों से वह केवल खाट पर पड़ा रहता था। रहीम के पास तीन बैल, एक गाय, एक बछड़ा, पंद्रह भेड़ें थीं। स्त्रियां खेती के काम में सहायता करती थीं। अनाज बहुत पैदा हो जाता था। रहीम और उसके बाल–बच्चे बड़े आराम से रहते, अगर पड़ोसी करीम के लंगड़े पुत्र कादिर के साथ इनका एक ऐसा झगड़ा न छिड़ गया होता जिससे सुखचैन जाता रहा था।

जब तक बूढ़ा करीम जीता रहा और रहीम का पिता घर का प्रबंध करता रहा, कोई झगड़ा नहीं हुआ। वह बड़े प्रेमभाव से, जैसा कि पड़ोसियों में होना चाहिए, एक–दूसरे की सहायता करते रहे। लड़कों का घरों को संभालना था कि सबकुछ बदल गया।

अब सुनिए कि झगड़ा किस बात पर छिड़ा। रहीम की बहू ने कुछ मुर्गियां पाल रखी थीं। एक मुर्गी नित्य पशुशाला में जाकर अंडा दिया करती थी। बहू शाम को वहां जाती और अंडा उठा लाती। एक दिन दैव गति से वह मुर्गी बालकों से डरकर पड़ोसी के आंगन में चली गयी और वहां अंडा दे आई। शाम को बहू ने पशुशाला में जाकर देखा तो अंडा वहां न था। सास से पूछा, उसे क्या मालूम था। देवर बोला कि मुर्गी पड़ोसिन के आंगन में कुड़कुड़ा रही थी, शायद वहां अंडा दे आयी हो।

बहू वहां पहुंचकर अंडा खोजने लगी। भीतर से कादिर की माता निकलकर पूछने लगी–बहू, क्या है?

बहू–मेरी मुर्गी तुम्हारे आंगन में अंडा दे गई है, उसे खोजती हूं। तुमने देखा हो तो बता दो।

कादिर की मां ने कहा–मैंने नहीं देखा। क्या हमारी मुर्गियां अंडे नहीं देतीं कि हम तुम्हारे अंडे बटोरती फिरेंगी। दूसरों के घर जाकर अंडे खोजने की हमारी आदत नहीं।

यह सुनकर बहू आग हो गई, लगी बकने। कादिर की मां कुछ कम न थी, एक-एक बात के सौ-सौ उत्तर दिये। रहीम की स्त्री पानी लाने बाहर निकली थी। गाली-गलौच का शोर सुनकर वह भी आ पहुंची। उधर से कादिर की स्त्री भी दौड़ पड़ी। अब सबकी-सब इकट्ठी होकर लगीं गालियां बकने और लड़ने। कादिर खेत से आ रहा था, वह भी आकर मिल गया। इतने में रहीम भी आ पहुंचा। पूरा महाभारत हो गया। अब दोनों गुंथ गए। रहीम ने कादिर की दाढ़ी के बाल उखाड़ डाले। गांव वालों ने आकर बड़ी मुश्किल से उन्हें छुड़ाया। पर कादिर ने अपनी दाढ़ी के बाल उखाड़ लिये और हाकिम परगना के इजलास में जाकर कहा–मैंने दाढ़ी इसलिए नहीं रखी थी जो यों उखाड़ी जाये। रहीम से हरजाना लिया जाए। पर रहीम के बूढ़े पिता ने उसे समझाया–बेटा, ऐसी तुच्छ बात पर लड़ाई करना मूर्खता नहीं तो क्या है। जरा विचार तो करो, सारा बखेड़ा सिर्फ एक अंडे से फैला है। कौन जाने शायद किसी बालक ने उठा लिया हो और फिर अंडा था कितने का? परमात्मा सबका पालन-पोषण करता है। पड़ोसी यदि गाली दे भी दे, तो क्या गाली के बदले गाली देकर अपनी आत्मा को मलिन करना उचित है? कभी नहीं, खैर! अब तो जो होना था, वह हो ही गया, उसे मिटाना उचित है, बढ़ाना ठीक नहीं। क्रोध पाप का मूल है। याद रखो, लड़ाई बढ़ाने से तुम्हारी ही हानि होगी।

परन्तु बूढ़े की बात पर किसी ने कान न धरा। रहीम कहने लगा कि कादिर को धन का घमंड है, मैं क्या किसी का दिया खाता हूं? बड़े घर न भेज दिया तो कहना। उसने भी नालिश ठोंक दी।

यह मुकदमा चल ही रहा था कि कादिर की गाड़ी की एक कील खो गई। उसके परिवार वालों ने रहीम के बड़े लड़के पर चोरी की नालिश कर दी।

अब कोई दिन ऐसा न जाता था कि लड़ाई न हो। बड़ों को देखकर बालक भी आपस में लड़ने लगे। जब कभी वस्त्र धोने के लिए स्त्रियां नदी पर इकट्ठी होती थीं, तो सिवाय लड़ाई के कुछ काम न करती थीं।

पहले-पहल तो गाली-गलौज पर ही बस हो जाती थी, पर अब वे एकदूसरे का माल चुराने लगे। जीना दुर्लभ हो गया। न्याय चुकाते-चुकाते वहां के कर्मचारी थक गए। कभी कादिर रहीम को कैद करा देता, कभी वह उसको बंदीखाने भिजवा

देता। कुत्तों की भांति जितना ही लड़ते थे, उतना ही क्रोध बढ़ता था। छह वर्ष तक यही हाल रहा। बूढ़े ने बहुतेरा सिर पटका कि 'लड़कों, क्या करते हो? बदला लेना छोड़ दो, बैर-भाव त्यागकर अपना काम करो। दूसरों को कष्ट देने से तुम्हारी ही हानि होगी।' परंतु किसी के कान पर जूं तक न रेंगती थी।

सातवें वर्ष गांव में किसी के घर विवाह था। स्त्री-पुरुष जमा थे। बातें करते-करते रहीम की बहू ने कादिर पर घोड़ा चुराने का दोष लगाया। वह आग हो गया, उठकर बहू को ऐसा मुक्का मारा कि वह सात दिन चारपाई पर पड़ी रही। वह उस समय गर्भवती थी। रहीम बड़ा प्रसन्न हुआ कि अब काम बन गया। गर्भवती स्त्री को मारने के अपराध में इसे बंदीखाने न भिजवाया तो मेरा नाम रहीम ही नहीं। झट जाकर नालिश कर दी। तहकीकात होने पर मालूम हुआ कि बहू को कोई बड़ी चोट नहीं आई, मुकदमा खारिज हो गया। रहीम कब चुप रहने वाला था। ऊपर की कचहरी में गया और मुंशी को घूस देकर कादिर को बीस कोड़े मारने का हुक्म लिखवा दिया।

उस समय कादिर कचहरी से बाहर खड़ा था, हुक्म सुनते ही बोला-कोड़ों से मेरी पीठ तो जलेगी ही, परन्तु रहीम को भी भस्म किए बिना न छोड़ूँगा।

रहीम तुरन्त अदालत में गया और बोला-हुजूर, कादिर मेरा घर जलाने की धमकी देता है। कई आदमी गवाह हैं।

हाकिम ने कादिर को बुलाकर पूछा कि क्या बात है।

कादिर-सब झूठ, मैंने कोई धमकी नहीं दी। आप हाकिम हैं। जो चाहें सो करें, पर क्या न्याय इसी को कहते हैं कि सच्चा मारा जाए और झूठा चैन करे?

कादिर की सूरत देखकर हाकिम को निश्चय हो गया कि वह अवश्य रहीम को कोई न कोई कष्ट देगा। उसने कादिर को समझाते हुए कहा-देखो भाई, बुद्धि से काम लो। भला कादिर, गर्भवती स्त्री को मारना क्या ठीक था? यह तो ईश्वर की बड़ी कृपा हुई कि चोट नहीं आई, नहीं तो क्या जाने, क्या हो जाता। तुम विनय करके रहीम से अपना अपराध क्षमा करा लो, मैं हुक्म बदल डालूंगा।

मुंशी-दफा एक सौ सत्तरह के अनुसार हुक्म नहीं बदला जा सकता।

हाकिम-चुप रहो। परमात्मा को शांति प्रिय है, उसकी आज्ञा पालन करना सबका मुख्य धर्म है।

कादिर बोला-हुजूर, मेरी अवस्था अब पचास वर्ष की है। मेरे एक ब्याहा हुआ पुत्र भी है। आज तक मैंने कभी कोड़े नहीं खाए। मैं और उससे क्षमा? कभी नहीं मांग सकता। वह भी मुझे याद करेगा।

यह कहकर कादिर बाहर चला गया।

कचहरी गांव से सात मील पर थी। रहीम को घर पहुंचते-पहुंचते अंधेरा हो गया। उस समय घर में कोई न था। सब बाहर गए हुए थे। रहीम भीतर जाकर बैठ गया और विचार करने लगा। कोड़े लगने का हुक्म सुनकर कादिर का मुख कैसा उतर गया था! बेचारा दीवार की ओर मुंह करके रोने लगा था। हम और वह कितने दिन तक एक साथ खेले हैं, मुझे उस पर इतना क्रोध न करना चाहिए था। यदि मुझे कोड़े मारने का हुक्म सुनाया जाता, तो मेरी क्या दशा होती।

इस पर उसे कादिर पर दया आई। इतने में बूढ़े पिता ने आकर पूछा-कादिर को क्या दंड मिला?

रहीम-बीस कोड़े।

बूढ़ा-बुरा हुआ। बेटा, तुम अच्छा नहीं करते। इन बातों में कादिर की उतनी ही हानि होगी जितनी तुम्हारी। भला, मैं यह पूछता हूं कि कादिर पर कोड़े पड़ने से तुम्हें क्या लाभ होगा?

रहीम-वह फिर ऐसा काम नहीं करेगा।

बूढ़ा-क्या नहीं करेगा, उसने तुमसे बढ़कर कौन-सा बुरा काम किया है?

रहीम-वाह वाह, आप विचार तो करें कि उसने मुझे कितना कष्ट दिया है। स्त्री मरने से बची, अब घर जलाने की धमकी देता है, तो क्या मैं उसका जस गाऊं?

बूढ़ा-(आह भरकर) बेटा, मैं घर में पड़ा रहता हूं और तुम सर्वत्र घूमते हो, इसलिए तुम मुझे मूर्ख समझते हो। लेकिन द्रोह ने तुम्हें अंधा बना रखा है। दूसरों के दोष तुम्हारे नेत्रों के सामने हैं, अपने दोष पीठ पीछे हैं। भला, मैं पूछता हूं कि कादिर ने क्या किया! एक के करने से भी कभी लड़ाई हुआ करती है? कभी नहीं, दो बिना लड़ाई नहीं हो सकती। यदि तुम शान्त स्वभाव के होते, लड़ाई कैसे होती? भला जवाब तो दो, उसकी दाढ़ी के बाल किसने उखाड़े! उसका भूसा किसने चुराया? उसे अदालत में किसने घसीटा? तिस पर सारे दोष कादिर के माथे ही थोप रहे हो! तुम आप बुरे हो, बस यही सारे झगड़े की जड़ है। क्या मैंने तुम्हें यही शिक्षा दी है? क्या तुम नहीं जानते कि मैं और कादिर का पिता किस प्रेमभाव से रहते थे। यदि किसी के घर में अन्न चुक जाता था, तो एक-दूसरे से उधार लेकर काम चलता था, यदि कोई किसी और काम में लगा होता था, तो दूसरा उसके पशु चरा लाता था। एक को किसी वस्तु की जरूरत होती थी, तो दूसरा तुरन्त दे देता था। न कोई लड़ाई थी न झगड़ा,

प्रेमपूर्वक जीवन व्यतीत करता था। अब? अब तो तुमने महाभारत बना रखा है, क्या इसी का नाम जीवन है? हाय! हाय! यह तुम क्या पाप कर्म कर रहे हो? तुम घर के स्वामी हो, यमराज के सामने तुम्हें उत्तर देना होगा। बालकों और स्त्रियों को तुम क्या शिक्षा दे रहे हो, गाली बकना और ताने देना! कल तारावती पड़ोसिन धनदेवी को गालियां दे रही थी। उसकी माता पास बैठी सुन रही थी। क्या यही भलमनसी है? क्या गाली का बदला गाली होना चाहिए? नहीं बेटा, नहीं, महापुरुषों का वचन है कि कोई तुम्हें गाली दे तो सह लो, वह स्वयं पछताएगा। यदि कोई तुम्हारे गाल पर एक चपत मारे, तो दूसरा गाल उसके सामने कर दो, वह लज्जित और नम्र होकर तुम्हारा भक्त हो जाएगा। अभिमान ही सब दु:ख का कारण है–तुम चुप क्यों हो गए! क्या मैं झूठ कहता हूं?

रहीम चुप रह गया, कुछ नहीं बोला।

बूढ़ा–महात्माओं का वाक्य क्या असत्य है, कभी नहीं। उसका एक–एक अक्षर पत्थर की लकीर है। अच्छा, अब तुम अपने इस जीवन पर विचार करो। जब से यह महाभारत आरम्भ हुआ है, तुम सुखी हो अथवा दु:खी! जरा हिसाब तो लगाओ कि इन मुकदमों, वकीलों और जाने–आने में कितना रुपया खर्च हो चुका है। देखो, तुम्हारे पुत्र कैसे सुन्दर और बलवान हैं, लेकिन तुम्हारी आमदनी घटती जाती है। क्यों? तुम्हारी मूर्खता से। तुम्हें चाहिए कि लड़कों सहित खेती का काम करो। पर तुम पर तो लड़ाई का भूत सवार है, वह चैन लेने नहीं देता। पिछले साल जई क्यों नहीं उगी, इसलिए कि समय पर नहीं बोई गई। मुकदमे चलाओ कि जई बोओ। बेटा, अपना काम करो, खेतीबारी को सम्हालो। यदि कोई कष्ट दे तो उसे क्षमा करो, परमात्मा इसी से प्रसन्न रहता है। ऐसा करने पर तुम्हारा अंत:करण शुद्ध होकर तुम्हें आनन्द प्राप्त होगा।

रहीम कुछ नहीं बोला।

बूढ़ा–बेटा, अपने बूढ़े, मूर्ख पिता का कहना मानो। जाओ, कचहरी में जाकर आपस में राजीनामा कर लो। कल शबेरात है, कादिर के घर जाकर नम्रतापूर्वक उसे नेवता दो और घर वालों को भी यही शिक्षा दो कि बैर छोड़कर आपस में प्रेम बढ़ाएँ।

पिता की बातें सुनकर रहीम के मन में विचार हुआ कि पिताजी सच कहते हैं। इस लड़ाई–झगड़े से हम मिट्टी में मिले जाते हैं। लेकिन इस महाभारत को किस प्रकार समाप्त करूं? बूढ़ा उसके मन की बात जानकर बोला–बेटा, मैं तुम्हारे मन की बात जान गया। लज्जा त्याग जाकर कादिर से मित्रता कर लो।

फैलने से पहले ही चिनगारी को बुझा देना उचित है, फैल जाने पर फिर कुछ नहीं बनता।

बूढ़ा कुछ और कहना चाहता था कि स्त्रियां कोलाहल करती हुई भीतर आ गईं, उन्होंने कादिर के दंड का हाल सुन लिया था। हाल में पड़ोसिन से लड़ाई करके आई थीं, आकर कहने लगीं कि कादिर यह भय दिखाता है कि मैंने घूस देकर हाकिम को अपनी ओर फेर लिया है, रहीम का सारा हाल लिखकर महाराज की सेवा में भेजने के लिए विनयपत्र तैयार किया है। देखो, क्या मजा चखाता हूं। आधी जायदाद न छीन ली तो बात ही क्या है? यह सुनना था कि रहीम के चित्त में फिर आग दहक उठी।

आषाढ़ी बोने की ऋतु थी। करने को काम बहुत था। रहीम भुसौल में गया और पशुओं को भूसा डालकर कुछ काम करने लगा। इस समय वह पिता की बातें और कादिर के साथ लड़ाई सब कुछ भूला हुआ था। रात को घर में आकर आराम करना ही चाहता था कि पास से शब्द सुनाई दिया–वह दुष्ट वध करने ही योग्य है, जीकर क्या बनाएगा। इन शब्दों ने रहीम को पागल बना दिया। वह चुपचाप खड़ा कादिर को गालियां सुनाता रहा। जब वह चुप हो गया, तो वह घर में चला गया।

भीतर आकर देखा कि बहू बैठी ताक रही है, स्त्री भोजन बना रही है, बड़ा लड़का दूध गर्म कर रहा है, मंझला झाड़ू लगा रहा है, छोटा भैंस चराने बाहर जाने को तैयार है। सुख की यह सब सामग्री थी, परन्तु पड़ोसी के साथ लड़ाई का दुःख सहा न जाता था।

वह जला–भुना भीतर आया। उसके कान में पड़ोसी के शब्द गूंज रहे थे, उसने सबसे लड़ना आरम्भ किया। इतने में छोटा लड़का भैंस चराने बाहर जाने लगा। रहीम भी उसके साथ बाहर चला आया। लड़का तो चल दिया, वह अकेला रह गया। रहीम मन में सोचने लगा–कादिर बड़ा दुष्ट है, हवा चल रही है, ऐसा न हो पीछे से आकर मकान में आग लगाकर भाग जाए। क्या अच्छा हो कि जब वह आग लगाने आए, तब उसे मैं पकड़ लूं। बस फिर कभी नहीं बच सकता, अवश्य उसे बन्दीखाने जाना पड़े।

यह विचार करके वह गली में पहुंच गया। सामने उसे कोई चीज हिलती दिखाई दी। पहले तो वह समझा कि कादिर है, पर वहां कुछ न था–चारों ओर सन्नाटा था।

थोड़ी दूर आगे जाकर देखता क्या है कि पशुशाला के पास एक मनुष्य जलता हुआ फूस का पूला हाथ में लिए खड़ा है। ध्यान से देखने पर मालूम हुआ कि कादिर है। फिर क्या था, जोर से दौड़ा कि उसे जाकर पकड़ ले।

रहीम अभी वहां पहुंचने न पाया था कि छप्पर में आग लगी, उजाला होने पर कादिर प्रत्यक्ष दिखाई देने लगा। रहीम बाज की तरह झपटा, लेकिन कादिर उसकी आहट पाकर चम्पत हो गया।

रहीम उसके पीछे दौड़ा। उसके कुरते का पल्ला हाथ में आया ही था कि वह छुड़ाकर फिर भागा। रहीम धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ा, उठकर फिर दौड़ा। इतने में कादिर अपने घर पहुंच गया। रहीम वहां जाकर उसे पकड़ना चाहता था कि उसने ऐसा लट्ठ मारा कि रहीम चक्कर खाकर बेसुध हो धरती पर गिर पड़ा। सुध आने पर उसने देखा कि कादिर वहां नहीं है, फिरकर देखता है तो पशुशाला का छप्पर जल रहा है, ज्वाला प्रचंड हो रही है और लपटें निकल रही हैं।

रहीम सिर पीटकर पुकराने लगा–भाइयों, यह क्या हुआ! हाय, मेरा सत्यानाश हो गया! चिल्लाते–चिल्लाते उसका कंठ बैठ गया। वह दौड़ना चाहता था, परन्तु उसकी टांगें लड़खड़ा गईं। वह धम से धरती पर गिर पड़ा, फिर उठा, घर के पास पहुंचते–पहुंचते आग चारों ओर फैल गई। अब क्या बन सकता है? भय से पड़ोसी भी अपना असबाब बाहर फेंकने लगे। वायु के वेग से कादिर के घर में भी आग जा लगी, यहां तक कि आधा गांव जलकर राख का ढेर हो गया। रहीम और कादिर दोनों का कुछ न बचा। मुर्गियां, हल, गाड़ी, पशु, वस्त्र, अन्न, भूसा आदि सब कुछ स्वाहा हो गया। इतना अच्छा हुआ कि किसी की जान नहीं गई।

आग रात भर जलती रही। वह कुछ असबाब उठाने भीतर गया, परन्तु ज्वाला ऐसी प्रचंड थी कि जा न सका। उसके कपड़े और दाढ़ी के बाल झुलस गए।

प्रात:काल गांव के चौधरी का बेटा उसके पास आया और बोला–रहीम, तुम्हारे पिता की दशा अच्छी नहीं है। वह तुम्हें बुला रहे हैं। रहीम तो पागल हो रहा था, बोला–कौन पिता जी ?

चौधरी का बेटा–तुम्हारे पिता। इसी आग ने उनका काम तमाम कर दिया है। हम उन्हें यहां से उठाकर अपने घर ले गए थे। अब वह बच नहीं सकते। चलो, अंतिम भेंट कर लो।

रहीम उसके साथ हो लिया। वहां पहुंचने पर चौधरी ने बूढ़े को खबर दी कि रहीम आ गया है।

बूढ़े ने रहीम को अपने निकट बुलाकर कहा–बेटा, मैंने तुमसे क्या कहा था। गांव किसने जलाया?

रहीम–कादिर ने। मैंने आप उसे छप्पर में आग लगाते देखा था। यदि मैं उसी समय उसे पकड़कर पूले को पैरों तले मल देता, तो आग कभी न लगती।

बूढ़ा–रहीम, मेरा अन्त समय आ गया। तुमको भी एक दिन अवश्य मरना है, पर सच बतलाओ कि दोष किसका है?

रहीम चुप हो गया।

बूढ़ा–बताओ, कुछ बोलो तो, फिर यह सब किसकी करतूत है, किसका दोष है?

रहीम–(आंखों में आंसू भरकर) मेरा! पिताजी, क्षमा कीजिए, मैं खुदा और आप दोनों का अपराधी हूं।

बूढ़ा–रहीम!

रहीम–हां, पिताजी।

बूढ़ा–जानते हो अब क्या करना उचित है?

रहीम–मैं क्या जानूं, मेरा तो अब गांव में रहना कठिन है।

बूढ़ा–यदि तू परमेश्वर की आज्ञा मानेगा तो तुझे कोई कष्ट न होगा। देख, याद रख, अब किसी से न कहना कि आग किसने लगाई थी। जो पुरुष किसी का एक दोष क्षमा करता है, परमात्मा उसके दो दोष क्षमा करता है।

यह कहकर खुदा को याद करते हुए बूढ़े ने प्राण त्याग दिए।

रहीम का क्रोध शांत हो गया। उसने किसी को न बतलाया कि आग किसने लगाई थी। पहले–पहल तो कादिर डरता रहा कि रहीम के चुप रह जाने में भी कोई भेद है, फिर कुछ दिनों पीछे उसे विश्वास हो गया कि रहीम के चित्त में अब कोई बैरभाव नहीं रहा।

बस, फिर क्या था–प्रेम में शत्रु भी मित्र हो जाते हैं। वे पास–पास घर बनाकर पड़ोसियों की भांति रहने लगे।

रहीम अपने पिता का उपदेश कभी न भूलता था कि फैलने से पहले ही चिनगारी को बुझा देना उचित है। अब यदि कोई कष्ट देता, तो वह बदला लेने की इच्छा नहीं करता। यदि कोई उसे गाली देता, तो सहन करके वह यह उपदेश करता कि कुवचन बोलना अच्छा नहीं। अपने घर के प्राणियों को भी वह यही

उपदेश दिया करता। पहले की अपेक्षा अब उसका जीवन बड़े आनन्दपूर्वक कटता है।

प्रेम में परमेश्वर

तोल्सतोय

अनुवाद-प्रेमचंद

किसी गांव में मूरत नाम का एक बनिया रहता था। सड़क पर उसकी छोटी-सी दुकान थी। वहां रहते उसे बहुत काल हो चुका था, इसलिए वहां के सब निवासियों को भली-भांति जानता था। वह बड़ा सदाचारी, सत्यवक्ता, व्यावहारिक और सुशील था। जो बात कहता, उसे जरूर पूरा करता। कभी धेले भर भी कम न तोलता और न घीतेल मिलाकर बेचता। चीज अच्छी न होती, तो गराहक से साफ-साफ कह देता, धोखा न देता था।

चौथेपन में वह भगवतभजन का प्रेमी हो गया था। उसके और बालक तो पहले ही मर चुके थे, अंत में तीन साल का बालक छोड़कर उसकी स्त्री भी जाती रही। पहले तो मूरत ने सोचा, इसे ननिहाल भेज दूं, पर फिर उसे बालक से प्रेम हो गया। वह स्वयं उसका पालन करने लगा। उसके जीवन का आधार अब यही बालक था। इसी के लिए वह रातदिन काम किया करता था। लेकिन शायद संतान का सुख उसके भाग्य में लिखा ही न था।

पलपलाकर बीस वर्ष की अवस्था में यह बालक भी यमलोक को सिधार गया। अब मूरत के शोक की कोई सीमा न थी। उसका विश्वास हिल गया। सदैव परमात्मा की निन्दा कर वह कहा करता था कि परमेश्वर बड़ा निर्दयी और अन्यायी है, मारना बूढ़े को चाहिए था, मार डाला युवक को। यहां तक कि उसने ठाकुर के मंदिर में जाना भी छोड़ दिया।

एक दिन उसका पुराना मित्र, जो आठ वर्ष से तीर्थयात्रा को गया हुआ था, उससे मिलने आया। मूरत बोला-मित्र देखो, सर्वनाश हो गया। अब मेरा जीना अकारथ है। मैं नित्य परमात्मा से यही विनती करता हूं कि वह मुझे जल्दी इस मृत्युलोक से उठा ले, मैं अब किस आशा पर जीऊं।

मित्र-मूरत, ऐसा मत कहो। परमेश्वर की इच्छा को हम नहीं जान सकते। वह जो करता है, ठीक करता है। पुत्र का मर जाना और तुम्हारा जीते रहना

विधाता के वश है और कोई इसमें क्या कर सकता है! तुम्हारे शोक का मूल कारण यह है कि तुम अपने सुख में सुख मानते हो। पराए सुख से सुखी नहीं होते।

मूरत–तो मैं क्या करुं?

मित्र–परमात्मा की निष्काम भक्ति करने से अन्त:करण शुद्ध होता है। जब सब काम परमेश्वर को अर्पण करके जीवन व्यतीत करोगे तो तुम्हें परमानंद पराप्त होगा।

मूरत–चित्त स्थिर करने का कोई उपाय तो बतलाइए।

मित्र–गीता, भक्तमालादि ग्रंथों का श्रवण, पाठन, मनन किया करो। ये ग्रंथ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों फलों को देने वाले हैं। इनका पढ़ना आरम्भ कर दो, चित्त को बड़ी शांति प्राप्ति होगी।

मूरत ने इन ग्रंथों को पढ़ना आरम्भ किया। थोड़े ही दिनों में इन पुस्तकों से उसे इतना प्रेम हो गया कि रात को बारह–बारह बजे तक गीता आदि पता और उसके उपदेशों पर विचार करता रहता था। पहले तो वह सोते समय छोटे पुत्र को स्मरण करके रोया करता था, अब सब भूल गया। सदा परमात्मा में लवलीन रहकर आनंदपूर्वक अपना जीवन बिताने लगा। पहले इधर–उधर बैठकर हंसी–ठट्ठा भी कर लिया करता था, पर अब वह समय व्यर्थ न खोता था। या तो दुकान का काम करता था या रामायण पता था। तात्पर्य यह कि उसका जीवन सुधर गया।

एक रात रामायण पढ़ते–पढ़ते उसे ये चौपाइयां मिलीं–

एक पिता के विपुल कुमारा। होइ पृथक गुण शील अचारा।
कोई पंडित कोइ तापस ज्ञाता। कोई धनवंत शूर कोइ दाता।
कोइ सर्वज्ञ धर्मरत कोई। सब पर पितहिं परीति सम होई।
अखिल विश्व यह मम उपजाया। सब पर मोहि बराबर दाया।

मूरत पुस्तक रखकर मन में विचारने लगा कि जब ईश्वर सब प्राणियों पर दया करते हैं, तो क्या मुझे सभी पर दया न करनी चाहिए? तत्पश्चात सुदामा और शबरी की कथा पढ़कर उसके मन में यह भाव उत्पन्न हुआ कि क्या मुझे भी भगवान के दर्शन हो सकते हैं!

यह विचारते–विचारते उसकी आंख लग गई। बाहर से किसी ने पुकारा–मूरत! बोला–मूरत! देख, याद रख, मैं कल तुझे दर्शन दूंगा।

यह सुनकर वह दुकान से बाहर निकल आया। वह कौन था? वह चकित होकर कहने लगा, यह स्वप्न है अथवा जागृति। कुछ पता न चला। वह दुकान के भीतर जाकर सो गया।

दूसरे दिन प्रातः काल उठ, पूजापाठ कर, दुकान में आ, भोजन बना मूरत अपने काम-धंधे में लग गया, परंतु उसे रात वाली बात नहीं भूलती थी।

रात्रि को पाला पड़ने के कारण सड़क पर बर्फ पड़ने लग गए थे। मूरत अपनी धुन में बैठा था। इतने में बर्फ हटाने को कोई कुली आया। मूरत ने समझा कृष्णचन्द्र आते हैं, आंखें खोलकर देखा कि बूढ़ा लालू बर्फ हटाने आया है, हंसकर कहने लगा-आवे बूढ़ा लालू और मैं समझूं कृष्ण भगवान, वाह री बुद्धि!

लालू बर्फ हटाने लगा। बूढ़ा आदमी था। शीत के कारण बर्फ न हटा सका। थककर बैठ गया और शीत के मारे कांपने लगा। मूरत ने सोचा कि लालू को ठंड लग रही है, इसे आग तपा दूं।

मूरत-लालू भैया, यहां आओ, तुम्हें ठंड सता रही है। हाथ सेंक लो।

लालू दुकान पर आकर धन्यवाद करके हाथ सेंकने लगा।

मूरत-भाई, कोई चिंता मत करो। बर्फ मैं हटा देता हूं। तुम बूढ़े हो, ऐसा न हो कि ठंड खा जाओ।

लालू-तुम क्या किसी की बाट देख रहे थे?

मूरत-क्या कहूं, कहते हुए लज्जा आती है। रात मैंने एक ऐसा स्वप्न देखा है कि उसे भूल नहीं सकता। भक्तमाल पढ़ते-पढ़ते मेरी आंख लग गई। बाहर से किसी ने पुकारा-'मूरत!' मैं उठकर बैठ गया। फिर शब्द हुआ, 'मूरत! मैं तुम्हें दर्शन दूंगा!' बाहर जाकर देखता हूं तो वहां कोई नहीं। मैं भक्तमाल में सुदामा और शबरी के चरित पढ़कर यह जान चुका हूं कि भगवान ने परमेवश होकर किस प्रकार साधारण जीवों को दर्शन दिए हैं। वही अभ्यास बना हुआ है। बैठा कृष्णचन्द्र की राह देख रहा था कि तुम आ गए।

लालू-जब तुम्हें भगवान से प्रेम है तो अवश्य दर्शन होंगे। तुमने आग न दी होती, तो मैं मर ही गया था।

मूरत-वाह भाई लालू, यह बात ही क्या है! इस दुकान को अपना घर समझो। मैं सदैव तुम्हारी सेवा करने को तैयार हूं।

लालू धन्यवाद करके चल दिया। उसके पीछे दो सिपाही आये। उनके पीछे एक किसान आया। फिर एक रोटी वाला आया। सब अपनी राह चले गए। फिर

एक स्त्री आयी। वह फटे-पुराने वस्त्र पहने हुए थी। उसकी गोद में एक बालक था। दोनों शीत के मारे कांप रहे थे।

मूरत-माई, बाहर ठंड में क्यों खड़ी हो? बालक को जाड़ा लग रहा है, भीतर आकर कपड़ा ओढ़ लो।

स्त्री भीतर आई। मूरत ने उसे चूल्हे के पास बिठाया और बालक को मिठाई दी।

मूरत-माई, तुम कौन हो?

स्त्री-मैं एक सिपाही की स्त्री हूं। आठ महीने से न जाने कर्मचारियों ने मेरे पति को कहां भेज दिया है, कुछ पता नहीं लगता। गर्भवती होने पर मैं एक जगह रसोई का काम करने पर नौकर थी। ज्योंही यह बालक उत्पन्न हुआ, उन्होंने इस भय से कि दो जीवों को अन्न देना पड़ेगा, मुझे निकाल दिया। तीन महीने से मारीमारी फिरती हूं। कोई टहलनी नहीं रखता। जो कुछ पास था, सब बेचकर खा गई। इधर साहूकारिन के पास जाती हूं। स्यात नौकर रख ले।

मूरत-तुम्हारे पास कोई ऊनी वस्त्र नहीं है?

स्त्री-वस्त्र कहां से हो, छदाम भी तो पास नहीं।

मूरत-यह लो लोई, इसे ओढ़ लो।

स्त्री-भगवान तुम्हारा भला करे। तुमने बड़ी दया की। बालक शीत के मारे मरा जाता था।

मूरत-मैंने दया कुछ नहीं की। श्री कृष्णचन्द्र की इच्छा ही ऐसी है।

फिर मूरत ने स्त्री को रात वाला स्वप्न सुनाया।

स्त्री-क्या अचरज है, दर्शन होने कोई असम्भव तो नहीं।

स्त्री के चले जाने पर सेव बेचने वाली आयी। उसके सिर पर सेवों की टोकरी थी और पीठ पर अनाज की गठरी। टोकरी धरती पर रखकर खम्भे का सहारा ले वह विश्राम करने लगी कि एक बालक टोकरी में से सेव उठाकर भागा। सेव वाली ने दौड़कर उसे पकड़ लिया और सिर के बाल खींचकर मारने लगी। बालक बोला-मैंने सेव नहीं उठाया।

मूरत ने उठकर बालक को छुड़ा दिया।

मूरत-माई, क्षमा कर, बालक है।

सेव वाली-यह बालक बड़ा उत्पाती है। मैं इसे दंड दिये बिना कभी न छोड़ूंगी।

मूरत–माई, जाने दे, दया कर। मैं इसे समझा दूंगा। वह ऐसा काम फिर नहीं करेगा।

बुढ़िया ने बालक को छोड़ दिया। वह भागना चाहता था कि सूरत ने उसे रोका और कहा–बुढ़िया से अपना अपराध क्षमा कराओ और प्रतिज्ञा करो कि चोरी नहीं करोगे। मैंने आप तुम्हें सेव उठाते देखा है। तुमने यह झूठ क्यों कहा?

बालक ने रोकर बुढ़िया से अपना अपराध क्षमा कराया और प्रतिज्ञा की कि फिर झूठ नहीं बोलूंगा। इस पर मूरत ने उसे एक सेव मोल ले दिया।

बुढ़िया–वाह–वाह, क्या कहना है! इस प्रकार तो तुम गांव के समस्त बालकों का सत्यानाश कर डालोगे। यह अच्छी शिक्षा है! इस तरह तो सब लड़के शेर हो जायेंगे।

मूरत–माई, यह क्या कहती हो! बदला और दंड देना तो मनुष्यों का स्वभाव है, परमात्मा का नहीं, वह दयालु है। यदि इस बालक को एक सेव चुराने का कठिन दंड मिलना उचित है, तो हमको हमारे अनन्त पापों का क्या दंड मिलना चाहिए? माई, सुनो, मैं तुम्हें एक कहानी सुनाता हूं। एक कर्मचारी पर राजा के दस हजार रुपये आते थे। उसके बहुत विनय करने पर राजा ने वह ऋण छोड़ दिया। उस कर्मचारी की भी अपने सेवकों से सौ–सौ रुपये पावने थे, वह उन्हें बड़ा कष्ट देने लगा। उन्होंने बहुतेरा कहा कि हमारे पास पैसा नहीं, ऋण कहां से चुकावें? कर्मचारी ने एक न सुनी। वे सब राजा के पास जाकर फरियादी हुए। राजा ने उसी दम कर्मचारी को कठिन दंड दिया। तात्पर्य यह कि हम जीवों पर दया नहीं करेंगे, तो परमात्मा भी हम पर दया नहीं करेगा।

बुढ़िया–यह सत्य है, परंतु ऐसे बर्ताव से बालक बिगड़ जाते हैं।

मूरत–कदापि नहीं। बिगड़ते नहीं, वरंन सुधरते हैं।

बुढ़िया टोकरा उठाकर चलने लगी कि उसी बालक ने आकर विनय की कि माई, यह टोकरा तुम्हारे घर तक मैं पहुंचा आता हूं।

रात्रि होने पर मूरत भोजन करने के बाद गीता पाठ कर रहा था कि उसकी आंख झपकी और उसने यह दृश्य देखा–

'मूरत! मूरत!'

मूरत–कौन हो?

'मैं–लालू।' इतना कहकर लालू हंसता हुआ चला गया।

फिर आवाज आयी–'मैं हूं।' मूरत देखता है कि दिन वाली स्त्री लोई ओढ़े, बालक को गोद में लिये, सम्मुख आकर खड़ी हुई, हंसी और लोप हो गई। फिर शब्द सुनाई दिया–'मैं हूं।' देखा कि सेव बेचने वाली और बालक हंसते–हंसते सामने आये और अन्तर्धान हो गए!

मूरत उठकर बैठ गया। उसे विश्वास हो गया कि कृष्णचन्द्र के दर्शन हो गए, क्योंकि प्राणिमात्र पर दया करना ही परमात्मा का दर्शन करना है।

5

गोदान उपन्यास

होरीराम ने दोनों बैलों को सानी-पानी दे कर अपनी स्त्री धनिया से कहा-गोबर को ऊख गोड़ने भेज देना। मैं न जाने कब लौटूँ। जरा मेरी लाठी दे दे।

धनिया के दोनों हाथ गोबर से भरे थे। उपले पाथ कर आई थी। बोली-अरे, कुछ रस-पानी तो कर लो। ऐसी जल्दी क्या है?

होरी ने अपने झुर्रियों से भरे हुए माथे को सिकोड़ कर कहा-तुझे रस-पानी की पड़ी है, मुझे यह चिंता है कि अबेर हो गई तो मालिक से भेंट न होगी। असनान-पूजा करने लगेंगे, तो घंटों बैठे बीत जायेगा।

'इसी से तो कहती हूँ, कुछ जलपान कर लो और आज न जाओगे तो कौन हरज होगा! अभी तो परसों गए थे।'

'तू जो बात नहीं समझती, उसमें टाँग क्यों अड़ाती है भाई! मेरी लाठी दे दे और अपना काम देख। यह इसी मिलते-जुलते रहने का परसाद है कि अब तक जान बची हुई है, नहीं कहीं पता न लगता कि किधर गए। गाँव में इतने आदमी तो हैं, किस पर बेदखली नहीं आई, किस पर कुड़की नहीं आई। जब दूसरे के पाँवों-तले अपनी गर्दन दबी हुई है, तो उन पाँवों को सहलाने में ही कुसल है।'

धनिया इतनी व्यवहार-कुशल न थी। उसका विचार था कि हमने जमींदार के खेत जोते हैं, तो वह अपना लगान ही तो लेगा। उसकी खुशामद क्यों करें, उसके तलवे क्यों सहलाएँ। यद्यपि अपने विवाहित जीवन के इन बीस बरसों में

उसे अच्छी तरह अनुभव हो गया था कि चाहे कितनी ही कतर-ब्योंत करो, कितना ही पेट-तन काटो, चाहे एक-एक कौड़ी को दाँत से पकड़ो, मगर लगान का बेबाक होना मुश्किल है। फिर भी वह हार न मानती थी और इस विषय पर स्त्री-पुरुष में आए दिन संग्राम छिड़ा रहता था। उसकी छः संतानों में अब केवल तीन जिंदा हैं, एक लड़का गोबर कोई सोलह साल का और दो लड़कियाँ सोना और रूपा, बारह और आठ साल की। तीन लड़के बचपन ही में मर गए। उसका मन आज भी कहता था, अगर उनकी दवा-दवाई होती तो वे बच जाते, पर वह एक धेले की दवा भी न मँगवा सकी थी। उसकी ही उम्र अभी क्या थी। छत्तीसवाँ ही साल तो था, पर सारे बाल पक गए थे, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं। सारी देह ढल गई थी, वह सुंदर गेहुँआँ रंग सँवला गया था और आँखों से भी कम सूझने लगा था। पेट की चिंता ही के कारण तो। कभी तो जीवन का सुख न मिला। इस चिरस्थायी जीर्णावस्था ने उसके आत्मसम्मान को उदासीनता का रूप दे दिया था। जिस गृहस्थी में पेट की रोटियाँ भी न मिलें, उसके लिए इतनी खुशामद क्यों? इस परिस्थिति से उसका मन बराबर विद्रोह किया करता था और दो-चार घुड़कियाँ खा लेने पर ही उसे यथार्थ का ज्ञान होता था।

उसने परास्त हो कर होरी की लाठी, मिरजई, जूते, पगड़ी और तमाखू का बटुआ ला कर सामने पटक दिए।

होरी ने उसकी ओर आँखें तरेर कर कहा-क्या ससुराल जाना है, जो पाँचों पोसाक लाई है? ससुराल में भी तो कोई जवान साली-सलहज नहीं बैठी है, जिसे जा कर दिखाऊँ।

होरी के गहरे साँवले, पिचके हुए चेहरे पर मुस्कराहट की मृदुता झलक पड़ी। धनिया ने लजाते हुए कहा-ऐसे ही बड़े सजीले जवान हो कि साली-सलहजें तुम्हें देख कर रीझ जाएँगी।

होरी ने फटी हुई मिरजई को बड़ी सावधानी से तह करके खाट पर रखते हुए कहा-तो क्या तू समझती है, मैं बूढ़ा हो गया? अभी तो चालीस भी नहीं हुए। मर्द साठे पर पाठे होते हैं।

'जा कर सीसे में मुँह देखो। तुम-जैसे मर्द साठे पर पाठे नहीं होते। दूध-घी अंजन लगाने तक को तो मिलता नहीं, पाठे होंगे। तुम्हारी दसा देख-देख कर तो मैं और भी सूखी जाती हूँ कि भगवान यह बुढ़ापा कैसे कटेगा? किसके द्वार पर भीख माँगेंगे?'

होरी की वह क्षणिक मृदुता यथार्थ की इस आँच में झुलस गई। लकड़ी सँभलता हुआ बोला–साठे तक पहुँचने की नौबत न आने पाएगी धनिया, इसके पहले ही चल देंगे।

धनिया ने तिरस्कार किया–अच्छा रहने दो, मत असुभ मुँह से निकालो। तुमसे कोई अच्छी बात भी कहे, तो लगते हो कोसने।

होरी कंधों पर लाठी रख कर घर से निकला, तो धनिया द्वार पर खड़ी उसे देर तक देखती रही। उसके इन निराशा–भरे शब्दों ने धनिया के चोट खाए हुए हृदय में आतंकमय कंपन–सा डाल दिया था। वह जैसे अपने नारीत्व के संपूर्ण तप और व्रत से अपने पति को अभय–दान दे रही थी। उसके अंत:करण से जैसे आशीर्वादों का व्यूह–सा निकल कर होरी को अपने अंदर छिपाए लेता था। विपन्नता के इस अथाह सागर में सोहाग ही वह तृण था, जिसे पकड़े हुए वह सागर को पार कर रही थी। इन असंगत शब्दों ने यथार्थ के निकट होने पर भी, मानो झटका दे कर उसके हाथ से वह तिनके का सहारा छीन लेना चाहा। बल्कि यथार्थ के निकट होने के कारण ही उनमें इतनी वेदना–शक्ति आ गई थी। काना कहने से काने को जो दु:ख होता है, वह क्या दो आँखों वाले आदमी को हो सकता है?

होरी कदम बढ़ाए चला जाता था। पगडंडी के दोनों ओर ऊख के पौधों की लहराती हुई हरियाली देख कर उसने मन में कहा–भगवान कहीं गौं से बरखा कर दे और डाँड़ी भी सुभीते से रहे, तो एक गाय जरूर लेगा। देसी गाएँ तो न दूध दें, न उनके बछवे ही किसी काम के हों। बहुत हुआ तो तेली के कोल्हू में चले। नहीं, वह पछाईं गाय लेगा। उसकी खूब सेवा करेगा। कुछ नहीं तो चार–पाँच सेर दूध होगा? गोबर दूध के लिए तरस–तरस रह जाता है। इस उमिर में न खाया–पिया, तो फिर कब खाएगा? साल–भर भी दूध पी ले, तो देखने लायक हो जाए। बछवे भी अच्छे बैल निकलेंगे। दो सौ से कम की गोंई न होगी। फिर गऊ से ही तो द्वार की सोभा है। सबेरे–सबेरे गऊ के दर्सन हो जाए तो क्या कहना! न जाने कब यह साध पूरी होगी, कब वह सुभ दिन आएगा!

हर एक गृहस्थ की भाँति होरी के मन में भी गऊ की लालसा चिरकाल से संचित चली आती थी। यही उसके जीवन का सबसे बड़ा स्वप्न, सबसे बड़ी साध थी। बैंक के सूद से चैन करने या जमीन खरीदने या महल बनवाने की विशाल आकांक्षाएँ उसके नन्हें–से हृदय में कैसे समातीं !

जेठ का सूर्य आमों के झुरमुट से निकल कर आकाश पर छाई हुई लालिमा को अपने रजत-प्रताप से तेज प्रदान करता हुआ ऊपर चढ़ रहा था और हवा में गरमी आने लगी थी। दोनों ओर खेतों में काम करने वाले किसान उसे देख कर राम-राम करते और सम्मान-भाव से चिलम पीने का निमंत्रण देते थे, पर होरी को इतना अवकाश कहाँ था? उसके अंदर बैठी हुई सम्मान-लालसा ऐसा आदर पा कर उसके सूखे मुख पर गर्व की झलक पैदा कर रही थी। मालिकों से मिलते-जुलते रहने ही का तो यह प्रसाद है कि सब उसका आदर करते हैं, नहीं उसे कौन पूछता- पाँच बीघे के किसान की बिसात ही क्या? यह कम आदर नहीं है कि तीन-तीन, चार-चार हल वाले महतो भी उसके सामने सिर झुकाते हैं।

अब वह खेतों के बीच की पगडंडी छोड़ कर एक खलेटी में आ गया था, जहाँ बरसात में पानी भर जाने के कारण तरी रहती थी और जेठ में कुछ हरियाली नजर आती थी। आस-पास के गाँवों की गउएँ यहाँ चरने आया करती थीं। उस उमस में भी यहाँ की हवा में कुछ ताजगी और ठंडक थी। होरी ने दो-तीन साँसें जोर से लीं। उसके जी में आया, कुछ देर यहीं बैठ जाए। दिन-भर तो लू-लपट में मरना है ही। कई किसान इस गड्ढे का पट्टा लिखाने को तैयार थे। अच्छी रकम देते थे, पर ईश्वर भला करे रायसाहब का कि उन्होंने साफ कह दिया, यह जमीन जानवरों की चराई के लिए छोड़ दी गई है और किसी दाम पर भी न उठाई जायेगी। कोई स्वार्थी जमींदार होता, तो कहता गाएँ जाये भाड़ में, हमें रुपए मिलते हैं, क्यों छोड़ें, पर रायसाहब अभी तक पुरानी मर्यादा निभाते आते हैं। जो मालिक प्रजा को न पाले, वह भी कोई आदमी है?

सहसा उसने देखा, भोला अपनी गाय लिए इसी तरफ चला आ रहा है। भोला इसी गाँव से मिले हुए पुरवे का ग्वाला था और दूध-मक्खन का व्यवसाय करता था। अच्छा दाम मिल जाने पर कभी-कभी किसानों के हाथ गाएँ बेच भी देता था। होरी का मन उन गायों को देख कर ललचा गया। अगर भोला वह आगे वाली गाय उसे दे तो क्या कहना! रुपए आगे-पीछे देता रहेगा। वह जानता था, घर में रुपए नहीं हैं। अभी तक लगान नहीं चुकाया जा सका, बिसेसर साह का देना भी बाकी है, जिस पर आने रुपए का सूद चढ़ रहा है, लेकिन दरिद्रता में जो एक प्रकार की अदूरदर्शिता होती है, वह निर्लज्जता जो तकाजे, गाली और मार से भी भयभीत नहीं होती, उसने उसे प्रोत्साहित किया। बरसों से जो साध मन को आंदोलित कर रही थी, उसने उसे विचलित कर दिया। भोला के समीप जा कर बोला-राम-राम भोला भाई, कहो क्या रंग-ढंग है? सुना अबकी मेले से नई गाएँ लाए हो?

भोला ने रूखाई से जवाब दिया। होरी के मन की बात उसने ताड़ ली थी–हाँ, दो बछिएँ और दो गाएँ लाया। पहलेवाली गाएँ सब सूख गई थी। बँधी पर दूध न पहुँचे तो गुजर कैसे हो?

होरी ने आगे वाली गाय के पुट्टे पर हाथ रख कर कहा–दुधार तो मालूम होती है। कितने में ली?

भोला ने शान जमाई–अबकी बाजार तेज रहा महतो, इसके अस्सी रुपए देने पड़े। आँखें निकल गईं। तीस–तीस रुपए तो दोनों कलोरों के दिए। तिस पर गाहक रुपए का आठ सेर दूध माँगता है।

'बड़ा भारी कलेजा है तुम लोगों का भाई, लेकिन फिर लाए भी तो वह माल कि यहाँ दस–पाँच गाँवों में तो किसी के पास निकलेगी नहीं।'

भोला पर नशा चढ़ने लगा। बोला–रायसाहब इसके सौ रुपए देते थे। दोनों कलोरों के पचास–पचास रुपए, लेकिन हमने न दिए। भगवान ने चाहा तो सौ रुपए इसी ब्यान में पीट लूँगा।

'इसमें क्या संदेह है भाई। मालिक क्या खा के लेंगे? नजराने में मिल जाय, तो भले ले लें। यह तुम्हीं लोगों का गुर्दा है कि अंजुली–भर रुपए तकदीर के भरोसे गिन देते हो। यही जी चाहता है कि इसके दरसन करता रहूँ। धन्य है तुम्हारा जीवन कि गऊओं की इतनी सेवा करते हो! हमें तो गाय का गोबर भी मयस्सर नहीं। गिरस्त के घर में एक गाय भी न हो, तो कितनी लज्जा की बात है। साल–के–साल बीत जाते हैं, गोरस के दरसन नहीं होते। घरवाली बार–बार कहती है, भोला भैया से क्यों नहीं कहते? मैं कह देता हूँ, कभी मिलेंगे तो कहूँगा। तुम्हारे सुभाव से बड़ी परसन रहती है। कहती है, ऐसा मर्द ही नहीं देखा कि जब बातें करेंगे, नीची आँखें करके कभी सिर नहीं उठाते।'

भोला पर जो नशा चढ़ रहा था, उसे इस भरपूर प्याले ने और गहरा कर दिया। बोला–आदमी वही है, जो दूसरों की बहू–बेटी को अपनी बहू–बेटी समझे। जो दुष्ट किसी मेहरिया की ओर ताके, उसे गोली मार देना चाहिए।

'यह तुमने लाख रुपए की बात कह दी भाई! बस सज्जन वही, जो दूसरों की आबरू समझे।'

'जिस तरह मर्द के मर जाने से औरत अनाथ हो जाती है, उसी तरह औरत के मर जाने से मर्द के हाथ–पाँव टूट जाते हैं। मेरा तो घर उजड़ गया महतो, कोई एक लोटा पानी देने वाला भी नहीं।'

गत वर्ष भोला की स्त्री लू लग जाने से मर गई थी। यह होरी जानता था, लेकिन पचास बरस का खंखड़ भोला भीतर से इतना स्निग्ध है, वह न जानता था। स्त्री की लालसा उसकी आँखों में सजल हो गई थी। होरी को आसन मिल गया। उसकी व्यावहारिक कृषक-बुद्धि सजग हो गई।

'पुरानी मसल झूठी थोड़े है-बिन घरनी घर भूत का डेरा। कहीं सगाई क्यों नहीं ठीक कर लेते?'

'ताक में हूँ महतो, पर कोई जल्दी फँसता नहीं। सौ-पचास खरच करने को भी तैयार हूँ। जैसी भगवान की इच्छा।'

'अब मैं भी फिराक में रहूँगा। भगवान चाहेंगे, तो जल्दी घर बस जायेगा।'

'बस, यही समझ लो कि उबर जाऊँगा भैया! घर में खाने को भगवान का दिया बहुत है। चार पसेरी रोज दूध हो जाता है, लेकिन किस काम का?'

'मेरे ससुराल में एक मेहरिया है। तीन-चार साल हुए, उसका आदमी उसे छोड़ कर कलकत्ते चला गया। बेचारी पिसाई करके गुजारा कर रही है। बाल-बच्चा भी कोई नहीं। देखने-सुनने में अच्छी है। बस, लच्छमी समझ लो।'

भोला का सिकुड़ा हुआ चेहरा जैसे चिकना गया। आशा में कितनी सुधा है! बोला-अब तो तुम्हारा ही आसरा है महतो! छुट्टी हो, तो चलो एक दिन देख आएँ।

'मैं ठीक-ठाक करके तब तुमसे कहूँगा। बहुत उतावली करने से भी काम बिगड़ जाता है।'

'जब तुम्हारी इच्छा हो तब चलो। उतावली काहे की-इस कबरी पर मन ललचाया हो, तो ले लो।'

'यह गाय मेरे मान की नहीं है दादा। मैं तुम्हें नुकसान नहीं पहुँचाना चाहता। अपना धरम यह नहीं है कि मित्रों का गला दबाएँ। जैसे इतने दिन बीते हैं, वैसे और भी बीत जाएँगे।'

'तुम तो ऐसी बातें करते हो होरी, जैसे हम-तुम दो हैं। तुम गाय ले जाओ, दाम जो चाहे देना। जैसे मेरे घर रही, वैसे तुम्हारे घर रही। अस्सी रुपए में ली थी, तुम अस्सी रुपए ही देना देना। जाओ।'

'लेकिन मेरे पास नगद नहीं है दादा, समझ लो।'

'तो तुमसे नगद माँगता कौन है भाई?'

होरी की छाती गज-भर की हो गई। अस्सी रुपए में गाय महँगी न थी। ऐसा अच्छा डील-डौल, दोनों जून में छः सात सेर दूध, सीधी ऐसी कि बच्चा

भी दुह ले। इसका तो एक-एक बाछा सौ-सौ का होगा। द्वार पर बँधेगी तो द्वार की सोभा बढ़ जायेगी। उसे अभी कोई चार सौ रुपए देने थे, लेकिन उधार को वह एक तरह से मुफ्त समझता था। कहीं भोला की सगाई ठीक हो गई, तो साल-दो साल तो वह बोलेगा भी नहीं। सगाई न भी हुई, तो होरी का क्या बिगड़ता है! यही तो होगा, भोला बार-बार तगादा करने आएगा, बिगड़ेगा, गालियाँ देगा, लेकिन होरी को इसकी ज्यादा शर्म न थी। इस व्यवहार का वह आदी था। कृषक के जीवन का तो यह प्रसाद है। भोला के साथ वह छल कर रहा था और यह व्यापार उसकी मर्यादा के अनुकूल न था। अब भी लेन-देन में उसके लिए लिखा-पढ़ी होने और न होने में कोई अंतर न था। सूखे-बूड़े की विपदाएँ उसके मन को भीरु बनाए रहती थीं। ईश्वर का रुद्र रूप सदैव उसके सामने रहता था, पर यह छल उसकी नीति में छल न था। यह केवल स्वार्थ-सिद्धि थी और यह कोई बुरी बात न थी। इस तरह का छल तो वह दिन-रात करता रहता था। घर में दो-चार रुपए पड़े रहने पर भी महाजन के सामने कसमें खा जाता था कि एक पाई भी नहीं है। सन को कुछ गीला कर देना और रूई में कुछ बिनौले भर देना उसकी नीति में जायज था और यहाँ तो केवल स्वार्थ न था, थोड़ा-सा मनोरंजन भी था। बुड्ढों का बुढ़भस हास्यास्पद वस्तु है और ऐसे बुड्ढों से अगर कुछ ऐंठ भी लिया जाय, तो कोई दोष-पाप नहीं।

भोला ने गाय की पगहिया होरी के हाथ में देते हुए कहा-ले जाओ महतो, तुम भी क्या याद करोगे। ब्याते ही छः सेर दूध लेना। चलो, मैं तुम्हारे घर तक पहुँचा दूँ। साइत तुम्हें अनजान समझ कर रास्ते में कुछ दिक करे। अब तुमसे सच कहता हूँ, मालिक नब्बे रुपए देते थे, पर उनके यहाँ गऊओं की क्या कदर। मुझसे ले कर किसी हाकिम-हुक्काम को दे देते। हाकिमों को गऊ की सेवा से मतलब? वह तो खून चूसना-भर जानते हैं। जब तक दूध देती, रखते, फिर किसी के हाथ बेच देते। किसके पल्ले पड़ती, कौन जाने। रुपया ही सब कुछ नहीं है भैया, कुछ अपना धरम भी तो है। तुम्हारे घर आराम से रहेगी तो। यह न होगा कि तुम आप खा कर सो रहो और गऊ भूखी खड़ी रहे। उसकी सेवा करोगे, प्यार करोगे, चुमकारोगे। गऊ हमें आसिरवाद देगी। तुमसे क्या कहूँ भैया, घर में चंगुल-भर भी भूसा नहीं रहा। रुपए सब बाजार में निकल गए। सोचा था, महाजन से कुछ ले कर भूसा ले लेंगे, लेकिन महाजन का पहला ही नहीं चुका। उसने इनकार कर दिया। इतने जानवरों को क्या खिलाएँ, यही चिंता मारे डालती है।

चुटकी-चुटकी भर खिलाऊँ, तो मन-भर रोज का खरच है। भगवान ही पार लगाएँ तो लगे।

होरी ने सहानुभूति के स्वर में कहा-तुमने हमसे पहले क्यों नहीं कहा-हमने एक गाड़ी भूसा बेच दिया।

भोला ने माथा ठोक कर कहा-इसीलिए नहीं कहा-भैया कि सबसे अपना दु:ख क्यों रोऊँ, बाँटता कोई नहीं, हँसते सब हैं। जो गाएँ सूख गई हैं, उनका गम नहीं, पत्ती-सत्ती खिला कर जिला लूँगा, लेकिन अब यह तो रातिब बिना नहीं रह सकती। हो सके, तो दस-बीस रुपए भूसे के लिए दे दो।

किसान पक्का स्वार्थी होता है, इसमें संदेह नहीं। उसकी गाँठ से रिश्वत के पैसे बड़ी मुश्किल से निकलते हैं, भाव-ताव में भी वह चौकस होता है, ब्याज की एक-एक पाई छुड़ाने के लिए वह महाजन की घंटों चिरौरी करता है, जब तक पक्का विश्वास न हो जाय, वह किसी के फुसलाने में नहीं आता, लेकिन उसका संपूर्ण जीवन प्रकृति से स्थायी सहयोग है। वृक्षों में फल लगते हैं, उन्हें जनता खाती है, खेती में अनाज होता है, वह संसार के काम आता है, गाय के थन में दूध होता है, वह खुद पीने नहीं जाती, दूसरे ही पीते हैं, मेघों से वर्षा होती है, उससे पृथ्वी तृप्त होती है। ऐसी संगति में कुत्सित स्वार्थ के लिए कहाँ स्थान? होरी किसान था और किसी के जलते हुए घर में हाथ सेंकना उसने सीखा ही न था।

भोला की संकट-कथा सुनते ही उसकी मनोवृत्ति बदल गई। पगहिया को भोला के हाथ में लौटाता हुआ बोला-रुपए तो दादा मेरे पास नहीं हैं। हाँ, थोड़ा-सा भूसा बचा है, वह तुम्हें दूँगा। चल कर उठवा लो। भूसे के लिए तुम गाय बेचोगे और मैं लूँगा! मेरे हाथ न कट जाएँगे?

भोला ने आर्द्र कंठ से कहा-तुम्हारे बैल भूखों न मरेंगे। तुम्हारे पास भी ऐसा कौन-सा बहुत-सा भूसा रखा है।

'नहीं दादा, अबकी भूसा अच्छा हो गया था।'

'मैंने तुमसे नाहक भूसे की चर्चा की।'

'तुम न कहते और पीछे से मुझे मालूम होता, तो मुझे बड़ा रंज होता कि तुमने मुझे इतना गैर समझ लिया। अवसर पड़ने पर भाई की मदद भाई न करे, तो काम कैसे चले!'

'मुदा यह गाय तो लेते जाओ।'

'अभी नहीं दादा, फिर ले लूँगा।'

'तो भूसे के दाम दूध में कटवा लेना।'

होरी ने दुरूखित स्वर में कहा–दाम–कौड़ी की इसमें कौन बात है दादा, मैं एक–दो जून तुम्हारे घर खा लूँ तो तुम मुझसे दाम माँगोगे?

'लेकिन तुम्हारे बैल भूखों मरेंगे कि नही?'

'भगवान कोई–न–कोई सबील निकालेंगे ही। आसाढ़ सिर पर है। कड़वी बो लूँगा।'

'मगर यह गाय तुम्हारी हो गई। जिस दिन इच्छा हो, आ कर ले जाना।'

'किसी भाई का लिलाम पर चढ़ा हुआ बैल लेने में जो पाप है, वह इस समय तुम्हारी गाय लेने में है।'

होरी में बाल की खाल निकालने की शक्ति होती, तो वह खुशी से गाय ले कर घर की राह लेता। भोला जब नकद रुपए नहीं माँगता, तो स्पष्ट था कि वह भूसे के लिए गाय नहीं बेच रहा है, बल्कि इसका कुछ और आशय है, लेकिन जैसे पत्तों के खड़कने पर घोड़ा अकारण ही ठिठक जाता है और मारने पर भी आगे कदम नहीं उठाता, वही दशा होरी की थी। संकट की चीज लेना पाप है, यह बात जन्म–जन्मांतरों से उसकी आत्मा का अंश बन गई थी।

भोला ने गदगद कंठ से कहा–तो किसी को भेज दूँ भूसे के लिए?

होरी ने जवाब दिया–अभी मैं रायसाहब की ड्योढ़ी पर जा रहा हूँ। वहाँ से घड़ी–भर में लौटूँगा, तभी किसी को भेजना।

भोला की आँखों में आँसू भर आए। बोला–तुमने आज मुझे उबार लिया होरी भाई! मुझे अब मालूम हुआ कि मैं संसार में अकेला नहीं हूँ। मेरा भी कोई हितू है। एक क्षण के बाद उसने फिर कहा–उस बात को भूल न जाना।

होरी आगे बढ़ा, तो उसका चित्त प्रसन्न था। मन में एक विचित्र स्फूर्ति हो रही थी। क्या हुआ, दस–पाँच मन भूसा चला जायेगा, बेचारे को संकट में पड़ कर अपनी गाय तो न बेचनी पड़ेगी। जब मेरे पास चारा हो जायेगा तब गाय खोल लाऊँगा। भगवान करें, मुझे कोई मेहरिया मिल जाए। फिर तो कोई बात ही नहीं।

उसने पीछे फिर कर देखा। कबरी गाय पूँछ से मक्खियाँ उड़ाती, सिर हिलाती, मस्तानी, मंद–गति से झूमती चली जाती थी, जैसे बांदियों के बीच में कोई रानी हो। कैसा शुभ होगा वह दिन, जब यह कामधेनु उसके द्वार पर बँधेगी!

6

छोटा जादूगर : जयशंकर प्रसाद

कार्निवल के मैदान में बिजली जगमगा रही थी। हँसी और विनोद का कलनाद गूँज रहा था। मैं खड़ा था। उस छोटे फुहारे के पास, जहाँ एक लड़का चुपचाप शराब पीनेवालों को देख रहा था। उसके गले में फटे कुरते के ऊपर से एक मोटी-सी सूत की रस्सी पड़ी थी और जेब में कुछ ताश के पत्ते थे। उसके मुँह पर गम्भीर विषाद के साथ धैर्य की रेखा थी। मैं उसकी ओर न जाने क्यों आकर्षित हुआ। उसके अभाव में भी सम्पूर्णता थी। मैंने पूछा-'क्यों जी, तुमने इसमें क्या देखा?'

'मैंने सब देखा है। यहाँ चूड़ी फेंकते हैं। खिलौनों पर निशाना लगाते हैं। तीर से नम्बर छेदते हैं। मुझे तो खिलौनों पर निशाना लगाना अच्छा मालूम हुआ। जादूगर तो बिलकुल निकम्मा है। उससे अच्छा तो ताश का खेल मैं ही दिखा सकता हूँ।'-उसने बड़ी प्रगल्भता से कहा। उसकी वाणी में कहीं रुकावट न थी।

मैंने पूछा-'और उस परदे में क्या है? वहाँ तुम गये थे।'

'नहीं, वहाँ मैं नहीं जा सका। टिकट लगता है।'

मैंने कहा-'तो चल, मैं वहाँ पर तुमको लिवा चलूँ।'' मैंने मन-ही-मन कहा-'भाई! आज के तुम्हीं मित्र रहे।'

उसने कहा-'वहाँ जाकर क्या कीजिएगा? चलिए, निशाना लगाया जाय।'

मैंने सहमत होकर कहा-'तो फिर चलो, पहिले शरबत पी लिया जाय।'' उसने स्वीकार-सूचक सिर हिला दिया।

मनुष्यों की भीड़ से जाड़े की सन्ध्या भी वहाँ गर्म हो रही थी। हम दोनों शरबत पीकर निशाना लगाने चले। राह में ही उससे पूछा-'तुम्हारे और कौन हैं?'

'माँ और बाबूजी।'

'उन्होंने तुमको यहाँ आने के लिए मना नहीं किया?'

'बाबूजी जेल में है।'

'क्यों?'

'देश के लिए।'-वह गर्व से बोला।

'और तुम्हारी माँ?'

'वह बीमार है।'

'और तुम तमाशा देख रहे हो?'

उसके मुँह पर तिरस्कार की हँसी फूट पड़ी। उसने कहा-'तमाशा देखने नहीं, दिखाने निकला हूँ। कुछ पैसे ले जाऊँगा, तो माँ को पथ्य दूँगा। मुझे शरबत न पिलाकर आपने मेरा खेल देखकर मुझे कुछ दे दिया होता, तो मुझे अधिक प्रसन्नता होती।'

मैं आश्चर्य से उस तेरह-चौदह वर्ष के लड़के को देखने लगा।

'हाँ, मैं सच कहता हूँ बाबूजी! माँ जी बीमार है, इसलिए मैं नहीं गया।'

'कहाँ?'

'जेल में! जब कुछ लोग खेल-तमाशा देखते ही हैं, तो मैं क्यों न दिखाकर माँ की दवा करूँ और अपना पेट भरूँ।'

मैंने दीर्घ निश्वास लिया। चारों ओर बिजली के लट्टू नाच रहे थे। मन व्यग्र हो उठा। मैंने उससे कहा-'अच्छा चलो, निशाना लगाया जाय।'

हम दोनों उस जगह पर पहुँचे, जहाँ खिलौने को गेंद से गिराया जाता था। मैंने बारह टिकट खरीदकर उस लड़के को दिये।

वह निकला पक्का निशानेबाज। उसका कोई गेंद खाली नहीं गया। देखनेवाले दंग रह गये। उसने बारह खिलौनों को बटोर लिया, लेकिन उठाता कैसे? कुछ मेरी रुमाल में बँधे, कुछ जेब में रख लिए गये।

लड़के ने कहा-'बाबूजी, आपको तमाशा दिखाऊँगा। बाहर आइए, मैं चलता हूँ।'' वह नौ-दो ग्यारह हो गया। मैंने मन-ही-मन कहा-'इतनी जल्दी आँख बदल गयी।'

मैं घूमकर पान की दुकान पर आ गया। पान खाकर बड़ी देर तक इधर-उधर टहलता देखता रहा। झूले के पास लोगों का ऊपर-नीचे आना देखने लगा। अकस्मात् किसी ने ऊपर के हिंडोले से पुकारा-'बाबूजी!'

मैंने पूछा-'कौन?'

'मैं हूँ छोटा जादूगर।'

-- --

कलकत्ते के सुरम्य बोटानिकल-उद्यान में लाल कमलिनी से भरी हुई एक छोटी-सी-झील के किनारे घने वृक्षों की छाया में अपनी मण्डली के साथ बैठा हुआ मैं जलपान कर रहा था। बातें हो रही थीं। इतने में वही छोटा जादूगर दिखाई पड़ा। हाथ में चारखाने की खादी का झोला। साफ जाँघिया और आधी बाँहों का कुरता। सिर पर मेरी रुमाल सूत की रस्सी से बँधी हुई थी। मस्तानी चाल से झूमता हुआ आकर कहने लगा-

'बाबूजी, नमस्ते! आज कहिए, तो खेल दिखाऊँ।'

'नहीं जी, अभी हम लोग जलपान कर रहे हैं।'

'फिर इसके बाद क्या गाना-बजाना होगा, बाबूजी?'

'नहीं जी-तुमको....', क्रोध से मैं कुछ और कहने जा रहा था। श्रीमती ने कहा-'दिखलाओ जी, तुम तो अच्छे आये। भला, कुछ मन तो बहले।'' मैं चुप हो गया, क्योंकि श्रीमती की वाणी में वह माँ की-सी मिठास थी, जिसके सामने किसी भी लड़के को रोका जा नहीं सकता। उसने खेल आरम्भ किया।

उस दिन कार्निवल के सब खिलौने उसके खेल में अपना अभिनय करने लगे। भालू मनाने लगा। बिल्ली रूठने लगी। बन्दर घुड़कने लगा।

गुड़िया का ब्याह हुआ। गुड्डा वर काना निकला। लड़के की वाचालता से ही अभिनय हो रहा था। सब हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये।

मैं सोच रहा था। बालक को आवश्यकता ने कितना शीघ्र चतुर बना दिया। यही तो संसार है।

ताश के सब पत्ते लाल हो गये। फिर सब काले हो गये। गले की सूत की डोरी टुकड़े-टुकड़े होकर जुट गयी। लट्टू अपने से नाच रहे थे। मैंने कहा-'अब हो चुका। अपना खेल बटोर लो, हम लोग भी अब जायँगे।'

श्रीमती जी ने धीरे से उसे एक रुपया दे दिया। वह उछल उठा।

मैंने कहा-'लड़के!'

'छोटा जादूगर कहिए। यही मेरा नाम है। इसी से मेरी जीविका है।'

मैं कुछ बोलना ही चाहता था कि श्रीमती ने कहा–'अच्छा, तुम इस रुपये से क्या करोगे?'

'पहले भर पेट पकौड़ी खाऊँगा। फिर एक सूती कम्बल लूँगा।'

मेरा क्रोध अब लौट आया। मैं अपने पर बहुत क्रुद्ध होकर सोचने लगा–'ओह! कितना स्वार्थी हूँ मैं। उसके एक रुपये पाने पर मैं ईर्ष्या करने लगा था न!'

वह नमस्कार करके चला गया। हम लोग लता-कुञ्ज देखने के लिए चले।

उस छोटे-से बनावटी जंगल में सन्ध्या साँय-साँय करने लगी थी। अस्ताचलगामी सूर्य की अन्तिम किरण वृक्षों की पत्तियों से विदाई ले रही थी। एक शान्त वातावरण था। हम लोग धीरे-धीरे मोटर से हावड़ा की ओर आ रहे थे।

रह-रहकर छोटा जादूगर स्मरण होता था। सचमुच वह एक झोपड़ी के पास कम्बल कन्धे पर डाले खड़ा था। मैंने मोटर रोककर उससे पूछा–'तुम यहाँ कहाँ?'

'मेरी माँ यहीं है न। अब उसे अस्पताल वालों ने निकाल दिया है।'' मैं उतर गया। उस झोपड़ी में देखा, तो एक स्त्री चिथड़ों से लदी हुई काँप रही थी।

छोटे जादूगर ने कम्बल ऊपर से डालकर उसके शरीर से चिमटते हुए कहा–'माँ।'

मेरी आँखों से आँसू निकल पड़े।

-- --

बड़े दिन की छुट्टी बीत चली थी। मुझे अपने ऑफिस में समय से पहुँचना था। कलकत्ते से मन ऊब गया था। फिर भी चलते-चलते एक बार उस उद्यान को देखने की इच्छा हुई। साथ-ही-साथ जादूगर भी दिखाई पड़ जाता, तो और भी..... मैं उस दिन अकेले ही चल पड़ा। जल्द लौट आना था।

दस बज चुका था। मैंने देखा कि उस निर्मल धूप में सड़क के किनारे एक कपड़े पर छोटे जादूगर का रंगमंच सजा था। मोटर रोककर उतर पड़ा। वहाँ बिल्ली रूठ रही थी। भालू मनाने चला था। ब्याह की तैयारी थी, यह सब होते हुए भी जादूगर की वाणी में वह प्रसन्नता की तरी नहीं थी। जब वह औरों को हँसाने की चेष्टा कर रहा था, तब जैसे स्वयं कँप जाता था। मानो उसके रोएँ रो रहे थे। मैं आश्चर्य से देख रहा था। खेल हो जाने पर पैसा बटोरकर उसने भीड़

में मुझे देखा। वह जैसे क्षण-भर के लिए स्फूर्तिमान हो गया। मैंने उसकी पीठ थपथपाते हुए पूछा-'आज तुम्हारा खेल जमा क्यों नहीं?'

'माँ ने कहा है कि आज तुरन्त चले आना। मेरी घड़ी समीप है।'-अविचल भाव से उसने कहा।

''तब भी तुम खेल दिखलाने चले आये!'' मैंने कुछ क्रोध से कहा। मनुष्य के सुख-दु:ख का माप अपना ही साधन तो है। उसी के अनुपात से वह तुलना करता है।

उसके मुँह पर वही परिचित तिरस्कार की रेखा फूट पड़ी।

उसने कहा-'न क्यों आता!'

और कुछ अधिक कहने में जैसे वह अपमान का अनुभव कर रहा था।

क्षण-भर में मुझे अपनी भूल मालूम हो गयी। उसके झोले को गाड़ी में फेंककर उसे भी बैठाते हुए मैंने कहा-'जल्दी चलो।'' मोटरवाला मेरे बताये हुए पथ पर चल पड़ा।

कुछ ही मिनटों में मैं झोपड़े के पास पहुँचा। जादूगर दौड़कर झोपड़े में माँ-माँ पुकारते हुए घुसा। मैं भी पीछे था, किन्तु स्त्री के मुँह से, 'बे...' निकलकर रह गया। उसके दुर्बल हाथ उठकर गिर गये। जादूगर उससे लिपटा रो रहा था, मैं स्तब्ध था। उस उज्ज्वल धूप में समग्र संसार जैसे जादू-सा मेरे चारों ओर नृत्य करने लगा।

7

कंकाल: जयशंकर प्रसाद

प्रतिष्ठान के खँडहर में और गंगा-तट की सिकता-भूमि में अनेक शिविर और फूस के झोंपड़े खड़े हैं। माघ की अमावस्या की गोधूली में प्रयाग में बाँध पर प्रभात का-सा जनरव और कोलाहल तथा धर्म लूटने की धूम कम हो गयी है, परन्तु बहुत-से घायल और कुचले हुए अर्धमृतकों की आर्तध्वनि उस पावन प्रदेश को आशीर्वाद दे रही है। स्वयं-सेवक उन्हें सहायता पहुँचाने में व्यस्त हैं। यों तो प्रतिवर्ष यहाँ पर जन-समूह एकत्र होता है, पर अब की बार कुछ विशेष पर्व की घोषणा की गयी थी, इसलिए भीड़ अधिकता से हुई।

कितनों के हाथ टूटे, कितनों का सिर फूटा और कितने ही पसलियों की हड्डियाँ गँवाकर, अधोमुख होकर त्रिवेणी को प्रणाम करने लगे। एक नीरव अवसाद संध्या में गंगा के दोनों तट पर खड़े झोंपड़ी पर अपनी कालिमा बिखेर रहा था। नंगी पीठ घोड़ों पर नंगे साधुओं के चढ़ने का जो उत्साह था, जो तलवार की फिकैती दिखलाने की स्पर्धा थी, दर्शक-जनता पर बालू की वर्षा करने का जो उन्माद था, बड़े-बड़े कारचोबी झंडों को आगे से चलने का जो आतंक था, वह सब अब फीका हो चला था।

एक छायादार डोंगी जमुना के प्रशांत वक्ष को आकुलित करती हुई गंगा की प्रखर धारा को काटने लगी-उस पर चढ़ने लगी। माझियों ने कसकर दौड़ लगायी। नाव झूँसी के तट पर जा लगी। एक सम्भ्रान्त सज्जन और युवती, साथ में एक नौकर उस पर से उतरे। पुरुष यौवन में होने पर भी कुछ खिन्न-सा था,

युवती हँसमुख थी, परन्तु नौकर बड़ा ही गंभीर बना था। यह सम्भवत: उस पुरुष की प्रभावशालिनी शिष्टता की शिक्षा थी। उसके हाथ में एक बाँस की डोलची थी, जिसमें कुछ फल और मिठाइयाँ थीं। साधुओं के शिविरों की पंक्ति सामने थी, वे लोग उसकी ओर चले। सामने से दो मनुष्य बातें करते आ रहे थे-

'ऐसी भव्य मूर्ति इस मेले भर में दूसरी नहीं है।'

'जैसे साक्षात् भगवान् का अंश हो।'

'अजी ब्रह्मचर्य का तेज है।'

'अवश्य महात्मा हैं।'

वे दोनों चले गये।

यह दल उसी शिविर की ओर चल पड़ा, जिधर से दोनों बातें करते आ रहे थे। पटमण्डप के समीप पहुँचने पर देखा, बहुत से दर्शक खड़े हैं। एक विशिष्ट आसन पर एक बीस वर्ष का युवक हलके रंग का काषाय वस्त्र अंग पर डाले बैठा है। जटा-जूट नहीं था, कंधे तक बाल बिखरे थे। आँखें संयम के मद से भरी थीं। पुष्ट भुजाएँ और तेजोमय मुख-मण्डल से आकृति बड़ी प्रभावशालिनी थी। सचमुच, वह युवक तपस्वी भक्ति करने योग्य था। आगन्तुक और उसकी युवती स्त्री ने विनम्र होकर नमस्कार किया और नौकर के हाथ से लेकर उपहार सामने रखा। महात्मा ने सस्नेह मुस्करा दिया। सामने बैठे हुए भक्त लोग कथा कहने वाले एक साधु की बातें सुन रहे थे। वह एक छन्द की व्याख्या कर रहा था-'तासों चुप ह्वै रहिये'। गूँगा गुड़ का स्वाद कैसे बतावेगा, नमक की पतली जब लवण-सिन्धु में गिर गई, फिर वह अलग होकर क्या अपनी सत्ता बतावेगी! ब्रह्म के लिए भी वैसे ही 'इदमित्यं' कहना असम्भव है, इसलिए महात्मा ने कहा-'तासों चुप ह्वै रहिये'।

उपस्थित साधु और भक्तों ने एक-दूसरे का मुँह देखते हुए प्रसन्नता प्रकट की। सहसा महात्मा ने कहा, ऐसा ही उपनिषदों में भी कहा है। सम्भ्रान्त पुरुष सुशिक्षित था, उसके हृदय में यह बात समा गयी कि महात्मा वास्तविक ज्ञान-सम्पन्न महापुरुष हैं। उसने अपने साधु-दर्शन की इच्छा की सराहना की और भक्तिपूर्वक बैठकर 'सत्संग' सुनने लगा।

रात हो गयी, जगह-जगह पर अलाव धधक रहे थे। शीत की प्रबलता थी। फिर भी धर्म-संग्राम के सेनापति लोग शिविरों में डटे रहे। कुछ ठहरकर आगन्तुक ने जाने की आज्ञा चाही। महात्मा ने पूछा, 'आप लोगों का शुभ नाम और परिचय क्या है।

'हम लोग अमृतसर के रहने वाले हैं, मेरा नाम श्रीचन्द्र है और यह मेरी धर्मपत्नी है।' कहकर श्रीचन्द्र ने युवती की ओर संकेत किया। महात्मा ने भी उसकी ओर देखा। युवती ने उस दृष्टि से यह अर्थ निकाला कि महात्मा जी मेरा भी नाम पूछ रहे हैं। वह जैसे किसी पुरस्कार पाने की प्रत्याशा और लालच से प्रेरित होकर बोल उठी, 'दासी का नाम किशोरी है।'

महात्मा की दृष्टि में जैसे एक आलोचक घूम गया। उसने सिर नीचा कर लिया और बोला, 'अच्छा विलम्ब होगा, जाइये। भगवान् का स्मरण रखिये।'

श्रीचन्द्र किशोरी के साथ उठे। प्रणाम किया और चले।

साधुओं का भजन-कोलाहल शान्त हो गया था। निस्तब्धता रजनी के मधुर क्रोड़ में जाग रही थी। निशीथ के नक्षत्र गंगा के मुकुल में अपना प्रतिबिम्ब देख रहे थे। शांत पवन का झोंका सबको आलिंगन करता हुआ विरक्त के समान भाग रहा था। महात्मा के हृदय में हलचल थी। वह निष्पाप हृदय ब्रह्मचारी दुश्चिन्ता से मलिन, शिविर छोड़कर कम्बल डाले, बहुत दूर गंगा की जलधारा के समीप खड़ा होकर अपने चिरसंचित पुण्यों को पुकारने लगा।

वह अपने विराग को उत्तेजित करता, परन्तु मन की दुर्बलता प्रलोभन बनकर विराग की प्रतिद्वन्द्विता करने लगती और इसमें उसके अतीत की स्मृति भी उसे धोखा दे रही थी, जिन-जिन सुखों को वह त्यागने की चिंता करता, वे ही उसे धक्का देने का उद्योग करते। दूर सामने दिखने वाली कलिन्दजा की गति का अनुकरण करने के लिए वह मन को उत्साह दिलाताय परन्तु गंभीर अर्द्धनिशीथ के पूर्ण उज्ज्वल नक्षत्र बाल-काल की स्मृति के सदृश मानस-पटल पर चमक उठते थे। अनन्त आकाश में जैसे अतीत की घटनाएँ रजताक्षरों से लिखी हुई उसे दिखाई पड़ने लगीं।

झेलम के किनारे एक बालिका और एक बालक अपने प्रणय के पौधे को अनेक क्रीड़ा-कौतूहलों के जल से सींच रहे हैं। बालिका के हृदय में असीम अभिलाषा और बालक के हृदय में अदम्य उत्साह। बालक रंजन आठ वर्ष का हो गया और बालिका सात की। एक दिन अकस्मात् रंजन को लेकर उसके माता-पिता हरिद्वार चल पड़े। उस समय किशोरी ने उससे पूछा, 'रंजन, कब आओगे?'

उसने कहा, 'बहुत ही जल्द। तुम्हारे लिए अच्छा-अच्छी गुड़िया लेकर आऊँगा।'

रंजन चला गया। जिस महात्मा की कृपा और आशीर्वाद से उसने जन्म लिया था, उसी के चरणों में चढ़ा दिया गया। क्योंकि उसकी माता ने सन्तान होने की ऐसी ही मनौती की थी।

निष्ठुर माता-पिता ने अन्य सन्तानों के जीवित रहने की आशा से अपने ज्येष्ठ पुत्र को महात्मा का शिष्य बना दिया। बिना उसकी इच्छा के वह संसार से-जिसे उसने अभी देखा भी नहीं था-अलग कर दिया गया। उसका गुरुद्वारे का नाम देवनिरंजन हुआ। वह सचमुच आदर्श ब्रह्मचारी बना। वृद्ध गुरुदेव ने उसकी योग्यता देखकर उसे उन्नीस वर्ष की ही अवस्था में गद्दी का अधिकारी बनाया। वह अपने संघ का संचालन अच्छे ढंग से करने लगा।

हरिद्वार में उस नवीन तपस्वी की सुख्याति पर बूढ़े-बूढ़े बाबा ईर्ष्या करने लगे और इधर निरंजन के मठ की भेंट-पूजा बढ़ गयी, परन्तु निरंजन सब चढ़े हुए धन का सदुपयोग करता था। उसके सद्‌गुणों का गौरव-चित्र आज उसकी आँखों के सामने खिंच गया और वह प्रशंसा और सुख्याति के लोभ दिखाकर मन को इन नयी कल्पनाओं से हटाने लगा, परन्तु किशोरी के मन में उसे बारह वर्ष की प्रतिमा की स्मरण दिला दिया। उसने हरिद्वार आते हुए कहा था-किशोरी, तेरे लिए गुड़िया ले आऊँगा। क्या यह वही किशोरी है? अच्छा यही है, तो इसे संसार में खेलने के लिए गुड़िया मिल गयी। उसका पति है, वह उसे बहलायेगा। मुझ तपस्वी को इससे क्या! जीवन का बुल्ला विलीन हो जायेगा। ऐसी कितनी ही किशोरियाँ अनन्त समुद्र में तिरोहित हो जायेंगी। मैं क्यों चिंता करूँ?

परन्तु प्रतिज्ञा? ओह वह स्वप्न था, खिलवाड़ था। मैं कौन हूँ किसी को देने वाला, वही अन्तर्यामी सबको देता है। मूर्ख निरंजन! सम्हल!! कहाँ मोह के थपेड़े में झूमना चाहता है। परन्तु यदि वह कल फिर आयी तो? भागना होगा। भाग निरंजन, इस माया से हारने के पहले युद्ध होने का अवसर ही मत दे।

निरंजन धीरे-धीरे अपने शिविर को बहुत दूर छोड़ता हुआ, स्टेशन की ओर विचरता हुआ चल पड़ा। भीड़ के कारण बहुत-सी गाड़ियाँ बिना समय भी आ-जा रही थीं। निरंजन ने एक कुली से पूछा, 'यह गाड़ी कहाँ जायेगी?'

'सहारनपुर।' उसने कहा।

देवनिरंजन गाड़ी में चुपचाप बैठ गया।

दूसरे दिन जब श्रीचन्द्र और किशोरी साधु-दर्शन के लिए फिर उसी स्थान पर पहुँचे, तब वहाँ अखाड़े के साधुओं को बड़ा व्यग्र पाया। पता लगाने पर मालूम हुआ कि महात्माजी समाधि के लिए हरिद्वार चले गये। यहाँ उनकी उपासना में

कुछ विन होता था। वे बड़े त्यागी हैं। उन्हें गृहस्थों की बहुत झंझट पसन्द नहीं। यहाँ धन और पुत्र माँगने वालों तथा कष्ट से छुटकारा पाने वालों की प्रार्थना से वे ऊब गये थे।

किशोरी ने कुछ तीखे स्वर से अपने पति से कहा, 'मैं पहले ही कहती थी कि तुम कुछ न कर सकोगे। न तो स्वयं कहा और न मुझे प्रार्थना करने दी।'

विरक्त होकर श्रीचन्द्र ने कहा, 'तो तुमको किसने रोका था। तुम्हीं ने क्यों न सन्तान के लिए प्रार्थना की! कुछ मैंने बाधा तो दी न थी।'

'उत्तेजित किशोरी ने कहा, 'अच्छा तो हरिद्वार चलना होगा।'

'चलो, मैं तुम्हें वहाँ पहुँचा दूँगा और अमृतसर आज तार दे दूँगा कि मैं हरिद्वार से होता हुआ आता हूँ, क्योंकि मैं व्यवसाय इतने दिनों तक यों ही नहीं छोड़ सकता।'

'अच्छी बात है, परन्तु मैं हरिद्वार अवश्य जाऊँगी।'

'सो तो मैं जानता हूँ।' कहकर श्रीचन्द्र ने मुँह भारी कर लिया, परन्तु किशोरी को अपनी टेक रखनी थी। उसे पूर्ण विश्वास हो गया था कि उन महात्मा से मुझे अवश्य सन्तान मिलेगी।

उसी दिन श्रीचन्द्र ने हरिद्वार के लिए प्रस्थान किया और अखाड़े के भण्डारी ने भी जमात लेकर हरिद्वार जाने का प्रबन्ध किया।

हरिद्वार के समीप ही जाह्नवी के तट पर तपोवन का स्मरणीय दृश्य है। छोटे-छोटे कुटीरों की श्रेणी बहुत दूर तक चली गयी है। खरस्रोता जाह्नवी की शीतल धारा उस पावन प्रदेश को अपने कल-नाद से गुंजरित करती है। तपस्वी अपनी योगचर्या-साधन के लिए उन छोटे-छोटे कुटीरों में रहते हैं। बड़े-बड़े मठों से अन्न-सत्र का प्रबन्ध है। वे अपनी भिक्षा ले आते हैं और इसी निभृत स्थान में बैठकर अपने पाप का प्रक्षालन करते हुए ब्रह्मानन्द का सुख भोगते हैं। सुन्दर शिला-खण्ड, रमणीय लता-वितान, विशाल वृक्षों की मधुर छाया, अनेक प्रकार के पक्षियों का कोमल कलरव, वहाँ एक अद्‌भुत शान्ति का सृजन करता है। आरण्यक-पाठ के उपयुक्त स्थान है।

गंगा की धारा जहाँ घूम गयी है, वह छोटा-सा कोना अपने सब साथियों को आगे छोड़कर निकल गया है। वहाँ एक सुन्दर कुटी है, जो नीचे पहाड़ी की पीठ पर जैसे आसन जमाये बैठी है। निरंजन गंगा की धारा की ओर मुँह किये ध्यान में निमग्न है। यहाँ रहते हुए कई दिन बीत गये, आसन और दृढ़ धारणा से अपने मन को संयम में ले आने का प्रयत्न लगातार करते हुए भी शांति नहीं

लौटी। विक्षेप बराबर होता था। जब ध्यान करने का समय होता, एक बालिका की मूर्ति सामने आ खड़ी होती। वह उसे माया-आवरण कहकर तिरस्कार करता, परन्तु वह छाया जैसे ठोस हो जाती। अरुणोदय की रक्त किरणें आँखों में घुसने लगती थीं। घबराकर तपस्वी ने ध्यान छोड़ दिया। देखा कि पगडण्डी से एक रमणी उस कुटीर के पास आ रही है। तपस्वी को क्रोध आया। उसने समझा कि देवताओं को तप में प्रत्यूह डालने का क्यों अभ्यास होता है, क्यों वे मनुष्यों के समान ही द्वेष आदि दुर्बलताओं से पीड़ित हैं।

रमणी चुपचाप समीप चली आयी। साष्टांग प्रणाम किया। तपस्वी चुप था, वह क्रोध से भरा हुआ था, परन्तु न जाने क्यों उसे तिरस्कार करने का साहस न हुआ। उसने कहा, 'उठो, तुम यहाँ क्यों आयीं?'

किशोरी ने कहा, 'महाराज, अपना स्वार्थ ले आया, मैंने आज तक सन्तान का मुँह नहीं देखा।'

निरंजन ने गंभीर स्वर में पूछा, 'अभी तो तुम्हारी अवस्था अठारह-उन्नीस से अधिक नहीं, फिर इतनी दुश्चिन्ता क्यों?'

किशोरी के मुख पर लाज की लाली थी, वह अपनी वयस की नाप-तौल से संकुचित हो रही थी। परन्तु तपस्वी का विचलित हृदय उसे क्रीड़ा समझने लगा। वह जैसे लड़खड़ाने लगा। सहसा सम्भलकर बोला, 'अच्छा, तुमने यहाँ आकर ठीक नहीं किया। जाओ, मेरे मठ में आना-अभी दो दिन ठहरकर। यह एकान्त योगियों की स्थली है, यहाँ से चली जाओ।' तपस्वी अपने भीतर किसी से लड़ रहा था।

किशोरी ने अपनी स्वाभाविक तृष्णा भरी आँखों से एक बार उस सूखे यौवन का तीव्र आलोक देखाय वह बराबर देख न सकी, छलछलायी आँखें नीची हो गयीं। उन्मत्त के समान निरंजन ने कहा, 'बस जाओ!'

किशोरी लौटी और अपने नौकर के साथ, जो थोड़ी ही दूरी पर खड़ा था, 'हर की पैड़ी' की ओर चल पड़ी। चिंता की अभिलाषा से उसका हृदय नीचे-ऊपर हो रहा था।

रात एक पहर गयी होगी, 'हर की पैड़ी' के पास ही एक घर की खुली खिड़की के पास किशोरी बैठी थी। श्रीचन्द्र को यहाँ आते ही तार मिला कि तुरन्त चले आओ। व्यवसाय-वाणिज्य के काम अटपट होते हैं, वह चला गया। किशोरी नौकर के साथ रह गयी। नौकर विश्वासी और पुराना था। श्रीचन्द्र की लाडली स्त्री किशोरी मनस्विनी थी ही।

ठंड का झोंका खिड़की से आ रहा था, अब किशोरी के मन में बड़ी उलझन थी–कभी वह सोचती, मैं क्यों यहाँ रह गयी, क्यों न उन्हीं के संग चली गयी। फिर मन में आता, रुपये–पैसे तो बहुत हैं, जब उन्हें भोगने वाला ही कोई नहीं, फिर उसके लिए उद्योग न करना भी मूर्खता है। ज्योतिषी ने भी कह दिया है, संतान बड़े उद्योग से होगी। फिर मैंने क्या बुरा किया?

अब शीत की प्रबलता हो चली थी, उसने चाहा, खिड़की का पल्ला बन्द कर ले। सहसा किसी के रोने की ध्वनि सुनायी दी। किशोरी को उत्कंठा हुई, परन्तु क्या करे, 'बलदाऊ' बाजार गया था। चुप रही। थोड़े ही समय में बलदाऊ आता दिखाई पड़ा।

आते ही उसने कहा, 'बहुरानी कोई गरीब स्त्री रो रही है। यहीं नीचे पड़ी है।'

किशोरी ही दुःखी थी। संवेदना से प्रेरित होकर उसने कहा, 'उसे लिवाते क्यों नहीं लाये, कुछ उसे दे आते।'

बलदाऊ सुनते ही फिर नीचे उतर गया। उसे बुला लाया। वह एक युवती विधवा थी। बिलख–बिलखकर रो रही थी। उसके मलिन वसन का अंचल तर हो गया था। किशोरी के आश्वासन देने पर वह सम्हली और बहुत पूछने पर उसने कथा सुना दी–विधवा का नाम रामा है, बरेली की एक ब्राह्मण–वधु है। दुराचार का लांछन लगाकर उसके देवर ने उसे यहाँ छोड़ दिया। उसके पति के नाम की कुछ भूमि थी, उस पर अधिकार जमाने के लिए उसने यह कुचक्र रचा है।

किशोरी ने उसके एक–एक अक्षर का विश्वास किया, क्योंकि वह देखती है कि परदेश में उसके पति ने उसे छोड़ दिया और स्वयं चला गया। उसने कहा, 'तुम घबराओ मत, मैं यहाँ कुछ दिन रहूँगी। मुझे एक ब्राह्मणी चाहिए ही, तुम मेरे पास रहो। मैं तुम्हें बहन के समान रखूँगी।'

रामा कुछ प्रसन्न हुई। उसे आश्रय मिल गया। किशोरी शैया पर लेट–लेटे सोचने लगी–पुरुष बड़े निर्मोही होते हैं, देखो वाणिज्य–व्यवसाय का इतना लोभ है कि मुझे छोड़कर चले गये। अच्छा, जब तक वे स्वयं नहीं आवेंगे, मैं भी नहीं जाऊँगी। मेरा भी नाम 'किशोरी' है!–यही चिंता करते–करते किशोरी सो गयी।

दो दिन तक तपस्वी ने मन पर अधिकार जमाने की चेष्टा की, परन्तु वह असफल रहा। विद्वत्ता ने जितने तर्क जगत को मिथ्या प्रमाणित करने के लिए थे, उन्होंने उग्र रूप धारण किया। वे अब समझते थे–जगत् तो मिथ्या है ही, इसके जितने कर्म हैं, वे भी माया हैं। प्रमाता जीव भी प्रकृति है, क्योंकि वह भी अपरा

प्रकृति है। विश्व मात्र प्राकृत है, तब इसमें अलौकिक अध्यात्म कहाँ, यही खेल यदि जगत् बनाने वाले का है, तो वह मुझे खेलना ही चाहिए। वास्तव में गृहस्थ न होकर भी मैं वहीं सब तो करता हूँ जो एक संसारी करता है–वही आय–व्यय का निरीक्षण और उसका उपयुक्त व्यवहार, फिर सहज उपलब्ध सुख क्यों छोड़ दिया जाए?

त्यागपूर्ण थोथी दार्शनिकता जब किसी ज्ञानाभ्रास को स्वीकार कर लेती है, तब उसका धक्का सम्हालना मनुष्य का काम नहीं।

उसने फिर सोचा–मठधारियों, साधुओं के लिए सब पथ खुले होते हैं। यद्यपि प्राचीन आर्यों की धर्मनीति में इसीलिए कुटीचर और एकान्त वासियों का ही अनुमोदन है, प्राचीन संघबद्ध होकर बौद्धधर्म ने जो यह अपना कूड़ा छोड़ दिया है, उसे भारत के धार्मिक सम्प्रदाय अभी फेंक नहीं सकते। तो फिर चले संसार अपनी गति से।

देवनिरंजन अपने विशाल मठ में लौट आया और महन्ती नये ढंग से देखी जाने लगी। भक्तों की पूजा और चढ़ाव का प्रबन्ध होने लगा। गद्दी और तकिये की देखभाल चली दो ही दिन में मठ का रूप बदल गया।

एक चाँदनी रात थी। गंगा के तट पर अखाड़े से मिला हुआ उपवन था। विशाल वृक्ष की छाया में चाँदनी उपवन की भूमि पर अनेक चित्र बना रही थी। बसंत–समीर ने कुछ रंग बदला था। निरंजन मन के उद्वेग से वहीं टहल रहा था। किशोरी आयी। निरंजन चौंक उठा। हृदय में रक्त दौड़ने लगा।

किशोरी ने हाथ जोड़कर कहा, 'महाराज, मेरे ऊपर दया न होगी?'

निरंजन ने कहा, 'किशोरी, तुम मुझको पहचानती हो?'

किशोरी ने उस धुँधले प्रकाश में पहचानने की चेष्टा की, परन्तु वह असफल होकर चुप रही।

निरंजन ने फिर कहना आरम्भ किया, 'झेलम के तट पर रंजन और किशोरी नाम के दो बालक और बालिका खेलते थे। उनमें बड़ा स्नेह था। रंजन अपने पिता के साथ हरिद्वार जाने लगा, परन्तु उसने कहा था कि किशोरी मैं तेरे लिए गुड़िया ले आऊँगाय परन्तु वह झूठा बालक अपनी बाल–संगिनी के पास फिर न लौटा। क्या तुम वही किशोरी हो?'

उसका बाल–सहचर इतना बड़ा महात्मा!–किशोरी की समस्त धमनियों में हलचल मच गयी। वह प्रसन्नता से बोल उठी, 'और क्या तुम वही रंजन हो?'

लड़खड़ाते हुए निरंजन ने उसका हाथ पकड़कर कहा, 'हाँ किशोरी, मैं वहीं रंजन हूँ। तुमको ही पाने के लिए आज तक तपस्या करता रहा, यह संचित तप तुम्हारे चरणों में निछावर है। संतान, ऐश्वर्य और उन्नति देने की मुझमें जो शक्ति है, वह सब तुम्हारी है।'

अतीत की स्मृति, वर्तमान की कामनाएँ किशोरी को भुलावा देने लगीं। उसने ब्रह्मचारी के चौड़े वक्ष पर अपना सिर टेक दिया।

कई महीने बीत गये। बलदाऊ ने स्वामी को पत्र लिखा कि आप आइये, बिना आपके आये बहूरानी नहीं जातीं और मैं अब यहाँ एक घड़ी भी रहना उचित नहीं समझता।

श्रीचन्द्र आये। हठीली किशोरी ने बड़ा रूप दिखलाया। फिर मान-मनाव हुआ। देवनिरंजन को समझा-बुझाकर किशोरी फिर आने की प्रतिज्ञा करके पति के साथ चली गयी। किशोरी का मनोरथ पूर्ण हुआ।

रामा वहाँ रह गयी। हरिद्वार जैसे पुण्यतीर्थ में क्या विधवा को स्थान और आश्रय की कमी थी!

पन्द्रह बरस बाद काशी में ग्रहण था। रात में घाटों पर नहाने का बड़ा सुन्दर प्रबन्ध था। चन्द्रग्रहण हो गया। घाट पर बड़ी भीड़ थी। आकाश में एक गहरी नीलिमा फैली नक्षत्रों में चौगुनी चमक थी, परन्तु खगोल में कुछ प्रसन्नता न थी। देखते-देखते एक अच्छे चित्र के समान पूर्णमासी का चन्द्रमा आकाश पट पर से धो दिया गया। धार्मिक जनता में कोलाहल मच गया। लोग नहाने, गिरने तथा भूलने भी लगे। कितनों का साथ छूट गया।

विधवा रामा अब सधवा होकर अपनी कन्या तारा के साथ भण्डारीजी के साथ आयी थी। भीड़ के एक ही धक्के में तारा अपनी माता तथा साथियों से अलग हो गयी। यूथ से बिछड़ी हुई हिरनी के समान बड़ी-बड़ी आँखों से वह इधर-उधर देख रही थी। कलेजा धक-धक करता था, आँखें छलछला रही थीं और उसकी पुकार उस महा कोलाहल में विलीन हुई जाती थी। तारा अधीर हो गयी थी। उसने पास आकर पूछा, 'बेटी, तुम किसको खोज रही हो?'

तारा का गला रुँध गया, वह उत्तर न दे सकी।

तारा सुन्दरी थी, होनदार सौंदर्य उसके प्रत्येक अंग में छिपा था। वह युवती हो चली थी, परन्तु अनाघ्रात कुसुम के रूप में पंखुरियाँ विकसी न थीं। अधेड़ स्त्री ने स्नेह से उसे छाती से लगा लिया और कहा, 'मैं अभी तेरी माँ के पास पहुँचा देती हूँ, वह तो मेरी बहन है, मैं तुझे भली-भाँति जानती हूँ। तू घबड़ा मत।'

हिन्दू स्कूल का एक स्वयंसेवक पास आ गया, उसने पूछा, 'क्या तुम भूल गयी हो?'

तारा रो रही थी। अधेड़ स्त्री ने कहा, 'मैं जानती हूँ, यहीं इसकी माँ है, वह भी खोजती थी। मैं लिवा जाती हूँ।'

स्वयंसेवक मंगल चुप रहा। युवक छात्र एक युवती बालिका के लिए हठ न कर सका। वह दूसरी ओर चला गया और तारा उसी स्त्री के साथ चली।

(2)

लखनऊ संयुक्तप्रान्त में एक निराला नगर है। बिजली के प्रभा से आलोकित सन्ध्या 'शाम-अवध' की सम्पूर्ण प्रतिभा है। पण्य में क्रय-विक्रय चल रहा है, नीचे और ऊपर से सुन्दरियों का कटाक्ष। चमकीली वस्तुओं का झलमला, फूलों के हार का सौरभ और रसिकों के वसन में लगे हुए गन्ध से खेलता हुआ मुक्त पवन-यह सब मिलकर एक उत्तेजित करने वाला मादक वायुमण्डल बन रहा है।

मंगलदेव अपने साथी खिलाड़ियों के साथ मैच खेलने लखनऊ आया था। उसका स्कूल आज विजयी हुआ है। कल वे लोग बनारस लौटेंगे। आज सब चौक में अपना विजयोल्लास प्रकट करने के लिए और उपयोगी वस्तु क्रय करने के लिए एकत्र हुए हैं।

छात्र सभी तरह के होते हैं। उसके विनोद भी अपने-अपने ढंग के, परन्तु मंगल इसमें निराला था। उसका सहज सुन्दर अंग ब्रह्मचर्य और यौवन से प्रफुल्ल था। निर्मल मन का आलोक उसके मुख-मण्डल पर तेज बना रहा था। वह अपने एक साथी को ढूँढ़ने के लिए चला आयाय परन्तु वीरेन्द्र ने उसे पीछे से पुकारा। वह लौट पड़ा।

वीरेन्द्र-'मंगल, आज तुमको मेरी एक बात माननी होगी!'

मंगल-'क्या बात है, पहले सुनूँ भी।'

वीरेन्द्र-'नहीं, पहले तुम स्वीकार करो।'

मंगल-'यह नहीं हो सकताय क्योंकि फिर उसे न करने से मुझे कष्ट होगा।'

वीरेन्द्र-'बहुत बुरी बात है, परन्तु मेरी मित्रता के नाते तुम्हें करना ही होगा।'

मंगल-'यही तो ठीक नहीं।'

वीरेन्द्र-'अवश्य ठीक नहीं, तो भी तुम्हें मानना होगा।'

मंगल-'वीरेन्द्र, ऐसा अनुरोध न करो।'

वीरेन्द्र-'यह मेरा हठ है और तुम जानते हो कि मेरा कोई भी विनोद तुम्हारे बिना असम्भव है, निस्सार है। देखो, तुमसे स्पष्ट करता हूँ। उधर देखो-वह एक बाल वेश्या है, मैं उसके पास जाकर एक बार केवल नयनाभिराम रूप देखना चाहता हूँ। इससे विशेष कुछ नहीं।'

मंगल-'यह कैसा कौतूहल! छि:!'

वीरेन्द्र-'तुम्हें मेरी सौगन्धय पाँच मिनट से अधिक नहीं लगेगा, हम लौट आवेंगे, चलो, तुम्हें अवश्य चलना होगा। मंगल, क्या तुम जानते हो कि मैं तुम्हें क्यों ले चल रहा हूँ?'

मंगल-'क्यों?'

वीरेन्द्र-'जिससे तुम्हारे भय से मैं विचलित न हो सकूँ! मैं उसे देखूँगा अवश्यय परन्तु आगे डर से बचाने वाला साथ रहना चाहिए। मित्र, तुमको मेरी रक्षा के लिए साथ चलना ही चाहिए।'

मंगल ने कुछ सोचकर कहा, 'चलो।' परन्तु क्रोध से उनकी आँखें लाल हो गयी थीं।

वह वीरेन्द्र के साथ चल पड़ा। सीड़ियों से ऊपर कमरे में दोनों जा पहुँचे। एक षोडशी युवती सजे हुए कमरे में बैठी थी। पहाड़ी रूखा सौंदर्य उसके गेहुँए रंग में ओत-प्रोत है। सब भरे हुए अंगों में रक्त का वेगवान संचार कहता है कि इसका तारुण्य इससे कभी न छँटेगा। बीच में मिली हुई भौंहों के नीचे न जाने कितना अंधकार खेल रहा था! सहज नुकीली नाक उसकी आकृति की स्वतन्त्रता सत्ता बनाये थी। नीचे सिर किये हुए उसने जब इन लोगों को देखा, तब उस समय उसकी बड़ी-बड़ी आँखों के कोन और भी खिंचे हुए जान पड़े। घने काले बालों के गुच्छे दोनों कानों के पास के कन्धों पर लटक रहे थे। बाएँ कपोल पर एक तिल उसके सरल सौन्दर्य को बाँका बनाने के लिए पर्याप्त था। शिक्षा के अनुसार उसने सलाम किया, परन्तु यह खुल गया कि अन्यमनस्क रहना उसकी स्वाभाविकता थी।

मंदलदेव ने देखा कि यह तो वेश्या का रूप नहीं है।

वीरेन्द्र ने पूछा, 'आपका नाम?'

उसके 'गुलेनार' कहने में कोई बनावट न थी।

सहसा मंगल चौंक उठा, उसने पूछा, 'क्या हमने तुमको कहीं और भी देखा है?'

'यह अनहोनी बात नहीं है।'

'कई महीने हुए, काशी में ग्रहण की रात को जब मैं स्वयंसेवक का काम कर रहा था, मुझे स्मरण होता है, जैसे तुम्हें देखा हो, परन्तु तुम तो मुसलमानी हो।'

'हो सकता है कि आपने मुझे देखा हो, परन्तु उस बात को जाने दीजिये, अभी अम्मा आ रही हैं।'

मंगलदेव कुछ कहना ही चाहता था कि 'अम्मा' आ गयी। वह विलासजीर्ण दुष्ट मुखाकृति देखते ही घृणा होती थी।

अम्मा ने कहा, 'आइये बाबू साहब, कहिये क्या हुक्म है

'कुछ नहीं। गुलेनार को देखने के लिए चला आया था।' कहकर वीरेन्द्र मुस्करा दिया।

'आपकी लौंडी है, अभी तो तालीम भी अच्छी तरह नहीं लेती, क्या कहूँ बाबू साहब, बड़ी बोदी है। इसकी किसी बात पर ध्यान न दीजियेगा।' अम्मा ने कहा।

'नहीं-नहीं, इसकी चिंता न कीजिये। हम लोग तो परदेशी हैं। यहाँ घूम रहे थे, तब इनकी मनमोहिनी छवि दिखाई पड़ी, चले आये।' वीरेन्द्र ने कहा।

अम्मा ने भीतर की ओर पुकारते हुए कहा, 'अरे इलायची ले आ, क्या कर रहा है?'

'अभी आया।' कहता हुआ एक मुसलमान युवक चाँदी की थाली में पान-इलायची ले आया। वीरेन्द्र ने इलायची ले ली और उसमें दो रुपये रख दिये। फिर मंगलदेव की ओर देखकर कहा, 'चलो भाई, गाड़ी का भी समय देखना होगा, फिर कभी आया जायेगा। प्रतिज्ञा भी पाँच मिनट की है।'

'अभी बैठिये भी, क्या आये और क्या चले।' फिर सक्रोध गुलेनार को देखती हुई अम्मा कहने लगी, 'क्या कोई बैठे और क्यों आये! तुम्हें तो कुछ बोलना ही नहीं है और न कुछ हँसी-खुशी की बातें ही करनी हैं, कोई क्यों ठहरे अम्मा की त्योरियाँ बहुत ही चढ़ गयी थीं। गुलेनार सिर झुकाये चुप थी।

मंगलदेव जो अब तक चुप था, बोला, 'मालूम होता है, आप दोनों में बनती बहुत कम है, इसका क्या कारण है?'

गुलेनार कुछ बोलना ही चाहती थी कि अम्मा बीच में बोल उठी, 'अपने-अपने भाग होते हैं बाबू साहब, एक ही बेटी, इतने दुलार से पाला-पोसा, फिर भी न जाने क्यों रूठी रहती है।' कहती हुई बुड्ढी के दो आँसू भी निकल पड़े। गुलेनार की वाक्शक्ति जैसे बन्दी होकर तड़फड़ा रही थी। मंगलदेव ने

कुछ-कुछ समझा। कुछ उसे सन्देह हुआ। परन्तु वह सम्भलकर बोला, 'सब आप ही ठीक हो जाएगा, अभी अल्हड़पन है।'

'अच्छा फिर आऊँगा।'

वीरेन्द्र और मंगलदेव उठे, सीढ़ी की ओर चले। गुलेनार ने झुककर सलाम किया, परन्तु उसकी आँखें पलकों का पल्ला पसारकर करुणा की भीख माँग रही थीं। मंगलदेव ने-चरित्रवान मंगलदेव ने-जाने क्यो एक रहस्यपूर्ण संकेत किया। गुलेनार हँस पड़ी, दोनों नीचे उतर गये।

'मंगल! तुमने तो बड़े लम्बे हाथ-पैर निकाले-कहाँ तो आते ही न थे, कहाँ ये हरकतें!' वीरेन्द्र ने कहा।

'वीरेन्द्र! तुम मुझे जानते हो, परन्तु मैं सचमुच यहाँ आकर फँस गया। यही तो आश्चर्य की बात है।'

'आश्चर्य काहे का, यही तो काजल की कोठरी है।'

'हुआ करे, चलो ब्यालू करके सो रहें। सवेरे की ट्रेन पकड़नी होगी।'

'नहीं वीरेन्द्र! मैंने तो कैर्निंग कॉलेज में नाम लिखा लेने का निश्चय-सा कर लिया है, कल मैं नहीं चल सकता।'' मंगल ने गंभीरता से कहा।

'वीरेन्द्र जैसे आश्चर्यचकित हो गया। उसने कहा, 'मंगल, तुम्हारा इसमें कोई गूढ़ उद्देश्य होगा। मुझे तुम्हारे ऊपर इतना विश्वास है कि मैं कभी स्वप्न में भी नहीं सोच सकता कि तुम्हारा पद-स्खलन होगा, परन्तु फिर भी मैं कम्पित हो रहा हूँ।'

सिर नीचा किये मंगल ने कहा, 'और मैं तुम्हारे विश्वास की परीक्षा करूँगा। तुम तो बचकर निकल आयेय परन्तु गुलेनार को बचाना होगा। वीरेन्द्र मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि यही वह बालिका है, जिसके सम्बन्ध में मैं ग्रहण के दिनों में तुमसे कहता था कि मेरे देखते ही एक बालिका कुटनी के चंगुल में फँस गयी और मैं कुछ न कर सका।'

'ऐसी बहुत सी अभागिन इस देश में हैं। फिर कहाँ-कहाँ तुम देखोगे?'

'जहाँ-जहाँ देख सकूँगा।'

'सावधान!'

मंगल चुप रहा।

वीरेन्द्र जानता था कि मंगल बड़ा हठी है, यदि इस समय मैं इस घटना को बहुत प्रधानता न दूँ, तो सम्भव है कि वह इस कार्य से विरक्त हो जाये,

अन्यथा मंगल अवश्य वही करेगा, जिससे वह रोका जाए, अतएव वह चुप रहा। सामने ताँगा दिखाई दिया। उस पर दोनों बैठ गये।

दूसरे दिन सबको गाड़ी पर बैठाकर अपने एक आवश्यक कार्य का बहाना कर मंगल स्वयं लखनऊ रह गया। कैनिंग कॉलेज के छात्रों को यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि मंगल वहीं पढ़ेगा। उसके लिए स्थान का भी प्रबन्ध हो गया। मंगल वहीं रहने लगा।

दो दिन बाद मंगल अमीनाबाद की ओर गया। वह पार्क की हरियाली में घूम रहा था। उसे अम्मा दिखाई पड़ी और वही पहले बोली, 'बाबू साहब, आप तो फिर नहीं आये।'

मंगल दुविधा में पड़ गया। उसकी इच्छा हुई कि कुछ उत्तर न दे। फिर सोचा-अरे मंगल, तू तो इसीलिए यहाँ रह गया है! उसने कहाँ, 'हाँ-हाँ, कुछ काम में फँस गया था, आज मैं अवश्य आता, पर क्या करूँ मेरे एक मित्र साथ में हैं। वह मेरा आना-जाना नहीं जानते। यदि वे चले गये, तो आज ही आऊँगा, नहीं तो फिर किसी दिन।'

'नहीं-नहीं, आपको गुलेनार की कसम, चलिए वह तो उसी दिन से बड़ी उदास रहती है।'

'आप मेरे साथ चलिये, फिर जब आइयेगा, तो उनसे कह दीजियेगा-मैं तो तुम्हीं को ढूँढ़ता रहा, इसलिए इतनी देर हुई और तब तक तो दो बातें करके चले आएँगे।'

'कर्तव्यनिष्ठ मंगल ने विचार किया-ठीक तो है। उसने कहा, 'अच्छी बात है।'

मंगल गुलेनार की अम्मा के पीछे-पीछे चला।

गुलेनार बैठी हुई पान लगा रही थी। मंगलदेव को देखते ही मुस्कराई, जब उसके पीछे अम्मा की मूर्ति दिखलाई पड़ी, वह जैसे भयभीत हो गयी। अम्मी ने कहा, 'बाबू साहब बहुत कहने-सुनने से आये हैं, इनसे बातें करो। मैं मीर साहब से मिलकर आती हूँ, देखूँ, क्यों बुलाया है?'

गुलेनार ने कहा, 'कब तक आओगी?'

'आधे घण्टे में।' कहती अम्मा सीढ़ियाँ उतरने लगी।

गुलेनार ने सिर नीचे किये हुए पूछा, 'आपके लिए पान बाजार से मँगवाना होगा न?'

मंगल ने कहा, 'उसकी आवश्यकता नहीं, मैं तो केवल अपना कौतूहल मिटाने आया हूँ-क्या सचमुच तुम वही हो, जिसे मैंने ग्रहण की रात काशी में देखा था?'

'जब आपको केवल पूछना ही है तो मैं क्यो बताऊँ जब आप जान जायेंगे कि मैं वही हूँ, तो फिर आपको आने की आवश्यकता ही न रह जायेगी।'

मंगल ने सोचा, संसार कितनी शीघ्रता से मनुष्य को चतुर बना देता है। 'अब तो पूछने का काम ही नहीं है।'

'क्यों?'

'आवश्यकता ने सब परदा खोल दिया, तुम मुसलमानी कदापि नहीं हो।'

'परन्तु मैं मुसलमानी हूँ।'

'हाँ, यही तो एक भयानक बात है।'

'और यदि न होऊँ'

'तब की बात तो दूसरी है।'

'अच्छा तो मैं वहीं हूँ, जिसका आपको भ्रम है।'

'तुम किस प्रकार यहाँ आ गयी हो'

'वह बड़ी कथा है।' यह कहकर गुलेनार ने लम्बी साँस ली, उसकी आँखें आँसू से भर गयीं।

'क्या मैं सुन सकता हूँ'

'क्यों नहीं, पर सुनकर क्या कीजियेगा। अब इतना ही समझ लीजिये कि मैं एक मुसलमानी वेश्या हूँ।'

'नहीं गुलेनार, तुम्हारा नाम क्या है, सच-सच बताओ।'

'मेरा नाम तारा है। मैं हरिद्वार की रहने वाली हूँ। अपने पिता के साथ काशी में ग्रहण नहाने गयी थी। बड़ी कठिनता से मेरा विवाह ठीक हो गया था। काशी से लौटते हुए मैं एक कुल की स्वामिनी बनतीय परन्तु दुर्भाग्य...!' उसकी भरी आँखों से आँसू गिरने लगे।

'धीरज धरो तारा! अच्छा यह तो बताओ, यहाँ कैसे कटती है?'

'मेरा भगवान् जानता है कि कैसे कटती है! दुष्टों के चंगुल में पड़कर मेरा आचार-व्यवहार तो नष्ट हो चुका, केवल सर्वनाश होना बाकी है। उसमें कारण है अम्मा का लोभ और मेरा कुछ आने वालों से ऐसा व्यवहार भी होता है कि अभी वह जितना रुपया चाहती हैं, नहीं मिलता। बस इसी प्रकार बची जा रही हूँ, परन्तु कितने दिन!' गुलेनार सिसकने लगी।

'मंगल ने कहा, 'तारा, तुम यहाँ से क्यों नहीं निकल भागती?'

गुलेनार ने पूछा, 'आप ही बताइये, निकलकर कहाँ जाऊँ और क्या करूँ

'अपने माता-पिता के पास। मैं पहुँचा दूँगा, इतना मेरा काम है।'

बड़ी भोली दृष्टि से देखते हुए गुलेनार ने कहा, 'आप जहाँ कहें मैं चल सकती हूँ।'

'अच्छा पहले यह तो बताओ कि कैसे तुम काशी से यहाँ पहुँच गयी हो?'

'किसी दूसरे दिन सुनाऊँगी, अम्मा आती होगी।'

'अच्छा तो आज मैं जाता हूँ।'

'जाइये, पर इस दुखिया का ध्यान रखिये। हाँ, अपना पता तो बताइए, मुझे कोई अवसर मिला, तो मैं कैसे सूचित करूँगी?'

मंगल ने एक चिट पर पता लिखकर दे दिया और कहा, 'मैं भी प्रबन्ध करता रहूँगा। जब अवसर मिले, लिखना, पर एक दिन पहले।'

अम्मा के पैरों का शब्द सीढ़ियों पर सुनाई पड़ा और मंगल उठ खड़ा हुआ। उसके आते ही उसने पाँच रुपये हाथ पर धर दिये।

अम्मा ने कहा, 'बाबू साहब, चले कहाँ! बैठिये भी।'

'नहीं, फिर किसी दिन आऊँगा, तुम्हारी बेगम साहेबा तो कुछ बोलती ही नहीं, इनके पास बैठकर क्या करूँगा!'

मंगल चला गया। अम्मा क्रोध से दाँत पीसती हुई गुलेनार को घूरने लगी।

दूसरे-तीसरे दिन मंगल गुलेनार के यहाँ जाने लगा, परन्तु वह बहुत सावधान रहता। एक दुश्चरित्र युवक उन्हीं दिनों गुलेनार के यहाँ आता। कभी-कभी मंगल की उससे मुठभेड़ हो जाती, परन्तु मंगल ऐसे कैड़े से बात करता कि वह मान गया। अम्मा ने अपने स्वार्थ साधन के लिए इन दोनों में प्रतिद्वन्द्विता चला दी। युवक शरीर से हृष्ट-पुष्ट कसरती था, उसके ऊपर के होंठ मसूड़ों के ऊपर ही रह गये थे। दाँतों की श्रेणी सदैव खुली रहती, उसकी लम्बी नाक और लाल आँखें बड़ी डरावनी और रोबीली थीं, परन्तु मंगल की मुस्कराहट पर वह भौचक्का-सा रह जाता और अपने व्यवहार से मंगल को मित्र बनाये रखने की चेष्टा किया करता। गुलेनार अम्मा को यह दिखलाती कि वह मंगल से बहुत बोलना नहीं चाहती।

एक दिन दोनों गुलेनार के पास बैठे थे। युवक ने, जो अभी अपने एक मित्र के साथ दूसरी वेश्या के यहाँ से आया था-अपना डींग हाँकते हुए मित्र के लिए कुछ अपशब्द कहे, फिर उसने मंगल से कहा, 'वह न जाने क्यों उस चुड़ैल

के यहाँ जाता है और क्यों कुरूप स्त्रियाँ वेश्या बनती हैं, जब उन्हें मालूम है कि उन्हें तो रूप के बाजार में बैठना है।' फिर अपनी रसिकता दिखाते हुए हँसने लगा।

'परन्तु मैं तो आज तक यही नहीं समझता कि सुन्दरी स्त्रियाँ क्यों वेश्या बनें! संसार का सबसे सुन्दर जीव क्यों सबसे बुरा काम करे कहकर मंगल ने सोचा कि यह स्कूल की विवाद-सभा नहीं है। वह अपनी मूर्खता पर चुप हो गया। युवक हँस पड़ा। अम्मा अपनी जीविका को बहुत बुरा सुनकर तन गयी। गुलेनार सिर नीचा किये हँस रही थी।' अम्मा ने कहा-

'फिर ऐसी जगह बाबू आते ही क्यों हैं?'

मंगल ने उत्तेजित होकर कहा, 'ठीक है, यह मेरी मूर्खता है

युवक अम्मा को लेकर बातें करने लगा, वह प्रसन्न हुआ कि प्रतिद्वन्द्वी अपनी ही ठोकर से गिरा, धक्का देने की आवश्यकता ही न पड़ी। मंगल की ओर देखकर धीरे से गुलेनार ने कहा, 'अच्छा हुआ, पर जल्द...!'

मंगल उठा और सीढ़ियाँ उतर गया।

शाह मीना की समाधि पर गायकों की भीड़ है। सावन का हरियाली क्षेत्र पर और नील मेघमाला आकाश के अंचल में फैल रही है। पवन के आन्दोलन से बिजली के आलोक में बादलों का हटना-बढ़ना गगन समुद्र में तरंगों का सृजन कर रहा है। कभी फूही पड़ जाती है, समीर का झोंका गायकों को उन्मत्त बना देता है। उनकी इकहरी तानें तिरही हो जाती हैं। सुनने वाले झूमने लगते हैं। वेश्याओं का दर्शकों के लिए आकर्षक समारोह है।

एक घण्टा रात बीत गयी है।

अब रसिकों के समाज में हलचल मची, बूँदें लगातार पड़ने लगीं। लोग तितर-बितर होने लगे। गुलेनार युवक और अम्मा के साथ आती थीं, वह युवक से बातें करने लगी। अम्मा भीड़ में अलग हो गयी, दोनों और आगे बढ़ गये। सहसा गुलेनार ने कहा, 'आह! मेरे पाँव में चटक हो गयी, अब मैं एक पल चल नहीं सकती, डोली ले आओ।' वह बैठ गयी। युवक डोली लेने चला।

गुलेनार ने इधर-उधर देखा, तीन तालियाँ बजीं। मंगल आ गया, उसने कहा, 'ताँगा ठीक है।'

गुलेनार ने कहा, 'किधर?'

'चलो!' दोनों हाथ पकड़कर बढ़े। चक्कर देखकर दोनों बाहर आ गये, ताँगे पर बैठे और वह ताँगेवाला कौवालों की तान 'जिस-जिस को दिया चाहें' दुहराता

हुआ चाबुक लगाता घोड़े को उड़ा ले चला। चारबाग स्टेशन पर देहरादून जाने वाली गाड़ी खड़ी थी। ताँगे वाले को पुरस्कार देकर मंगल सीधे गाड़ी में जाकर बैठ गया। सीटी बजी, सिगनल हुआ, गाड़ी खुल गयी।

'तारा, थोड़ा भी विलम्ब से गाड़ी न मिलती।'

'ठीक समय से पाती आ गया। हाँ, यह तो कहो, मेरा पत्र कब मिला?'

'आज नौ बजे। मैं समान ठीक करके संध्या की बाट देख रहा था। टिकट ले लिये थे और ठीक समय पर तुमसे भेंट हुई।'

'कोई पूछे तो क्या कहा जायेगा?'

'अपने वेश्यापन के दो-तीन आभूषण उतार दो और किसी के पूछने पर कहना-अपने पिता के पास जा रही हूँ, ठीक पता बताना।'

तारा ने फुरती से वैसा ही किया। वह एक साधारण गृहस्थ बालिका बन गयी।

वहाँ पूरा एकान्त था, दूसरे यात्री न थे। देहरादून एक्सप्रेस वेग से जा रही थी।

मंगल ने कहा, 'तुम्हें सूझी अच्छी। उस तुम्हारी दुष्ट अम्मा को यही विश्वास होगा कि कोई दूसरा ही ले गया। हमारे पास तक तो उसका सन्देह भी न पहुँचेगा।'

'भगवान् की दया से नरक से छुटकारा मिला। आह कैसी नीच कल्पनाओं से हृदय भर जाता था-सन्ध्या में बैठकर मनुष्य-समाज की अशुभ कामना करना, उस नरक के पथ की ओर चलने का संकेत बताना, फिर उसी से अपनी जीविका!'

'तारा, फिर भी तुमने धर्म की रक्षा की। आश्चर्य!'

'यही कभी-कभी मैं भी विचारती हूँ कि संसार दूर से, नगर, जनपद सौध-श्रेणी, राजमार्ग और अट्टालिकाओं से जितना शोभन दिखाई पड़ता है, वैसा ही सरल और सुन्दर भीतर से नहीं है। जिस दिन मैं अपने पिता से अलग हुई, ऐसे-ऐसे निर्लज्ज और नीच मनोवृत्तियों के मनुष्यों से सामना हुआ, जिन्हें पशु भी कहना उन्हें महिमान्वित करना है!'

'हाँ-हाँ, यह तो कहो, तुम काशी से लखनऊ कैसे आ गयीं?'

'तुम्हारे सामने जिस दुष्टा ने मुझे फँसाया, वह स्त्रियों का व्यापार करने वाली एक संस्था की कुटनी थी। मुझे ले जाकर उन सबों ने एक घर में रखा, जिसमें मेरी ही जैसी कई अभागिनें थीं, परन्तु उनमें सब मेरी जैसी रोने वाली

न थीं। बहुत-सी स्वेच्छा से आयी थीं और कितनी ही कलंक लगने पर अपने घर वालों से ही मेले में छोड़ दी गई थीं! मैं अलग बैठी रोती थी। उन्हीं में से कई मुझे हँसाने का उद्योग करतीं, कोई समझाती, कोई झिड़कियाँ सुनाती और कोई मेरी मनोवृत्ति के कारण मुझे बनाती! मैं चुप होकर सुना करती, परन्तु कोई पथ निकलने का न था। सब प्रबन्ध ठीक हो गया था, हम लोग पंजाब भेजी जाने वाली थीं। रेल पर बैठने का समय हुआ, मैं सिसक रही थी। स्टेशन के विश्रामगृह में एक भीड़-सी लग रही थी, परन्तु मुझे कोई न पूछता था। यही दुष्टा अम्मा वहाँ आई और बड़े दुलार से बोली-चल बेटी, मैं तुझे तेरी माँ के पास पहुँचा दूँगी। मैंने उन सबों को ठीक कर लिया है। मैं प्रसन्न हो गयी। मैं क्या जानती थी कि चूल्हे से निकलकर भाड़ में जाऊँगी। बात भी कुछ ऐसी थी। मुझे उपद्रव मचाते देखकर उन लोगों ने अम्मा से रुपया लेकर मुझे उसके साथ कर दिया, मैं लखनऊ पहुँची।'

'हाँ-हाँ, ठीक है, मैंने सुना है पंजाब में स्त्रियों की कमी है, इसीलिए और प्रान्तों से स्त्रियाँ वहाँ भेजी जाती हैं, जो अच्छे दामों पर बिकती हैं।' क्या तुम भी उन्हीं के चंगुल में...

'हाँ, दुर्भाग्य से!'

स्टेशन पर गाड़ी रुक गयी। रजनी की गहरी नीलिमा के नभ में तारे चमक रहे थे। तारा उन्हें खिड़की से देखने लगी। इतने में उस गाड़ी में एक पुरुष यात्री ने प्रवेश किया। तारा घूँघट निकालकर बैठ गयी और वह पुरुष मुँह फेरकर सो गया है, परन्तु अभी जगे रहने की सम्भावना थी। बातें आरम्भ न हुईं। कुछ देर तक दोनों चुपचाप थे। फिर झपकी आने लगी। तारा ऊँघने लगी। मंगल भी झपकी लेने लगा। गंभीर रजनी के अंचल से उस चलती हुई गाड़ी पर पंखा चल रहा था। आमने-सामने बैठे हुए मंगल और तारा निद्रावश होकर झूम रहे थे। मंगल का सिर टकराया। उसकी आँखें खुली। तारा का घूँघट उलट गया था। देखा, तो गले का कुछ अंश, कपोल, पाली और निद्रानिमीलित पद्मापलाशलोचन, जिस पर भौंहों की काली सेना का पहरा था! वह न जाने क्यों उसे देखने लगा। सहसा गाड़ी रुकी और धक्का लगा! तारा मंगलदेव के अंक में आ गयी। मंगल ने उसे सम्हाल लिया। वह आँखें खोलती हुई मुस्कुराई और फिर सहारे से टिककर सोने लगी। यात्री जो अभी दूसरे स्टेशन पर चढ़ा था, सोते-सोते वेग से उठ पड़ा और सिर खिड़की से बाहर निकालकर वमन करने लगा। मंगल स्वयंसेवक था। उसने जाकर उसे पकड़ा और तारा से कहा, 'लोटे में पानी होगा, दो मुझे!'

तारा ने जल दिया, मंगल ने यात्री का मुँह धुलाया। वह आँखों को जल से ठंडक पहुँचाते हुए मंगल के प्रति कृतिज्ञता प्रकट करना ही चाहता था कि तारा और उसकी आँखें मिल गयीं। तारा पैर पकड़कर रोने लगी। यात्री ने निर्दयता से झिटकार दिया। मंगल अवाक् था।

'बाबू जी, मेरा क्या अपराध है मैं तो आप लोगों को खोज रही थी।'

'अभागिनी! खोज रही थी मुझे या किसी और को?'

'किसको बाबूजी बिलखते हुए तारा ने कहा।

'जो पास में बैठा है। मुझे खोजना चाहती है, तो एक पोस्टकार्ड न डाल देती कलंकिनी, दुष्ट! मुझे जल पिला दिया, प्रायश्चित्त करना पड़ेगा!'

अब मंगल के समझ में आया कि वह यात्री तारा का पिता है, परन्तु उसे विश्वास न हुआ कि यही तारा का पिता है। क्या पिता भी इतना निर्दय हो सकता है उसे अपने ऊपर किये गये व्यंग्य का भी बड़ा दुख हुआ, परन्तु क्या करे, इस कठोर अपमान को तारा का भविष्य सोचकर वह पी गया। उसने धीरे-से सिसकती हुई तारा से पूछा, 'क्या वही तुम्हारे पिता हैं?'

'हाँ, परन्तु मैं अब क्या करूँ बाबूजी, मेरी माँ होती तो इतनी कठोरता न करती। मैं उन्हीं की गोद में जाऊँगी।' तारा फूट-फूटकर रो रही थी।

'तेरी नीचता से दुखी होकर महीनों हुआ, वह मर गयी, तू न मरी-कालिख पोतने के लिए जीती रही!' यात्री ने कहा।

मंगल से रहा न गया, उसने कहा, 'महाशय, आपका क्रोध व्यर्थ है। यह स्त्री कुचक्रियों के फेर में पड़ गयी थी, परन्तु इसकी पवित्रता में कोई अन्तर नहीं पड़ा, बड़ी कठिनता से इसका उद्धार करके मैं इसे आप ही के पास पहुँचाने के लिए जाता था। भाग्य से आप मिल गये।'

'भाग्य नहीं, दुर्भाग्य से!' घृणा और क्रोध से यात्री के मुँह का रंग बदल रहा था।

'तब यह किसकी शरण में जायेगी? अभागिनी की कौन रक्षा करेगा मैं आपको प्रमाण दूँगा कि तारा निरपराधिनी है। आप इसे...'

बीच ही में यात्री ने रोककर कहा, 'मूर्ख युवक! ऐसी स्वैरिणी को कौन गृहस्थ अपनी कन्या कहकर सिर नीचा करेगा। तुम्हारे जैसे इनके बहुत-से संरक्षक मिलेंगे। बस अब मुझसे कुछ न कहो।' यात्री का दम्भ उसके अधरों में स्फुरित हो रहा था। तारा अधीर होकर रो रही थी और युवक इस कठोर उत्तर को अपने मन में तौल रहा था।

गाड़ी बीच के छोटे स्टेशन पर नहीं रुकी। स्टेशन की लालटेनें जल रही थीं। तारा ने देखा, एक सजा-सजाया घर भागकर छिप गया। तीनों चुप रहे। तारा क्रोध पर ग्लानि से फूल रही थी। निराशा और अन्धकार में विलीन हो रही थी। गाड़ी स्टेशन पर रुकी। सहसा यात्री उतर गया।

मंगलदेव कर्तव्य चिंता में व्यस्त था। तारा भविष्य की कल्पना कर रही थी। गाड़ी अपनी धुन में गंभीर तम का भेदन करती हुई चलने लगी।

(3)

हरिद्वार की बस्ती से अलग गंगा के तट पर एक छोटा-सा उपवन है। दो-तीन कमरे और दालानों का उससे लगा हुआ छोटा-सा घर है। दालान में बैठी हुई तारा माँग सँवार रही है। अपनी दुबली-पतली लम्बी काया की छाया प्रभात के कोमल आतप से डालती हुई तारा एक कुलवधू के समान दिखाई पड़ती है। बालों से लपेटकर बँधा हुआ जूड़ा छलछलायी आँखें, नमित और ढीली अंगलता, पतली-पतली लम्बी उँगलियाँ, जैसे विचित्र सजीव होकर काम कर रहा है। पखवारों में तारा के कपोलों के ऊपर भौंहों के नीचे श्याम-मण्डल पड़ गया है। वह काम करते हुए भी, जैसे अन्यमनस्क-सी है। अन्यमनस्क रहना ही उसका स्वाभाविकता है। आज-कल उसकी झुकी हुई पलकें काली पुतलियों को छिपाये रखती हैं। आँखें संकेत से कहती हैं कि हमें कुछ न कहो, नहीं बरसने लगेंगी।

पास ही तून की छाया में पत्थर पर बैठा हुआ मंगल एक पत्र लिख रहा है। पत्र समाप्त करके उसने तारा की ओर देखा और पूछा, 'मैं पत्र छोड़ने जा रहा हूँ। कोई काम बाजार का हो तो करता आऊँ।'

तारा ने पूर्ण ग्रहिणी भाव से कहा, 'थोडा कड़वा तेल चाहिए और सब वस्तुएँ हैं।' मंगलदेव जाने के लिए उठ खड़ा हुआ। तारा ने फिर पूछा, 'और नौकरी का क्या हुआ?'

'नौकरी मिल गयी है। उसी की स्वीकृति-सूचना लिखकर पाठशाला के अधिकारी के पास भेज रहा हूँ। आर्य-समाज की पाठशाला में व्यायाम-शिक्षक का काम करूँगा।'

'वेतन तो थोड़ा ही मिलेगा। यदि मुझे भी कोई काम मिल जाये, तो देखना, मैं तुम्हारा हाथ बँटा लूँगी।'

मंगलदेव ने हँस दिया और कहा, 'स्त्रियाँ बहुत शीघ्र उत्साहित हो जाती हैं और उतने ही अधिक परिणाम में निराशावादिनी भी होती हैं। भला मैं तो पहले टिक जाऊँ! फिर तुम्हारी देखी जायेगी।' मंगलदेव चला गया। तारा ने उस एकान्त

उपवन की ओर देखा–शरद का निरभ्र आकाश छोटे–से उपवन पर अपने उज्ज्वल आतप के मिस हँस रहा था। तारा सोचने लगी–

'यहाँ से थोड़ी दूर पर मेरा पितृगृह है, पर मैं वहाँ नहीं जा सकती। पिता समाज और धर्म के भय से त्रस्त हैं। ओह, निष्ठुर पिता! अब उनकी भी पहली–सी आय नहीं, महन्तजी प्रायः बाहर, विशेषकर काशी रहा करते हैं। मठ की अवस्था बिगड़ गयी है। मंगलदेव–एक अपरिचित युवक–केवल सत्साहस के बल पर मेरा पालन कर रहा है। इस दासवृत्ति से जीवन बिताने से क्या वह बुरा था, जिसे छोड़कर मैं आयी। किस आकर्षण ने यह उत्साह दिलाया और अब वह क्या हुआ, जो मेरा मन ग्लानि का अनुभव करता है, परतन्त्रता से नहीं, मैं भी स्वावलम्बिनी बनूँगी, परन्तु मंगल! निरीह निष्पाप हृदय!'

तारा और मंगल–दोनों के मन के संकल्प–विकल्प चल रहे थे। समय अपने मार्ग चल रहा था। दिन छूटते जाते थे। मंगल की नौकरी लग गयी। तारा गृहस्थी चलाने लगी।

धीरे–धीरे मंगल के बहुत से आर्य मित्र बन गये और कभी–कभी देवियाँ भी तारा से मिलने लगीं। आवश्यकता से विवश होकर मंगल और तारा ने आर्य समाज का साथ दिया था। मंगल स्वतंत्र विचार का युवक था, उसके धर्म सम्बन्धी विचार निराले थे, परन्तु बाहर से वह पूर्ण आर्य समाजी था। तारा की सामाजिकता बनाने के लिये उसे दूसरा मार्ग न था।

एक दिन कई मित्रों के अनुरोध से उसने अपने यहाँ प्रीतिभोज दिया। श्रीमती प्रकाश देवी, सुभद्रा, अम्बालिका, पीलोमी आदि नामांकित कई देवियाँ, अभिमन्यु, वेदस्वरूप, ज्ञानदत्त और वरुणप्रिय, भीष्मव्रत आदि कई आर्यसभ्य एकत्रित हुए।

वृक्ष के नीचे कुर्सियाँ पड़ी थीं। सब बैठे थे। बातचीत हो रही थी। तारा अतिथियों के स्वागत में लगी थी। भोजन बनकर प्रस्तुत था। ज्ञानदत्त ने कहा, 'अभी ब्रह्मचारी जी नहीं आये!'

अरुण, 'आते ही होंगे!'

वेद–'तब तक हम लोग संध्या कर लें।'

इन्द–'यह प्रस्ताव ठीक है, परन्तु लीजिये, वह ब्रह्मचारी जी आ रहे हैं।'

एक घुटनों से नीचा लम्बा कुर्ता डाले, लम्बे बाल और छोटी दाढ़ी वाले गौरवपूर्ण युवक को देखते ही नमस्ते की धूम मच गई। ब्रह्मचारी जी बैठे। मंगलदेव का परिचय देते हुए वेदस्वरूप ने कहा, 'आपका शुभ नाम मंगलदेव

है! उन्होंने ही इन देवी का यवनों के चंगुल से उद्धार किया है।' तारा ने नमस्ते किया, ब्रह्मचारी ने पहले हँस कर कहा, 'सो तो होना चाहिए, ऐसे ही नवयुवकों से भारतवर्ष को आशा है। इस सत्साह के लिए मैं धन्यवाद देता हूँ आप समाज में कब से प्रविष्ट हुए हैं?'

'अभी तो मैं सभ्यों में नहीं हूँ।' मंगल ने कहा।

'बहुत शीघ्र जाइये, बिना भित्ति के कोई घर नहीं टिकता और बिना नींव की कोई भित्ति नहीं। उसी प्रकार सद्विचार के बिना मनुष्य की स्थिति नहीं और धर्म-संस्कारों के बिना सद्विचार टिकाऊ नहीं होते। इसके सम्बन्ध में मैं विशेष रूप से फिर कहूँगा। आइये, हम लोग सन्ध्या-वन्दन कर लें।'

सन्ध्या और प्रार्थना के समय मंगलदेव केवल चुपचाप बैठा रहा। थालियाँ परसी गईं। भोजन करने के लिए लोग आसन पर बैठे। वेदस्वरूप ने कहना आरम्भ किया, 'हमारी जाति में धर्म के प्रति इतनी उदासीनता का कारण है एक कल्पित ज्ञान, जो इस देश के प्रत्येक प्रणाली वाणी के लिए सुलभ हो गया है। वस्तुतः उन्हें ज्ञानभाव होता है और वे अपने साधारण नित्यकर्म से वंचित होकर अपनी आध्यात्मिक उन्नति करने में भी असमर्थ होते हैं।'

ज्ञानदत्त-'इसलिए आर्यों का कर्मवाद संसार के लिए विलक्षण कल्याणदायक है-ईश्वर के प्रति विश्वास करते हुए भी स्वावलम्बन का पाठ पढ़ाता है। यह ऋषियों का दिव्य अनुसंधान है।'

ब्रह्मचारी ने कहा, 'तो अब क्या विलम्ब है, बातें भी चला करेंगी।'

मंगलदेव ने कहा, 'हाँ, हाँ आरम्भ कीजिये।'

ब्रह्मचारी ने गंभीर स्वर में प्रणवाद किया और दन्त-अन्न का युद्ध प्रारम्भ हुआ।

मंगलदेव ने कहा, 'परन्तु संसार की अभाव-आवश्यकताओं को देखकर यह कहना पड़ता है कि कर्मवाद का सृजन करके हिन्दू-जाति ने अपने लिए असंतोष और दौड़-धूप, आशा और संकल्प का फन्दा बना लिया है।'

'कदापि नहीं, ऐसा समझना भ्रम है महाशयजी! मनुष्यों को पाप-पुण्य की सीमा में रखने के लिए इससे बढ़कर कोई उपाय जाग्रत नहीं मिला।'

सुभद्रा ने कहा।

'श्रीमती! मैं पाप-पुण्य की परिभाषा नहीं समझता, परन्तु यह कहूँगा कि मुसलमान धर्म इस ओर बड़ा दृढ़ है। वह सम्पूर्ण निराशावादी होते हुए, भौतिक कुल शक्तियों पर अविश्वास करते हुए, केवल ईश्वर की अनुकम्पा पर अपने

को निर्भर करता है। इसीलिए उनमें इतनी दृढ़ता होती है। उन्हें विश्वास होता है कि मनुष्य कुछ नहीं कर सकता, बिना परमात्मा की आज्ञा के और केवल इसी एक विश्वास के कारण वे संसार में संतुष्ट है।'

परसने वाले ने कहा, 'मूँग का हलवा ले आऊँ। खीर में तो अभी कुछ विलम्ब है।'

ब्रह्मचारी ने कहा, 'भाई हम जीवन को सुख के अच्छे उपकरण ढूँढ़ने में नहीं बिताना चाहते। जो कुछ प्राप्त है, उसी में जीवन सुखी होकर बीते, इसी की चेष्टा करते हैं, इसलिए जो प्रस्तुत हो, ले आओ।'

सब लोग हँस पड़े।

फिर ब्रह्मचारी ने कहा, 'महाशय जी, आपने एक बड़े धर्म की बात कही है। मैं उसका कुछ निराकरण कर देना चाहता हूँ। मुसलमान-धर्म निराशावादी होते हुए भी क्यों इतना उन्नतिशील है, इसका कारण तो आपने स्वयं कहा कि 'ईश्वर में विश्वास' परन्तु इसके साथ उनकी सफलता का एक और भी रहस्य है। वह है उनकी नित्य-क्रिया की नियम-बद्धता, क्योंकि नियमित रूप से परमात्मा की कृपा का लाभ उठाने के लिए प्रार्थना करनी आवश्यक है। मानव-स्वभाव दुर्बलताओं का संकलन है, सत्यकर्म विशेष होने पाते नहीं, क्योंकि नित्य-क्रियाओं द्वारा उनका अभ्यास नहीं। दूसरी ओर ज्ञान की कमी से ईश्वर निष्ठा भी नहीं। इसी अवस्था को देखते हुए ऋषि ने यह सुगम आर्य-पथ बनाया है। प्रार्थना नियमित रूप से करना, ईश्वर में विश्वास करना, यही तो आर्य-समाज का संदेश है। यह स्वावलम्बपूर्ण है, यह दृढ़ विश्वास दिलाता है कि हम सत्यकर्म करेंगे, तो परमात्मा की असीम कृपा अवश्य होगी।'

सब लोगों ने उन्हें धन्यवाद दिया। ब्रह्मचारी ने हँसकर सबका स्वागत किया। अब एक क्षणभर के लिए विवाद स्थगित हो गया और भोजन में सब लोग दत्तचित्त हुए। कुछ भी परसने के लिए जब पूछा जाता तो वे 'हूँ' कहते। कभी-कभी न लेने के लिए उसी का प्रयोग होता। परसने वाला घबरा जाता और भ्रम से उनकी थाली में कुछ-न-कुछ डाल देता, परन्तु वह सब यथास्थान पहुँच जाता। भोजन समाप्त करके सब लोग यथास्थान बैठे। तारा भी देवियों के साथ हिल-मिल गयी।

चाँदनी निकल आयी थी। समय सुन्दर था। ब्रह्मचारी ने प्रसंग छेड़ते हुए कहा, 'मंगलदेव जी! आपने एक आर्य-बालिका का यवनों से उद्धार करके बड़ा पुण्यकर्म किया है, इसके लिए आपको हम सब लोग बधाई देते हैं।'

वेदस्वरूप–'और इस उत्तम प्रीतिभोज के लिए धन्यवाद।'

विदुषी सुभद्रा ने कहा, 'परमात्मा की कृपा से तारादेवी के शुभ पाणिग्रहण के अवसर पर हम लोग फिर इसी प्रकार सम्मिलित हों।'

मंगलदेव, ने जो अभी तक अपनी प्रशंसा का बोझ सिर नीचे किये उठा रहा था, कहा, 'जिस दिन इतनी हो जाये, उसी दिन मैं अपने कर्तव्य का पूरा कर सकूँगा।'

तारा सिर झुकाए रही। उसके मन में इन सामाजिकों की सहानुभूति ने एक नई कल्पना उत्पन्न कर दी। वह एक क्षण भर के लिए अपने भविष्य से निश्चिन्त–सी हो गयी।

उपवन के बाहर तक तारा और मंगलदेव ने अतिथियों को पहुँचाया। लोग विदा हो गये। मंगलदेव अपनी कोठरी में चला गया और तारा अपने कमरे में जाकर पलंग पर लेट गयी। उसने एक बार आकाश के सुकुमार शिशु को देखा। छोटे–से चन्द्र की हलकी चाँदनी में वृक्षों की परछाईं उसकी कल्पनाओं को रंजित करने लगी। वह अपने उपवन का मूक दृश्य खुली आँखों से देखने लगी। पलकों में नींद न थी, मन में चैन न था, न जाने क्यों उसके हृदय में धड़कन बढ़ रही थी। रजनी के नीरव संसार में वह उसे साफ सुन रही थी। जागते–जागते दोपहर से अधिक चली गयी। चन्द्रिका के अस्त हो जाने से उपवन में अँधेरा फैल गया। तारा उसी में आँख गड़ाकर न जाने क्या देखना चाहती थी। उसका भूत, वर्तमान और भविष्य–तीनों अन्धकार में कभी छिपते और कभी तारों के रूप में चमक उठते। वह एक बार अपनी उस वृत्ति को आह्वान करने की चेष्टा करने लगी, जिसकी शिक्षा उसे वेश्यालय से मिली थी। उसने मंगल को तब नहीं, परन्तु अब खींचना चाहा। रसीली कल्पनाओं से हृदय भर गया। रात बीत चली। उषा का आलोक प्राची में फैल रहा था। उसने खिड़की से झाँककर देखा तो उपवन में चहल–पहल थी। जूही की प्यालियों में मकरन्द–मदिरा पीकर मधुपों की टोलियाँ लड़खड़ा रही थीं और दक्षिणपवन मौलसिरी के फूलों की कौड़ियाँ फेंक रहा था। कमर से झुकी हुई अलबेली बेलियाँ नाच रही थीं। मन की हार–जीत हो रही थी।

मंगलदेव ने पुकारा, 'नमस्कार!'

तारा ने मुस्कुराते हुए पलंग पर बैठकर दोनों हाथ सिर से लगाते हुए कहा, 'नमस्कार!'

मंगल ने देखा–कविता में वर्णित नायिका जैसे प्रभात की शैया पर बैठी है।

समय के साथ–साथ अधिकाधिक गृहस्थी में चतुर और मंगल परिश्रमी होता जाता था। सवेरे जलपान बनाकर तारा मंगल को देती, समय पर भोजन और ब्यालू। मंगल के वेतन में सब प्रबन्ध हो जाता, कुछ बचता न था। दोनों को बचाने की चिंता भी न थी, परन्तु इन दोनों की एक बात नई हो चली। तारा मंगल के अध्ययन में बाधा डालने लगी। वह प्रायः उसके पास ही बैठ जाती। उसकी पुस्तकों को उलटती, यह प्रकट हो जाता कि तारा मंगल से अधिक बातचीत करना चाहती है और मंगल कभी–कभी उससे घबरा उठता।

वसन्त का प्रारम्भ था, पत्ते देखते ही देखते ऐंठते जाते थे और पतझड़ के बीहड़ समीर से वे झड़कर गिरते थे। दोपहर था। कभी–कभी बीच में कोई पक्षी वृक्षों की शाखाओं में छिपा हुआ बोल उठता। फिर निस्तब्धता छा जाती। दिवस विरस हो चले थे। अँगड़ाई लेकर तारा ने वृक्ष के नीचे बैठे हुए मंगल से कहा, 'आज मन नहीं लगता है।'

'मेरा मन भी उचाट हो रहा है। इच्छा होती है कि कहीं घूम आऊँ, परन्तु तुम्हारा ब्याह हुए बिना मैं कहीं नहीं जा सकता।'

'मैं तो ब्याह न करूँगी।'

'क्यों?'

'दिन तो बिताना ही है, कहीं नौकरी कर लूँगी। ब्याह करने की क्या आवश्यकता है?'

'नहीं तारा, यह नहीं हो सकता। तुम्हारा निश्चित लक्ष्य बनाये बिना कर्तव्य मुझे धिक्कार देगा।'

'मेरा लक्ष्य क्या है, अभी मैं स्वयं स्थिर नहीं कर सकी।'

'मैं स्थिर करूँगा।'

'क्यों ये भार अपने ऊपर लेते हो मुझे अपनी धारा में बहने दो।'

'सो नहीं हो सकेगा।'

'मैं कभी–कभी विचारती हूँ कि छायाचित्र–सदृश जलस्रोत में नियति पवन के थपेड़े लगा रही है, वह तरंग–संकुल होकर घूम रहा है और मैं एक तिनके के सदृश उसी में इधर–उधर बह रही हूँ। कभी भँवर में चक्कर खाती हूँ, कभी लहरों में नीचे–ऊपर होती हूँ। कहीं कूल–किनारा नहीं।' कहते–कहते तारा की आँखें छलछला उठीं।

'न घबड़ाओ तारा, भगवान् सबके सहायक हैं।' मंगल ने कहा और जी बहलाने के लिए कहीं घूमने का प्रस्ताव किया।

दोनों उतरकर गंगा के समीप के शिला-खण्डों से लगकर बैठ गये। जाह्नवी के स्पर्श से पवन अत्यन्त शीतल होकर शरीर में लगता है। यहाँ धूप कुछ भली लगती थी। दोनों विलम्ब तक बैठे चुपचाप निसर्ग के सुन्दर दृश्य देखते थे। संध्या हो चली। मंगल ने कहा, 'तारा चलो, घर चलें।' तारा चुपचाप उठी। मंगल ने देखा, उसकी आँखें लाल हैं। मंगल ने पूछा, 'क्या सिर दर्द है?'

'नहीं तो।'

दोनों घर पहुँचे। मंगल ने कहा, 'आज ब्यालू बनाने की आवश्यकता नहीं, जो कहो बाजार से लेता आऊँ।'

श्इस तरह कैसे चलेगा। मुझे क्या हुआ है, थोड़ा दूध ले आओ, तो खीर बना दूँ, कुछ पूरियाँ बची हैं।'

मंगलदेव दूध लेने चला गया।

तारा सोचने लगी-मंगल मेरा कौन है, जो मैं इतनी आज्ञा देती हूँ। क्या वह मेरा कोई है। मन में सहसा बड़ी-बड़ी अभिलाषाएँ उदित हुई और गंभीर आकाश के शून्य में ताराओं के समान डूब गई। वह चुप बैठी रही।

मंगल दूध लेकर आया। दीपक जला। भोजन बना। मंगल ने कहा, 'तारा आज तुम मेरे साथ ही बैठकर भोजन करो।'

तारा को कुछ आश्चर्य न हुआ, यद्यपि मंगल ने कभी ऐसा प्रस्ताव न किया था, परन्तु वह उत्साह के साथ सम्मिलित हुई।

दोनों भोजन करके अपने-अपने पलंग पर चले गये। तारा की आँखों में नींद न थी, उसे कुछ शब्द सुनाई पड़ा। पहले तो उसे भय लगा, फिर साहस करके उठी। आहट लगी कि मंगल का-सा शब्द है। वह उसके कमरे में जाकर खड़ी हो गई। मंगल सपना देख रहा था, बर्राता था-'कौन कहता है कि तारा मेरी नहीं है मैं भी उसी का हूँ। तुम्हारे हत्यारे समाज की मैं चिंता नहीं करता... वह देवी है। मैं उसकी सेवा करूँगा...नहीं-नहीं, उसे मुझसे न छीनो।'

तारा पलंग पर झुक गयी थी, वसन्त की लहरीली समीर उसे पीछे से ढकेल रही थी। रोमांच हो रहा था, जैसे कामना-तरंगिनी में छोटी-छोटी लहरियाँ उठ रही थीं। कभी वक्षस्थल में, कभी कपोलों पर स्वेद हो जाते थे। प्रकृति प्रलोभन में सजी थी। विश्व एक भ्रम बनकर तारा के यौवन की उमंग में डूबना चाहता था।

सहसा मंगल ने उसी प्रकार सपने में बर्राते हुए कहा, 'मेरी तारा, प्यारी तारा आओ!' उसके दोनों हाथ उठ रहे थे कि आँख बन्द कर तारा ने अपने को मंगल के अंक में डाल दिया?'

प्रभात हुआ, वृक्षों के अंक में पक्षियों का कलरव होने लगा। मंगल की आँखें खुलीं, जैसे उसने रातभर एक मनोहर सपना देखा हो। वह तारा को छोड़कर बाहर निकल आया, टहलने लगा। उत्साह से उसके चरण नृत्य कर रहे थे। बड़ी उत्तेजित अवस्था में टहल रहा था। टहलते-टहलते एक बार अपनी कोठरी में गया। जंगले से पहली लाल किरणें तारा के कपोल पर पड़ रही थी। मंगल ने उसे चूम लिया। तारा जाग पड़ी। वह लजाती हुई मुस्कुराने लगी। दोनों का मन हलका था।

उत्साह में दिन बीतने लगे। दोनों के व्यक्तित्त्व में परिवर्तन हो चला। अब तारा का वह नि:संकोच भाव न रहा। पति-पत्नी का सा व्यवहार होने लगा। मंगल बड़े स्नेह से पूछता, वह सहज संकोच से उत्तर देती। मंगल मन-ही-मन प्रसन्न होता। उसके लिए संसार पूर्ण हो गया था-कहीं रिक्तता नहीं, कहीं अभाव नहीं।

तारा एक दिन बैठी कसीदा काढ़ रही थी। धम-धम का शब्द हुआ। दोपहर था, आँख उठाकर देखा... एक बालक दौड़ा हुआ आकर दालान में छिप गया। उपवन के किवाड़ तो खुले ही थे और भी दो लड़के पीछे-पीछे आये। पहला बालक सिमटकर सबकी आँखों की ओट हो जाना चाहता था। तारा कौतूहल से देखने लगी। उसने संकेत से मना किया कि बतावे न। तारा हँसने लगी। दोनों के खोजने वाले लड़के ताड़ गये। एक ने पूछा, 'सच बताना रामू यहाँ आया है पड़ोस के लड़के थे, तारा ने हँस दिया, रामू पकड़ गया। तारा ने तीनों को एक-एक मिठाई दी। खूब हँसी होती रही।

कभी-कभी कल्लू की माँ आ जाती। वह कसीदा सीखती। कभी बल्लो अपनी किताब लेकर आती, तारा उसे कुछ बताती। विदुषी सुभद्रा भी प्राय: आया करती। एक दिन सुभद्रा बैठी थी, तारा ने कुछ उससे जलपान का अनुरोध किया। सुभद्रा ने कहा, 'तुम्हारा ब्याह जिस दिन होगा, उसी दिन जलपान करूँगी।'

'और जब तक न होगा, तुम मेरे यहाँ जल न पीओगी?'

'जब तक क्यों तुम क्यों विलम्ब करती हो?'

'मैं ब्याह करने की आवश्यकता न समझूँ तो?'

'यह तो असम्भव है। बहन आवश्यकता होती ही है।'

सुभद्रा रुक गयी। तारा के कपोल लाल हो गये। उसकी ओर कनखियों से देख रही थी। वह बोली, 'क्या मंगलदेव ब्याह करने पर प्रस्तुत नहीं होते?'

'मैंने तो कभी प्रस्ताव किया नहीं।'

'मैं करूँगी बहन! संसार बड़ा खराब है। तुम्हारा उद्धार इसलिए नहीं हुआ है कि तुम यों ही पड़ी रहो! मंगल में यदि साहस नहीं है, तो दूसरा पात्र ढूँढ़ा जायेगा, परन्तु सावधान! तुम दोनों को इस तरह रहना कोई भी समाज हो, अच्छी आँखों से नहीं देखेगा। चाहे तुम दोनों कितने ही पवित्र हो!'

तारा को जैसे किसी ने चुटकी काट ली। उसने कहा, 'न देखे समाज भले ही, मैं किसी से कुछ चाहती तो नहीं, पर मैं अपने ब्याह का प्रस्ताव किसी से नहीं कर सकती।'

'भूल है प्यारी बहन! हमारी स्त्रियों की जाति इसी में मारी जाती है। वे मुँह खोलकर सीधा-सादा प्रस्ताव नहीं कर सकतींय परन्तु संकेतों से अपनी कुटिल अंग-भंगियों के द्वारा प्रस्ताव से अधिक करके पुरुषों को उत्साहित किया करती हैं और बुरा न मानना, तब वे अपना सर्वस्व अनायास ही नष्ट कर देती हैं। ऐसी कितनी घटनाएँ जानी गयी हैं।'

तारा जैसे घबरा गयी। वह कुछ भारी मुँह किये बैठी रही। सुभद्रा भी कुछ समय बीतने पर चली गयी।

मंगलदेव पाठशाला से लौटा। आज उसके हाथ में एक भारी गठरी थी। तारा उठ खड़ी हुई। पूछा, 'आज यह क्या ले आये?'

हँसते हुए मंगल ने कहा, 'देख लो।'

गठरी खुली-साबुन, रूमाल, काँच की चूड़ियाँ, इतर और भी कुछ प्रसाधन के उपयोगी पदार्थ थे। तारा ने हँसते हुए उन्हें अपनाया।

मंगल ने कहा, 'आज समाज में चलो, उत्सव है। कपड़े बदल लो।' तारा ने स्वीकार सूचक सिर हिला दिया। कपड़े का चुनाव होने लगा। साबुन लगा, कंघी फेरी गई। मंगल ने तारा की सहायता की, तारा ने मंगल की। दोनों नयी स्फूर्ति से प्रेरित होकर समाज-भवन की ओर चले।

इतने दिनों बाद तारा आज ही हरिद्वार के पथ पर बाहर निकलकर चली। उसे गलियों का, घाटों का, बाल्यकाल का दृश्य स्मरण हो रहा था-यहाँ वह खेलने आती, वहाँ दर्शन करती, वहाँ पर पिता के साथ घूमने आती। राह चलते-चलते उसे स्मृतियों ने अभिभूत कर दिया। अकस्मात् एक प्रौढ़ा स्त्री उसे देखकर रुकी और साभिप्राय देखने लगी। वह पास चली आयी। उसने फिर आँखें गड़ाकर देखा, 'तारा तो नहीं।'

'हाँ, चाची!'

'अरी तू कहाँ?'

'भाग्य!'

'क्या तेरे बाबूजी नहीं जानते!'

'जानते हैं चाची, पर मैं क्या करूँ'

'अच्छा तू कहाँ है? मैं आऊँगी।'

'लालाराम की बगीची में।'

चाची चली गयी। ये लोग समाज-भवन की ओर चले।

कपड़े सूख चले थे। तारा उन्हें इकट्ठा कर रही थी। मंगल बैठा हुआ उनकी तह लगा रहा था। बदली थी। मंगल ने कहा, 'आज खूब जल बरसेगा।'

'क्यों?'

'बादल भींग रहे हैं, पवन रुका है। प्रेम का भी पूर्व रूप ऐसा ही होता है। तारा! मैं नहीं जानता था कि प्रेम-कादम्बिनी हमारे हृदयाकाश में कब से अड़ी थी और तुम्हारे सौन्दर्य का पवन उस पर घेरा डाले हुए था।'

'मैं जानती थी। जिस दिन परिचय की पुनरावृत्ति हुई, मेरे खारे आँसुओं के प्रेमघन बन चुके थे। मन मतवाला हो गया था, परन्तु तुम्हारी सौम्य-संयत चेष्टा ने रोक रखा था, मैं मन-ही-मन महसूस कर जाती और इसलिए मैंने तुम्हारी आज्ञा मानकर तुम्हें अपने जीवन के साथ उलझाने लगी थी।'

'मैं नहीं जानता था, तुम इतनी चतुर हो। अजगर के श्वास में खिंचे हुए मृग के समान मैं तुम्हारी इच्छा के भीतर निगल लिया गया।'

'क्या तुम्हें इसका खेद है?'

'तनिक भी नहीं प्यारी तारा, हम दोनों इसलिए उत्पन्न हुए थे। अब मैं उचित समझता हूँ कि हम लोग समाज के प्रचलित नियमों में आबद्ध हो जायें, यद्यपि मेरी दृष्टि में सत्य-प्रेम के सामने उसका कुछ मूल्य नहीं।'

'जैसी तुम्हारी इच्छा।'

अभी ये लोग बातें कर रहे थे कि उस दिन की चाची दिखलाई पड़ी। तारा ने प्रसन्नता से उसका स्वागत किया। उसका चादर उतारकर उसे बैठाया। मंगलदेव बाहर चला गया।

'तारा तुमने यहाँ आकर अच्छा नहीं किया।' चाची ने कहा।

'क्यों चाची! जहाँ अपने परिचित होते हैं, वहीं तो लोग जाते हैं। परन्तु दुर्नाम की अवस्था में उसे जगह से अलग जाना चाहिए।'

'तो क्या तुम लोग चाहती हो कि मैं यहाँ न रहूँ'

'नहीं-नहीं, भला ऐसा भी कोई कहेगा।' जीभ दबाते हुए चाची ने कहा।

'पिताजी ने मेरा तिरस्कार किया, मैं क्या करती चाची।' तारा रोने लगी।

चाची ने सान्त्वना देते हुए कहा, 'न रो तारा!'

समझाने के बाद फिर तारा चुप हुई, परन्तु वह फूल रही थी। फिर मंगल के प्रति संकेत करते हुए चाची ने पूछा, 'क्या यह प्रेम ठहरेगा तारा, मैं इसलिए चिन्तित हो रही हूँ, ऐसे बहुत से प्रेमी संसार में मिलते हैं, पर निभाने वाले बहुत कम होते हैं। मैंने तेरी माँ को ही देखा है।' चाची की आँखों में आँसू भर आये, पर तारा को अपनी माता का इस तरह का स्मरण किया जाना बहुत बुरा लगा। वह कुछ न बोली। चाची को जलपान कराना चाहा, पर वह जाने के लिए हठ करने लगी। तारा समझ गयी और बोला, 'अच्छा चाची! मेरे ब्याह में आना। भला और कोई नहीं, तो तुम तो अकेली अभागिन पर दया करना।'

चाची को जैसे ठोकर सी लग गयी। वह सिर उठाकर कहने लगी, 'कब है अच्छा-अच्छा आऊँगी।' फिर इधर-उधर की बातें करके वह चली गयी।

तारा से सशंक होकर एक बार फिर विलक्षण चाची को देखा, जिसे पीछे से देखकर कोई नहीं कह सकता था कि चालीस बरस की स्त्री है। वह अपनी इठलाती हुई चाल से चली जा रही थी। तारा ने मन में सोचा-ब्याह की बात करके मैंने अच्छा नहीं किया, परन्तु करती क्या, अपनी स्थिति साफ करने के लिए दूसरा उपाय ही न था।

मंगल जब तक लौट न आया, वह चिन्तित बैठी रही।

चाची अब प्राय: नित्य आती। तारा के विवाहोत्सव-सम्बन्ध की वस्तुओं की सूची बनाती। तारा उत्साह में भर गयी थी। मंगलदेव से जो कहा जाता, वही ले आता। बहुत शीघ्रता से काम आरम्भ हुआ। चाची को अपना सहायक पाकर तारा और मंगल दोनों प्रसन्न थे। एक दिन तारा गंगा-स्नान करने गयी थी। मंगल चाची के कहने पर आवश्यक वस्तुओं की तालिका लिख रहा था। वह सिर नीचा किये हुए लेखनी चलाता था और आगे बढ़ने के लिए 'हूँ' कहता जाता था। सहसा चाची ने कहा, 'परन्तु यह ब्याह होगा किस रीत से मैं जो लिखा रही हूँ, वह तो पुरानी चाल के ब्याह के लिए है।'

'क्या ब्याह भी कई चाल के होते हैं?' मंगल ने कहा।

'क्यों नहीं।' गम्भीरता से चाची बोली।

'मैं क्या जानूँ, आर्य-समाज के कुछ लोग उस दिन निमंत्रित होंगे और वही लोग उसे करवायेंगे। हाँ, उसमें पूजा का टंट-घंट वैसा न होगा और सब तो वैसा ही होगा।'

'ठीक है।' मुस्कुराती हुए चाची ने कहा, 'ऐसे वर-वधू का ब्याह और किस रीति से होगा।'

'क्यों आश्चर्य से मंगल उसका मुँह देखने लगा। चाची के मुँह पर उस समय बड़ा विचित्र भाव था। विलास-भरी आँखें, मचलती हुई हँसी देखकर मंगल को स्वयं संकोच होने लगा। कुत्सित स्त्रियों के समान वह दिल्लगी के स्वर में बोली, 'मंगल बड़ा अच्छा है, ब्याह जल्द कर लो, नहीं तो बाप बन जाने के पीछे ब्याह करना ठीक नहीं होगा।'

मंगल को क्रोध और लज्जा के साथ घृणा भी हुई। चाची ने अपना आँचल सँभालते हुए तीखे कटाक्षों से मंगल की ओर देखा। मंगल मर्माहत होकर रह गया। वह बोला, 'चाची!'

और भी हँसती हुई चाची ने कहा, 'सच कहती हूँ, दो महीने से अधिक नहीं टले हैं।'

मंगल सिर झुकाकर सोचने के बाद बोला, 'चाची, हम लोगों का सब रहस्य तुम जानती हो तो तुमसे बढ़कर हम लोगों का शुभचिन्तक और मित्र कौन हो सकता है, अब जैसा तुम कहो वैसा करें।'

चाची अपनी विजय पर प्रसन्न होकर बोली, 'ऐसा प्रायः होता है। तारा की माँ ही कौन कहीं की भण्डारजी की ब्याही धर्मपत्नी थी! मंगल, तुम इसकी चिंता मत करो, ब्याह शीघ्र कर लो, फिर कोई न बोलेगा। खोजने में ऐसों की संख्या भी संसार में कम न होगी।'

चाची अपनी वक्तृता झाड़ रही थी। उधर मंगल तारा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विचारने लगा। अभी-अभी उस दुष्टा चाची ने एक मार्मिक चोट उसे पहुँचायी। अपनी भूल और अपने अपराध मंगल को नहीं दिखाई पड़े, परन्तु तारा की माँ भी दुराचारिणी!-यह बात उसे खटकने लगी। वह उठकर उपवन की ओर चला गया। चाची ने बहुत चाहा कि उसे अपनी बातों में लगा ले, पर वह दुखी हो गया था। इतने में तारा लौट आयी। बड़ा आग्रह दिखाते हुए चाची ने कहा, 'तारा, ब्याह के लिए परसों का दिन अच्छा है और देखो, तुम नहीं जानती हो कि तुमने अपने पेट में एक जीव को बुला लिया है, इसलिए ब्याह का हो जाना अत्यन्त आवश्यक है।'

तारा चाची की गम्भीर मूर्ति देखकर डर गयी। वह अपने मन में सोचने लगी–जैसा चाची कहती है वही ठीक है। तारा सशंक हो चली!

चाची के जाने पर मंगल लौट आया। तारा और मंगल दोनों का हृदय उछल रहा था। साहस करके तारा ने पूछा, 'कौन दिन ठीक हुआ?'

सिर झुकाते हुए मंगल ने कहा, 'परसों। फिर वह अपना कोट पहनने हुए उपवन के बाहर हो गया।?'

तारा सोचने लगी–क्या सचमुच मैं एक बच्चे की माँ हो चली हूँ। यदि ऐसा हुआ तो क्या होगा। मंगल का प्रेम ही रहेगा–वह सोचते–सोचते लेट गयी। सामान बिखरे रहे।

परसों के आते विलम्ब न हुआ।

घर में ब्याह का समारोह था। सुभद्रा और चाची काम में लगी हुई थीं। होम के लिए वेदी बन चुकी थी। तारा का प्रसाधन हो रहा था, परन्तु मंगलदेव स्नान करने हर की पैड़ी गया था। वह स्नान करके घाट पर आकर बैठ गया। घर लौटने की इच्छा न हुई। वह सोचने लगा–तारा दुराचारिणी की संतान है, वह वेश्या के यहाँ रही है, फिर मेरे साथ भाग आयी, मुझसे अनुचित सम्बन्ध हुआ और अब वह गर्भवती है। आज मैं ब्याह करके कई कुकर्मों की कलुषित सन्तान का पिता कहलाऊँगा! मैं क्या करने जा रहा हूँ!–घड़ी भर की चिंता में वह निमग्न था। अन्त में इसी समय उसके ध्यान में एक ऐसी बात आ गयी कि उसके सत्साहस ने उसका साथ छोड़ दिया। वह स्वयं समाज की लाँछना सह सकता था, परन्तु भावी संतान के प्रति समाज की कल्पित लांछना और अत्याचार ने उसे विचलित किया। वह जैसे एक भावी विप्लव के भय से त्रस्त हो गया। भगोड़े समान वह स्टेशन की ओर अग्रसर हुआ। उसने देखा, गाड़ी आना ही चाहती है। उसके कोट की जेब में कुछ रुपये थे। पूछा, 'इस गाड़ी से बनारस पहुँच सकता हूँ?'

उत्तर मिला, 'हाँ, लसकर में बदलकर, वहाँ दूसरी ट्रेन तैयार मिलेगी।'

टिकट लेकर वह दूर से हरियाली में निकलते हुए धुएँ को चुपचाप देख रहा था, जो उड़ने वाले अजगर के समान आकाश पर चढ़ रहा था। उसके मस्तक में कोई बात जमती न थी। वह अपराधी के समान हरिद्वार से भाग जाना चाहता था। गाड़ी आते ही उस पर चढ़ गया। गाड़ी छूट गयी।

इधर उपवन में मंगलदेव के आने की प्रतीक्षा हो रही थी। ब्रह्मचारी जी और देवस्वरूप तथा और दो सज्जन आये। कोई पूछता था–मंगलदेव जी कहाँ हैं

कोई कहता–समय हो गया। कोई कहता–विलम्ब हो रहा है। परन्तु मंगलदेव कहाँ?'

तारा का कलेजा धक–धक करने लगा। वह न जाने किस अनागत भय से डरने लगी! रोने–रोने हो रही थी। परन्तु मंगल में रोना नहीं चाहिए, वह खुलकर न रो सकती थी।

जो बुलाने गया, वही लौट आया। खोज हुई, पता न चला। सन्ध्या हो आयी, पर मंगल न लौटा। तारा अधीर होकर रोने लगी। ब्रह्मचारी जी मंगल को भला–बुरा कहने लगे। अन्त में उन्होंने यहाँ तक कह डाला कि यदि मुझे यह विदित होता कि मंगल इतना नीच है, तो मैं किसी दूसरे से यह सम्बन्ध करने का उद्योग करता। सुभद्रा तारा को एक ओर ले जाकर सान्त्वना दे रही थी। अवसर पाकर चाची ने धीरे से कहा, 'वह भाग न जाता तो क्या करता, तीन महीने का गर्भ वह अपने सिर पर ओढ़कर ब्याह करता?'

'ऐ परमात्मन, यह भी है।' कहते हुए ब्रह्मचारीजी लम्बी डग बढ़ाते उपवन के बाहर चले गये। धीरे–धीरे सब चले गये। चाची ने यथा परवश होकर सामान बटोरना आरम्भ किया और उससे छुट्टी पाकर तारा के पास जाकर बैठ गयी।

तारा सपना देख रही थी–झूले के पुल पर वह चल रही है। भीषण पर्वत–श्रेणी! ऊपर और नीचे भयानक खड्ड! वह पैर सम्हालकर चल रही है। मंगलदेव पुल के उस पार खड़ा बुला रहा है। नीचे वेग से नदी बह रही है। बरफ के बादल घिर रहे हैं। अचानक बिजली कड़की, पुल टूटा, तारा भयानक वेग ने नीचे गिर पड़ी। वह चिल्लाकर जाग गयी। देखा, तो चाची उसका सिर सहला रही है। वह चाची की गोद में सिर रखकर सिसकने लगी।

(4)

पहाड़ जैसे दिन बीतती ही न थे। दु:ख की रातें जाड़े की रात से भी लम्बी बन जाती हैं। दुखिया तारा की अवस्था शोचनीय थी। मानसिक और आर्थिक चिंताओं से वह जर्जर हो गयी। गर्भ के बढ़ने से शरीर से भी कृश हो गयी। मुख पीला हो चला। अब उसने उपवन में रहना छोड़ दिया। चाची के घर में जाकर रहने लगी। वहीं सहारा मिला। खर्च न चल सकने के कारण वह दो–चार दिन के बाद एक वस्तु बेचती। फिर रोकर दिन काटती। चाची ने भी उसे अपने ढंग से छोड़ दिया। वहीं तारा टूटी चारपाई पर पड़ी कराहा करती।

अँधेरा हो चला था। चाची अभी–अभी घूमकर बाहर से आयी थी। तारा के पास आकर बैठ गयी। पूछा, 'तारा, कैसी हो?'

'क्या बताऊँ चाची, कैसी हूँ! भगवान जानते हैं, कैसी बीत रही है!'

'यह सब तुम्हारी चाल से हुआ।'

'सो तो ठीक कह रही हो।'

'नहीं, बुरा न मानना। देखो यदि मुझे पहले ही तुम अपना हाल कह देतीं, तो मैं ऐसा उपाय कर देती कि यह सब विपत्ति ही न आने पाती।'

'कौन उपाय चाची?'

'वही जब दो महीने का था, उसका प्रबन्ध हो जाता। किसी को कानो-कान खबर भी न होती। फिर तुम और मंगल एक बने रहते।'

'पर क्या इसी के लिए मंगल भाग गया? कदापि नहीं, उसके मन से मेरा प्रेम ही चला गया। चाची, जो बिना किसी लोभ के मेरी इतनी सहायता करता था, वह मुझे इस निस्सहाय अवस्था में इसलिए छोड़कर कभी नहीं जाता। इसमें काई दूसरा ही कारण है।'

'होगा, पर तुम्हें यह दुःख देखना न पड़ता और उसके चले जाने पर भी एक बार मैंने तुमसे संकेत किया, पर तुम्हारी इच्छा न देखकर मैं कुछ न बोली। नहीं तो अब तक मोहनदास तुम्हारे पैरों पर नाक रगड़ता। वह कई बार मुझसे कह भी चुका है।'

'बस करो चाची, मुझसे ऐसी बातें न करो। यदि ऐसा ही करना होगा, तो मैं किसी कोठे पर जा बैठूँगी, पर यह टट्टी की ओट में शिकार करना नहीं जानती। तारा ने ये बातें कुछ क्रोध में कहीं। चाची का पारा चढ़ गया। उसने बिगड़कर कहा, 'देखो निगोड़ी, मुझी को बातें सुनाती है। करम आप करे और आँखें दिखावे दूसरे को!'

तारा रोने लगी। वह खुर्राट चाची से लड़ना न चाहती थी, परन्तु अभिप्राय न सधने पर चाची स्वयं लड़ गयी। वह सोचती थी कि अब उसका सामान धीरे-धीरे ले ही लिया, दाल-रोटी दिन में एक बार खिला दिया करती थी। जब इसके पास कुछ बचा ही नहीं और आगे की कोई आशा भी न रही, तब इसका झंझट क्यों अपने सिर रखूँ। वह क्रोध से बोली, 'रो मत राँड़ कहीं की। जा हट, अपना दूसरा उपाय देख। मैं सहायता भी करूँ और बातें भी सुनूँ, यह नहीं हो सकता। कल मेरी कोठरी खाली कर देना। नहीं तो झाड़ू मारकर निकाल दूँगी।'

तारा चुपचाप रो रही थी, वह कुछ न बोली। रात हो चली। लोग अपने-अपने घरों में दिन भर के परिश्रम का आस्वाद लेने के लिए किवाड़ें बन्द करने लगे, पर तारा की आँखें खुली थीं। उनमें अब आँसू भी न थे। उसकी छाती

में मधु-विहीन मधुचक्रक-सा एक नीरस कलेजा था, जिसमे वेदना की ममाछियों की भन्नाहट थी। संसार उसकी आँखों में घूम जाता था, वह देखते हुए भी कुछ न देखती, चाची अपनी कोठरी में जाकर खा-पीकर सो रही। बाहर कुत्ते भौंक रहे थे। आधी रात बीत रही थी। रह-रहकर निस्तब्धता का झोंका आ जाता था। सहसा तारा उठ खड़ी हुई। उन्मादिनी के समान वह चल पड़ी। फटी धोती उसके अंग पर लटक रही थी। बाल बिखरे थे, बदन विकृत। भय का नाम नहीं। जैसे कोई यंत्रचालित शव चल रहा हो। वह सीधे जाह्नवी के तट पर पहुँची। तारों की परछाईं गंगा के वक्ष में खुल रही थी। स्रोत में हर-हर की ध्वनि हो रही थी। तारा एक शिलाखण्ड पर बैठ गयी। वह कहने लगी-मेरा अब कौन रहा, जिसके लिए जीवित रहूँ। मंगल ने मुझे निरपराध ही छोड़ दिया, पास में पाई नही, लांछनपूर्ण जीवन, कहीं धंधा करके पेट पालने के लायक भी नहीं रही। फिर इस जीवन को रखकर क्या करूँ! हाँ, गर्भ में कुछ है, वह क्या है, कौन जाने! यदि आज न सही, तो भी एक दिन अनाहार से प्राण छटपटाकर जायेगा ही-तब विलम्ब क्यों?'

मंगल! भगवान् ही जानते होंगे कि तुम्हारी शय्या पवित्र है। कभी स्वप्न में भी तुम्हें छोड़कर इस जीवन में किसी से प्रेम नहीं किया और न तो मैं कलुषित हुई। यह तुम्हारी प्रेम-भिखारिनी पैसे की भीख नहीं माँग सकती और न पैसे के लिए अपनी पवित्रता बेच सकती है तब दूसरा उपाय ही क्या मरण को छोड़कर दूसरा कौन शरण देगा भगवान! तुम यदि कहीं हो, तो मेरे साक्षी रहना!

वह गंगा में जा ही चुकी थी कि सहसा एक बलिष्ठ हाथ ने उसे पकड़कर रोक लिया। उसने छटपटाकर पूछा, 'तुक कौन हो, जो मेरे मरने का भी सुख छीनना चाहते हो?'

'अधर्म होगा, आत्महत्या पाप है?' एक लम्बा संन्यासी कह रहा था।

'पाप कहाँ! पुण्य किसका नाम है मैं नहीं जानती। सुख खोजती रही, दुख मिलाय दु:ख ही यदि पाप है, तो मैं उससे छूटकर सुख की मौत मर रही हूँ-पुण्य कर रही हूँ, करने दो!'

'तुमको अकेले मरने का अधिकार चाहे हो भी, पर एक जीव-हत्या तुम और करने जा रही हो, वह नहीं होगा। चलो तुम अभी, यही पर्णशाला है, उसमें रात भर विश्राम करो। प्रात:काल मेरा शिष्य आवेगा और तुम्हें अस्पताल ले जायेगा। वहाँ तुम अन्न चिंता से भी निश्चिन्त रहोगी। बालक उत्पन्न होने पर तुम

स्वतंन्त्र हो, जहाँ चाहे चली जाना।' संन्यासी जैसे आत्मानुभूति से दृढ़ आज्ञा भरे शब्दों में कह रहा था। तारा को बात दोहराने का साहस न हुआ। उसके मन में बालक का मुख देखने की अभिलाषा जाग गयी। उसने भी संकल्प कर लिया कि बालक का अस्पताल में पालन हो जायेगा, फिर मैं चली जाऊँगी।

वह संन्यासी के संकेत किये हुए कुटी की ओर चली। अस्पताल की चारपाई पर पड़ी हुई तारा अपनी दशा पर विचार कर रही थी। उसका पीला मुख, धँसी हुई आँखें, करुणा की चित्रपटी बन रही थीं। मंगल का इस प्रकार छोड़कर चले जाना सब कष्टों से अधिक कसकता था। दाई जब साबूदाना लेकर उसके पास आती, तब वह बड़े कष्ट से उठकर थोड़ा-सा पी लेती। दूध कभी-कभी मिलता था, क्योंकि अस्पताल जिन दीनों के लिए बनते हैं, वहाँ उनकी पूछ नहीं, उसका लाभ भी सम्पन्न ही उठाते हैं। जिस रोगी के अभिभावकों से कुछ मिलता, उसकी सेवा अच्छी तरह होती, दूसरे के कष्टों की गिनती नहीं। दाई दाल का पानी और हलकी रोटी लेकर आयी। तारा का मुँह खिड़की की ओर था।

दाई ने कहा, 'लो कुछ खा लो।'

'अभी मेरी इच्छा नहीं।' मुहँ फेरे ही तारा ने कहा।

'तो क्या कोई तुम्हारी लौंड़ी लगी है, जो ठहरकर ले आवेगी। लेना हो तो अभी ले ले।'

'मुझे भूख नहीं दाई!' तारा ने करुण स्वर में कहा।

'क्यों आज क्या है?'

'पेट में बड़ा दर्द हो रहा है।' कहते-कहते तारा कहारने लगी। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। दाई ने पास आकर देखा, फिर चली गयी। थोड़ी देर में डॉक्टर के साथ दाई आयी। डॉक्टर ने परीक्षा की। फिर दाई से कुछ संकेत किया। डॉक्टर चला गया। दाई ने कुछ समान लाकर वहाँ रखा और भी एक दूसरी दाई आ गयी। तारा की व्यथा बढ़ने लगी-वही कष्ट जिसे स्त्रियाँ ही झेल सकती हैं, तारा के लिए असह्य हो उठा, वह प्रसव पीड़ा से मूर्च्छित हो गयी। कुछ क्षणों में चेतना हुई, फिर पीड़ा होने लगी। दाई ने अवस्था भयानक होने की सूचना डॉक्टर को दी। वह प्रसव कराने के लिए प्रस्तुत होकर आया। सहसा बड़े कष्ट से तारा ने पुत्र-प्रसव किया। डॉक्टर ने भीतर आने की आवश्यकता न समझी, वह लौट गया। सूतिका-कर्म में शिक्षित दाइयों ने शिशु सँभाला।

तारा जब सचेत हुई, नवजात शिशु को देखकर एक बार उसके मुख पर मुस्कराहट आ गयी।

तारा रुग्ण थी, उसका दूध नहीं पिलाया जाता। वह दिन में दो बार बच्चे को गोद में ले पाती, पर गोद में लेते ही उसे जैसे शिशु से घृणा हो जाती। मातृस्नेह उमड़ता, परन्तु उसके कारण तारा की जो दुर्दशा हुई थी, वह सामने आकर खड़ी हो जाती। तारा काँप उठती। महीनों बीत गये। तारा कुछ चलने-फिरने योग्य हुई। उसने सोचा-महात्मा ने कहा था कि बालक उत्पन्न होने पर तुम स्वतंत्र हो, जो चाहे कर सकती हो। अब मैं अब अपना जीवन क्यों रखूँ। अब गंगा माई की गोद में चलूँ। इस दुखमय जीवन से छुटकारा पाने का दूसरा उपाय नहीं।

तीन पहर रात बीत चुकी थी। शिशु सो रहा था, तारा जाग रही थी। उसने एक बार उसके मुख का चुम्बन किया, वह चौंक उठा, जैसे हँस रहा हो। फिर उसे थपकियाँ देने लगी। शिशु निधड़क हो गया। तारा उठी, अस्पताल से बाहर चली आयी। पगली की तरह गंगा की ओर चली। निस्तब्ध रजनी थी। पवन शांत था। गंगा जैसे सो रही थी। तारा ने उसके अंक में गिरकर उसे चौंका दिया। स्नेहमयी जननी के समान गंगा ने तारा को अपने वक्ष में ले लिया।

हरिद्वार की बस्ती से कई कोस दूर गंगा-तट पर बैठे हुए एक महात्मा अरुण को अर्ध्य दे रहे थे। सामने तारा का शरीर दिखलाई पड़ा, अंजलि देकर तुरन्त महात्मा ने जल में उतरकर उसे पकड़ा। तारा जीवित थी। कुछ परिश्रम के बाद जल पेट से निकला। धीरे-धीरे उसे चेतना हुई। उसने आँख खोलकर देखा कि एक झोंपड़ी में पड़ी है। तारा की आँखों से भी पानी निकलने लगा-वह मरने जाकर भी न मर सकी। मनुष्य की कठोर करुणा को उसने धिक्कार दिया।

परन्तु महात्मा की शुश्रूषा से वह कुछ ही दिनों में स्वस्थ हो गयी। अभागिनी ने निश्चय किया कि गंगा का किनारा न छोड़ूँगी-जहाँ यह भी जाकर विलीन हो जाती है, उस समुद्र में जिसका कूल-किनारा नहीं, वहाँ चलकर डूबूँगी, देखूँ कौन बचाता है। वह गंगा के किनारे चली। जंगली फल, गाँवों की भिक्षा, नदी का जल और कन्दराएँ उसकी यात्रा में सहायक थे। वह दिन-दिन आगे बढ़ती जाती थी।

(5)

जब हरिद्वार से श्रीचन्द्र किशोरी को लिवा ले गये और छः महीने बाद एक पुत्र उत्पन्न हुआ, तब से किशोरी के प्रति उनकी घृणा बढ़ गयी। वे अपने भाव,

समाज में तो प्रकट न कर सके, पर मन में दरार पड़ गयी। बहुत सोचने पर श्रीचन्द्र ने यही स्थिर किया कि किशोरी काशी जाकर अपनी जारज-संतान के साथ रहे और उसके खर्च के लिए वह कुछ भेजा करें।

पुत्र पाकर किशोरी पति से वंचित हुई और वह काशी के एक सुविस्तृत गृह में रहने लगी। अमृतसर में यह प्रसिद्ध किया गया कि यहाँ माँ-बेटों का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता।

श्रीचन्द्र अपने कार-बार में लग गये, वैभव का परदा बहुत मोटा होता है।

किशोरी के भी दिन अच्छी तरह बीतने लगे। देवनिरंजन भी कभी-कभी काशी आ जाते और उन दिनों किशोरी की नयी सहेलियाँ भी इकट्ठी हो जातीं।

बाबा जी की काशी में बड़ी धूम थी। प्रायः किशोरी के घर पर भण्डारा होता। बड़ी सुख्याति फैल चली। किशोरी की प्रतिष्ठा बढ़ी। वह काशी की एक भद्र महिला गिनी जाने लगी। ठाकुर जी की सेवा बड़े ठाट से होती। धन की कमी न थी, निरंजन और श्रीचन्द्र दोनों ही रुपये भेजते रहते।

किशोरी के ठाकुर जिस कमरे में रहते थे, उसके आगे दालान था। संगमरमर की चौकी पर स्वामी देवनिरंजन बैठते। चिकें लगा दी जातीं। भक्त महिलाओं का भी समारोह होता। कीर्तन, उपासना और गीत की धूम मच जाती। उस समय निरंजन सचमुच भक्त बन जाता, उसका अद्वैत ज्ञान उसे निस्सार प्रतीत होता, क्योंकि भक्ति में भगवान का अवलम्बन रहता है। सांसारिक सब आपदा-विपदाओं के लिए कच्चे ज्ञानी को अपने ही ऊपर निर्भर करने में बड़ा कष्ट होता है। इसलिए गृहस्थों के सुख में फँसे हुए निरंजन को बाध्य होकर भक्त बनना पड़ा। आभूषणों से लदी हुई वैभव-मूर्ति के सामने उसका कामनापूर्ण हृदय झुक जाता। उसकी अपराध में लदी हुई आत्मा अपनी मुक्ति के लिए दूसरा उपाय न देखती। बड़े गर्व से निरंजन लोगों को गृहस्थ बने रहने का उपदेश देता, उसकी वाणी और भी प्रखर हो जाती। जब वह गृर्हस्थ्य जीवन का समर्थन करने लगता, वह कहता कि 'भगवान सर्वभूत हिते रत हैं, संसार-यात्रा गृर्हस्थ्य जीवन में ही भगवान् की सर्वभूतहित कामना के अनुसार हो सकती है। दुखियों की सहायता करना, सुखी लोगों को देखकर प्रसन्न होना, सबकी मंगलकामना करना, यह साकार उपासना के प्रवृत्ति-मार्ग के ही साध्य हैं।' इन काल्पनिक दार्शनिकताओं से उसे अपने लिए बड़ी आशा थी। वह धीरे-धीरे हृदय से विश्वास करने लगा कि साधु-जीवन असंगत है, ढोंग है। गृहस्थ होकर लोगों का अभाव-मोचन करना भी भगवान की कृपा के

लिये यथेष्ट है। प्रकट में तो नहीं, पर विजयचन्द्र पर पुत्र का-सा, किशोरी पर स्त्री का-सा विचार रखने का उसे अभ्यास हो चला।

किशोरी अपने पति को भूल-सी गयी। जब रुपयों का बीमा आता, तब ऐसा भासता, मानो उसका कोई मुनीम अमृतसर का कार-बार देखता हो और उसे कोठी से लाभ का अंश भेजा करता हो। घर के काम-काज में वह बड़ी चतुर थी। अमृतसर के आये हुए सब रुपये उसके बचते थे। उसमें बराबर स्थावर सम्पत्ति खरीदी जाने लगी। किशोरी को किसी बात की कमी न रह गयी।

विजयचन्द्र स्कूल में बड़े ठाट से पढ़ने जाता था। स्कूल के मित्रों की कमी न थी। वह आये दिन अपने मित्रों को निमंत्रण देकर बुलवाता था। स्कूल में उसकी बड़ी धाक थी।

विद्यालय के समाने शस्य-श्यामल समतल भूमि पर छात्रों का झुंड इधर-उधर घूम रहा था। दस बजने में कुछ विलम्ब था। शीतकाल की धूप छोड़कर क्लास के कमरों में घुसने के लिए अभी विद्यार्थी प्रस्तुत न थे।

'विजय ही तो है।' एक ने कहा।

'घोड़ा उसके वश में नहीं है, अब गिरा ही चाहता है।' दूसरे ने कहा।

पवन से विजय के बाल बिखर रहे थे, उसका मुख भय से विवर्ण था। उसे अपने गिर जाने की निश्चित आशंका थी। सहसा एक युवक दौड़ता हुआ आगे बढ़ा, बड़ी तत्परता से घोड़े की लगाम पकड़कर उसके नथुने पर सबल घूँसा मारा। दूसरे क्षण वह उच्छृंखल अश्व सीधा होकर खड़ा हो गया। विजय का हाथ पकड़कर उसने धीरे से उतार लिया। अब तो और भी कई लड़के एकत्र हो गये। युवक का हाथ पकड़े हुए विजय उसके होस्टल की ओर चला। वह एक सिनेमा का-सा दृश्य था। युवक की प्रशंसा में तालियाँ बजने लगीं।

विजय उस युवक के कमरे में बैठा हुआ बिखरे हुए सामानों को देख रहा था। सहसा उसने पूछा, 'आप यहाँ कितने दिनों से हैं?'

'थोड़े ही दिन हुए हैं?'

'यह किस लिपि का लेख है?'

'मैंने पाली का अध्ययन किया है।'

इतने में नौकर ने चाय की प्याली समाने रख दी। इस क्षणिक घटना ने दोनों को विद्यालय की मित्रता के पार्श्व में बाँध दिया, परन्तु विजय बड़ी उत्सुकता से युवक के मुख की ओर देख रहा था, उसकी रहस्यपूर्ण उदासीन मुखकान्ति विजय के अध्ययन की वस्तु बन रही थी।

'चोट तो नहीं लगी?' अब जाकर युवक ने पूछा।

कृतज्ञ होते हुए विजय ने कहा, 'आपने ठीक समय पर सहायता की, नहीं तो आज अंग-भंग होना निश्चित था।'

'वाह, इस साधारण आतंक में ही तुम अपने को नहीं सँभाल सकते थे, अच्छे सवार हो!' युवक हँसने लगा।

'किस शुभनाम से आपका स्मरण करूँगा?'

'तुम विचित्र जीव हो, स्मरण करने की आवश्यकता क्या, मैं तो प्रतिदिन तुमसे मिल सकता हूँ।' कहकर युवक जोर से हँसने लगा।

विजय उसके स्वच्छन्द व्यवहार और स्वतन्त्र आचरण को चकित होकर देख रहा था। उसके मन में इस युवक के प्रति अकारण श्रद्धा उत्पन्न हुई। उसकी मित्रता के लिए वह चंचल हो उठा। उसने पूछा, 'आपके यहाँ आने में कोई बाधा तो नहीं।'

युवक ने कहा, 'मंगलदेव की कोठरी में आने के लिए किसी को भी रोक-टोक नहीं, फिर तुम तो आज से मेरे अभिन्न हो गये हो!'

समय हो गया था। होस्टल से निकलकर दोनों विद्यालय की ओर चले। भिन्न-भिन्न कक्षाओं से पढ़ते हुए दोनों का एक बार मिल जाना अनिवार्य होता। विद्यालय के मैदान में हरी-हरी धूप पर आमने-सामने लेटे हुए दोनों बड़ी देर तक प्राय: बातें किया करते। मंगलदेव कुछ कहता था और विजय बड़ी उत्सुकता से सुनते हुए अपना आदर्श संकलन करता।

कभी-कभी होस्टल से मंगलदेव विजय के घर पर आ जाता, वहाँ से घर का-सा सुख मिलता। स्नेह-सरल स्नेह ने उन दोनों के जीवन में गाँठ दे दी।

किशोरी के यहाँ शरदपूर्णिमा का शृंगार था। ठाकुर जी चन्द्रिका में रत्न-आभूषणों से सुशोभित होकर शृंगार-विग्रह बने थे। चमेली के फूलों की बहार थी। चाँदनी में चमेली का सौरभ मिल रहा था। निरंजन रास की राका-रजनी का विवरण सुना रहा था। गोपियों ने किस तरह उमंग से उन्मत्त होकर कालिन्दी-कूल में कृष्णाचन्द्र के साथ रास-क्रीड़ा में आनन्द विह्वल होकर शुल्क दासियों के समान आत्मसमपर्ण किया था, उसका मादक विवरण स्त्रियों के मन को बेसुध बना रहा था। मंगलगान होने लगा। निरंजन रमणियों के कोकिल कंठ में अभिभूत होकर तकिये के सहारे टिक गया। रातभर गीत-वाद्य का समारोह चला।

विजय ने एक बार आकर देखा, दर्शन किया, प्रसाद लेकर जाना चाहता था कि समाने बैठी हुई सुन्दरियों के झुण्ड पर सहसा दृष्टि पड़ गयी। वह रुक गया। उसकी इच्छा हुई कि बैठ जाये, परन्तु माता के सामने बैठने का साहस न हुआ। जाकर अपने कमरे में लेटा रहा। अकस्मात् उसके मन में मंगलदेव का स्मरण हो गया। वह रहस्यपूर्ण युवक के चारों ओर उसके विचार लिपट गये, परन्तु वह मंगल के सम्बन्ध में कुछ निश्चित नहीं कर सका, केवल एक बात उसके मन में जग रही थी–मंगल की मित्रता उसे वांछित है। वह सो गया। स्कूल में पढ़ने वाला विजय इस अपने उत्सवों की प्रामाणिकता की जाँच स्वप्न में करने लगा। मंगल से इसके सम्बन्ध में विवाद चलता रहा। वह कहता कि–मन एकाग्र करने के लिए हिन्दुओं के यहाँ यह एक अच्छी चाल है। विजय तीव्र से विरोध करता हुआ कह उठा–इसमें अनेक दोष हैं, केवल एक अच्छे फल के लिए बहुत से दोष करते रहना अन्याय है। मंगल ने कहा–अच्छा फिर किसी दिन समझाऊँगा।

विजय की आँख खुली, सवेरा हो गया था। उसके घर में हलचल मची हुई थी। उसने दासी से पूछा, 'क्या बात है?'

दासी ने कहा, 'आज का भण्डारा है।'

विजय विरक्त होकर अपनी नित्यक्रिया में लगा। साबुन पर क्रोध निकालने लगा, तौलिये की दुर्दशा हो गयी। कल का पानी बेकार गिर रहा था, परन्तु वह आज नहाने की कोठरी से बाहर निकलना ही नहीं चाहता था। तो भी समय पर स्कूल चला गया। किशोरी ने कहा भी, 'आज न जा, साधुओं का भोजन है, उनकी सेवा...।'

बीच ही में बात काटकर विजय ने कहा, 'आज फुटबॉल है, मुझे शीघ्र जाना है।'

विजय बड़ी उत्तेजित अवस्था में स्कूल चला गया।

मंगल के कमरे का जंगला खुला था। चमकीली धूप उसमें प्रकाश फैलाये थी। वह अभी तक चद्दर लपेटे पड़ा था। नौकर ने कहा, 'बाबूजी, आज भी भोजन न कीजियेगा।'

बिना मुँह खोले मंगल ने कहा, 'नहीं।'

भीतर प्रवेश करते हुए विजय ने पूछा, 'क्यों क्या। आज जी नहीं आज तीसरा दिन है।'

नौकर ने कहा, 'देखिये बाबूजी, तीन दिन हो गये, कोई दवा भी नहीं करते, न कुछ खाते ही हैं।'

विजय ने चद्दर के भीतर हाथ डालकर बदन टटोलते हुए कहा, 'ज्वर तो नहीं है।'

नौकर चला गया। मंगल ने मुँह खोला, उसका विवर्ण मुख अभाव और दुर्बलता का क्रीड़ा-स्थल बना था। विजय उसे देखकर स्तब्ध रह गया। सहसा उसने मंगल का हाथ पकड़कर घबराते हुए स्वर में पूछा, 'क्या सचमुच कोई बीमारी है?'

मंगलदेव ने बड़े कष्ट के साथ आँखों में आँसू रोककर कहा, 'बिना बीमारी के भी कोई यों ही पड़ा रहता है।'

विजय को विश्वास न हुआ। उसने कहा, 'मेरे सिर की सौगन्ध, कोई बीमारी नहीं है, तुम उठो, आज मैं तुम्हें निमंत्रण देने आया हूँ, मेरे यहाँ चलना होगा।'

मंगल ने उसके गाल पर चपत लगाते हुए कहा, 'आज तो मैं तुम्हारे यहाँ ही पथ्य लेने वाला था। यहाँ के लोग पथ्य बनाना नहीं जानते। तीन दिन के बाद इनके हाथ का भोजन बिल्कुल असंगत है।'

मंगल उठ बैठा। विजय ने नौकर को पुकारा और कहा, 'बाबू के लिए जल्दी चाय ले आओ।' नौकर चाय लेने गया।

विजय ने जल लाकर मुँह धुलाया। चाय पीकर, मंगल चारपाई छोड़कर खड़ा हो गया। तीन दिन के उपवास के बाद उसे चक्कर आ गया और वह बैठ गया। विजय उसका बिस्तर लपेटने लगा। मंगल ने कहा, 'क्या करते हो विजय ने बिस्तर बाँधते हुए कहा, 'अभी कई दिन तुम्हें लौटना न होगा, इसलिए सामान बाँधकर ठिकाने से रख दूँ।'

मंगल चुप बैठा रहा। विजय ने एक कुचला हुआ सोने का टुकड़ा उठा लिया और उसे मंगलदेव को दिखाकर कहा, 'यह क्या फिर साथ ही लिपटा हुआ एक भोजपत्र भी उसके हाथ लगा। दोनों को देखकर मंगल ने कहा, 'यह मेरा रक्षा कवच है, बाल्यकाल से उसे मैं पहनता था। आज इसे तोड़ देने की इच्छा हुई।'

विजय ने उसे जेब में रखते हुए कहा, 'अच्छा, मैं ताँगा ले आने जाता हूँ।'

थोड़ी ही देर में ताँगा लेकर विजय आ गया। मंगल उसके साथ ताँगे पर जा बैठा, दोनों मित्र हँसना चाहते थे। पर हँसने में उन्हें दुःख होता था।

विजय अपने बाहरी कमरे में मंगलदेव को बिठाकर घर में गया। सब लोग व्यस्त थे, बाजे बज रहे थे। साधु-ब्राह्मण खा-पीकर चले गये थे। विजय अपने हाथ से भोजन का सामान ले गया। दोनों मित्र बैठकर खाने-पीने लगे।

दासियाँ जूठी पत्तल बाहर फेंक रही थीं। ऊपर की छत से पूरी और मिठाइयों के टुकड़ों से लदी हुई पत्तलें उछाल दी थीं। नीचे कुछ अछूत डोम और डोमनियाँ खड़ी थीं, जिनके सिर पर टोकरियाँ थीं, हाथ में डंडे थे-जिनसे वे कुत्तों को हटाते थे और आपस में मार-पीट, गाली-गलौज करते हुए उस उच्छिष्ट की लूट मचा रहे थे-वे पुश्त-दर-पुश्त के भूखे!

मालकिन झरोखे से अपने पुण्य का यह उत्सव देख रही थी-एक राह की थकी हुई दुर्लब युवती भी। उसी भूख की, जिससे वह स्वयं अशक्त हो रही थी, यह वीभत्स लीला थी! वह सोच रही थी-क्या संसार भर में पेट की ज्वाला मनुष्य और पशुओं को एक ही समान सताती है ये भी मनुष्य हैं और इसी धार्मिक भारत के मनुष्य जो कुत्तों के मुँह के टुकड़े भी छीनकर खाना चाहते हैं। भीतर जो पुण्य के नाम पर, धर्म के नाम पर गुरछर्रे उड़ रहे हैं, उसमें वास्तविक भूखों का कितना भाग है, यह पत्तलों के लूटने का दृश्य बतला रहा है। भगवान! तुम अन्तर्यामी हो।

युवती निर्बलता से न चल सकती थी। वह साहस करके उन पत्तल लूटने वालों के बीच में से निकल जाना चाहती थी। वह दृश्य असह्य था, परन्तु एक डोमिन ने समझा कि यह उसी का भाग छीनने आयी है। उसने गन्दी गालियाँ देते हुए उस पर आक्रमण करना चाहा, युवती पीछे हटी, परन्तु ठोकर लगते ही गिर पड़ी।

उधर विजय और मंगल में बातें हो रही थीं। विजय ने मंगल से कहा, 'यही तो इस पुण्य धर्म का दृश्य है! क्यों मंगल! क्या और भी किसी देश में इसी प्रकार का धर्म-संचय होता है जिन्हें आवश्यकता नहीं, उनको बिठाकर आदर से भोजन कराया जाये, केवल इस आशा से कि परलोक में वे पुण्य-संचय का प्रमाण-पत्र देंगे, साक्षी देंगे और इन्हें, जिन्हें पेट ने सता रखा है, जिनको भूख ने अधमरा बना दिया है, जिनकी आवश्यकता नंगी होकर वीभत्स नृत्य कर रही है-वे मनुष्य कुत्तों के साथ जूठी पत्तलों के लिए लड़ें, यही तो तुम्हारे धर्म का उदाहरण है!'

किशोरी को उस पर ध्यान देते देखकर विजय अपने कमरे में चला गया। किशोरी ने पूछा, 'कुछ खाओगी।'

युवती ने कहा, 'हाँ, मैं भूखी अनाथ हूँ।'

किशोरी को उसकी छलछलाई आँखें देखकर दया आ गयी। कहा, 'दुखी न हो, तुम यहीं रहा करो।'

'फिर मुँह छिपाकर पड़ गए! उठो, मैं अपने बनाये हुए कुछ चित्र दिखाऊँ।'

'बोलो मत विजय! कई दिन के बाद भोजन करने पर आलस्य मालूम हो रहा है।'

'पड़े रहने से तो और भी सुस्ती बढ़ेगी।'

'मैं कुछ घण्टों तक सोना चाहता हूँ।'

विजय चुप रह गया। मंगलदेव के व्यवहार पर उसे कौतूहल हो रहा था। वह चाहता था कि बातों में उसके मन की अवस्था जान ले, परन्तु उसे अवसर न मिला। वह भी चुपचाप सो रहा।

नींद खुली, तब लम्प जला दिये गये थे। दूज का चन्द्रमा पीला होकर अभी निस्तेज था, हल्की चाँदनी धीरे-धीरे फैलने लगी। पवन में कुछ शीतलता थी। विजय ने आँखें खोलकर देखा, मंगल अभी पड़ा था। उसने जगाया और हाथ-मुँह धोने के लिए कहा।

दोनों मित्र आकर पाई-बाग में पारिजात के नीचे पत्थर पर बैठ गये। विजय ने कहा, 'एक प्रश्न है।'

मंगल ने कहा, 'प्रत्येक प्रश्न के उत्तर भी हैं, कहो भी।'

'क्यों तुमने रक्षा-कवच तोड़ डाला क्या उस पर से विश्वास उठ गया'

'नहीं विजय, मुझे उस सोने की आवश्यकता थी।' मंगल ने बड़ी गम्भीरता से कहा, 'क्यों?'

'इसके लिए घण्टों का समय चाहिए, तब तुम समझ सकोगे। अपनी वह रामकहानी पीछे सुनाऊँगा, इस समय केवल इतना ही कहे देता हूँ कि मेरे पास एक भी पैसा न था और तीन दिन इसीलिए मैंने भोजन भी नहीं किया। तुमसे यह कहने में मुझे लज्जा नहीं।'

'यह तो बड़े आश्चर्य की बात है!'

'आश्चर्य इसमें कौन-सा अभी तुमने देखा है कि इस देश की दरिद्रता कैसी विकट है-कैसी नृशंस है! कितने ही अनाहार से मरते हैं! फिर मेरे लिए आश्चर्य क्यों इसलिए कि मैं तुम्हारा मित्र हूँ?'

'मंगलदेव! दुहाई है, घण्टों नहीं मैं रात-भर सुनूँगा। तुम अपना रहस्यपूर्ण वृत्तांत सुनाओ। चलो, कमरे में चलें। यहाँ ठंड लग रही है।'

'भीतर तो बैठे ही थे, फिर यहाँ आने की क्या आवश्यकता थी अच्छा चलो, परन्तु एक प्रतिज्ञा करनी होगी।'

'वह क्या?'

'मेरा सोना बेचकर कुछ दिनों के लिए मुझे निश्चिन्त बना दो।'

'अच्छा भीतर तो चलो।'

कमरे में पहुँचकर दोनों मित्र पहुँचे ही थे कि दरवाजे के पास से किसी ने पूछा, 'विजय, एक दुखिया स्त्री आयी है, मुझे आवश्यकता भी है, तू कहे तो उसे रख लूँ।'

'अच्छी बात है माँ! वही ना जो बेहोश हो गयी थी!'

'हाँ वही, बिल्कुल अनाथ है।'

'उसे अवश्य रख लो।' एक शब्द हुआ, मालूम हुआ कि पूछने वाली चली गयी थी, तब विजय ने मंगलदेव से कहा, 'अब कहो!'

मंगलदेव ने कहना प्रारम्भ किया, 'मुझे एक अनाथालय से सहायता मिलती थी और मैं पढ़ता था। मेरे घर कोई है कि नहीं यह भी मुझे मालूम नही, पर जब मैं सेवा समिति के काम से पढ़ाई छोड़कर हरिद्वार चला गया, तब मेरी वृत्ति बंद हो गयी। मैं घर लौट आया। आर्यसमाज से भी मेरा कुछ सम्पर्क था, परन्तु मैंने देखा कि वह खण्डनात्मक है, समाज में केवल इसी से काम नहीं चलता। मैंने भारतीय समाज का ऐतिहासिक अध्ययन करना चाहा और इसलिए पाली, प्राकृत का पाठ्यक्रम स्थिर किया। भारतीय धर्म और समाज का इतिहास तब तक अधूरा रहेगा, जब तक पाली और प्राकृत का उससे सम्बन्ध न हो, परन्तु मैं बहुत चेष्टा करके भी सहायता प्राप्त न कर सका, क्योंकि सुनता हूँ कि वह अनाथालय भी टूट गया।'

विजय-'तुमने रहस्य की बात तो कही ही नहीं।'

मंगल-'विजय! रहस्य यही कि मैं निर्धन हूँ, मैं अपनी सहायता नहीं कर सकता। मैं विश्वविद्यालय की डिग्री के लिए नहीं पढ़ रहा हूँ। केवल कुछ महीनों की आवश्यकता है कि मैं अपनी पाली की पढ़ाई प्रोफेसर देव से पूरी कर लूँ। इसलिए मैं यह सोना बेचना चाहता हूँ।'

विजय ने उस यंत्र को देखा, सोना तो उसने एक ओर रख दिया। परन्तु भोजपत्र के छोटे से बंडल को, जो उसके भीतर था, विजय ने मंगल का मुँह देखते-देखते कौतूहल से खोलना आरम्भ किया। उसका कुछ अंश खुलने पर दिखाई दिया कि उसमें लाल रंग के अष्टगंध से कुछ स्पष्ट प्राचीन लिपि है। विजय ने उसे खोलकर फेंकते हुए कहा, 'लो यह किसी देवी, देवता का पूरा स्तोत्र भरा पड़ा है।'

मंगल ने उसे आश्चर्य से उठा लिया। वह लिपि को पढ़ने की चेष्टा करने लगा। कुछ अक्षरों को वह पढ़ भी सका, परन्तु वह प्राकृत न थी, संस्कृत थी। मंगल ने उसे समेटकर जेब में रख लिया। विजय ने पूछा, 'क्या है कुछ पढ़ सके?'

'कल इसे प्रोफेसर देव से पढ़वाऊँगा। यह तो कोई शासन-पत्र मालूम पड़ता है।'

'तो क्या इसे तुम नहीं पढ़ सकते?'

'मैंने तो अभी प्रारम्भ किया है, कुछ पढ़ देते हैं।'

'अच्छा मंगल! एक बात कहूँ, तुम मानोगे मेरी भी पढ़ाई सुधर जाएगी।'

'क्या?'

'तुम मेरे साथ रहा करो, अपना चित्रों का रोग मैं छुड़ाना चाहता हूँ।'

'तुम स्वतंत्र नहीं हो विजय! क्षणिक उमंग में आकर हमें वह काम नहीं करना चाहिए, जिससे जीवन के कुछ ही लगातार दिनों के पिरोये जाने की संभावना हो, क्योंकि उमंग की उड़ान नीचे आया करती है।'

'नहीं मंगल! मैं माँ से पूछ लेता हूँ।' कहकर विजय तेजी से चला गया। मंगल हाँ-हाँ ही कहता रह गया। थोड़ी देर में ही हँसता हुआ लौट आया और बोला, 'माँ तो कहती हैं कि उसे यहाँ से न जाने दूँगी।'

वह चुपचाप विजय के बनाये कलापूर्ण चित्रों को, जो उसके कमरे में लगे थे, देखने लगा। इसमें विजय की प्राथमिक कृतियाँ थीं। अपूर्ण मुखाकृति, रंगों के छीटे से भरे हुए कागज तक चौखटों में लगे थे।

आज से किशोरी की गृहस्थी में दो व्यक्ति और बढ़े।

(6)

आज बड़ा समारोह है। निरंजन चाँदी के पात्र निकालकर दे रहा है-आरती, फूल, चंगेर, धूपदान, नैवेद्यपात्र और पंचपात्र इत्यादि माँज-धोकर साफ किये जा रहे हैं। किशोरी मेवा, फल, धूप, बत्ती और फूलों की राशि एकत्र किये उसमें सजा रही है। घर के सब दास-दासियाँ व्यस्त हैं। नवागत युवती घूँघट निकाले एक ओर खड़ी है।

निरंजन ने किशोरी से कहा, 'सिंहासन के नीचे अभी धुला नहीं है, किसी से कह दो कि वह स्वच्छ कर दे।'

किशोरी ने युवती की ओर देखकर कहा, 'जा उसे धो डाल!'

युवती भीतर पहुँच गयी। निरंजन ने उसे देखा और किशोरी से पूछा, 'यह कौन है?'

किशोरी ने कहा, 'वही जो उस दिन रखी गयी है।'

निरंजन ने झिड़ककर कहा, 'ठहर जा, बाहर चल।' फिर कुछ क्रोध से किशोरी की ओर देखकर कहा, 'यह कौन है, कैसी है, देवगृह में जाने योग्य है कि नहीं, समझ लिया है या यों ही जिसको हुआ कह दिया।'

श्क्यों, मैं उसे तो नहीं जानती।'

श्यदि अछूत हो, अंत्यज हो, अपवित्र हो?'

श्तो क्या भगवान् उसे पवित्र नहीं कर देंगे आप तो कहते हैं कि भगवान् पतित-पावन हैं, फिर बड़े-बड़े पापियों को जब उद्धार की आशा है, तब इसको क्यों वंचित किया जाये कहते-कहते किशोरी ने रहस्य भरी मुस्कान चलायी।

निरंजन क्षुब्ध हो गया, परन्तु उसने कहा, 'अच्छा शास्त्रार्थ रहने दो। इसे कहो कि बाहर चली जाये।' निरंजन की धर्म-हठ उत्तेजित हो उठी थी।

किशोरी ने कुछ कहा नहीं, पर युवती देवगृह के बाहर चली गई और एक कोने में बैठकर सिसकने लगी। सब अपने कार्य में व्यस्त थे। दुखिया के रोने की किसे चिन्ता थी! वह भी जी हल्का करने के लिए खुलकर रोने लगी। उसे जैसे ठेस लगी थी। उसका घूँघट हट गया था। आँखों से आँसू की धारा बह रही थी। विजय, जो दूर से यह घटना देख रहा था, इस युवती के पीछे-पीछे चला आया था-कौतूहल से इस धर्म के क्रूर दम्भ को एक बार खुलकर देखने और तीखे तिरस्कार से अपने हृदय को भर लेने के लिए, परन्तु देखा तो वह दृश्य, जो उसके जीवन में नवीन था-एक कष्ट से सताई हुई सुन्दरी का रुदन!

विजय के वे दिन थे, जिसे लोग जीवन बसंत कहते हैं। जब अधूरी और अशुद्ध पत्रिकाओं के टूटे-फूटे शब्दों के लिए हृदय में शब्दकोश प्रस्तुत रहता है। जो अपने साथ बाढ़ में बहुत-सी अच्छी वस्तु ले आता है और जो संसार को प्यारा देखने का चश्मा लगा देता है। शैशव से अभ्यस्त सौन्दर्य को खिलौना समझकर तोड़ना ही नहीं, वरन् उसमें हृदय देखने की चाट उत्पन्न करता है। जिसे यौवन कहते हैं-शीतकाल में छोटे दिनों में घनी अमराई पर बिछलती हुई हरियाली से तर धूर के समान स्निग्ध यौवन!

इसी समय मानव-जीवन में जिज्ञासा जगती है। स्नेह, संवेदना, सहानुभूति का ज्वार आता है। विजय का विप्लवी हृदय चंचल हो गया। उसमें जाकर पूछा, 'यमुना, तुम्हें किसी ने कुछ कहा है?'

यमुना निःसंकोच भाव से बोली, 'मेरा अपराध था।'

'क्या अपराध था यमुना?'

'मैं देव-मन्दिर में चली गयी थी।'

'तब क्या हुआ?'

'बाबाजी बिगड़ गये।'

'रो मत, मैं उनसे पूछूँगा।'

'मैं उनके बिगड़ने पर नहीं रोती हूँ, रोती हूँ तो अपने भाग्य पर और हिन्दू समाज की अकारण निष्ठुरता पर, जो भौतिक वस्तुओं में तो बंटा लगा ही चुका है, भगवान पर भी स्वतंत्र भाग का साहस रखता है!'

क्षणभर के लिए विजय विस्मय-विमुग्ध रहा, यह दासी-दीन-दुखिया, इसके हृदय में इतने भाव उसकी सहानुभूति उच्छृंखल हो उठी, क्योंकि यह बात उसके मन की थी। विजय ने कहा, 'न रो यमुना! जिसके भगवान् सोने-चाँदी से घिरे रहते हैं, उनको रखवाली की आवश्यकता होती है।'

यमुना की रोती आँखें हँस पड़ीं, उसने कृतज्ञता की दृष्टि से विजय को देखा। विजय भूलभुलैया में पड़ गया। उसने स्त्री की-एक युवती स्त्री की-सरल सहानुभूति कभी पाई न थी। उसे भ्रम हो गया जैसे बिजली कौंध गयी हो। वह निरंजन की ओर चला, क्योंकि उसकी सब गर्मी निकालने का यही अवसर था।

निरंजन अन्नकूट के सम्भार में लगा था। प्रधान याजक बनकर उत्सव का संचालन कर रहा था। विजय ने आते ही आक्रमण कर दिया, 'बाबाजी आज क्या है?'

निरंजन उत्तेजित तो था ही, उसने कहा, 'तुम हिन्दू हो कि मुसलमान नहीं जानते, आज अन्नकूट है।'

'क्यों, क्या हिन्दू होना परम सौभाग्य की बात है? जब उस समाज का अधिकांश पददलित और दुर्दशाग्रस्त है, जब उसके अभिमान और गौरव की वस्तु धरापृष्ठ पर नहीं बची-उसकी संस्कृति विडम्बना, उसकी संस्था सारहीन और राष्ट्र-बौद्धों के सदृश बन गया है, जब संसार की अन्य जातियाँ सार्वजनिक भ्रातृभाव और साम्यवाद को लेकर खड़ी हैं, तब आपके इन खिलौनों से भला उसकी सन्तुष्टि होगी?'

'इन खिलौनों'-कहते-कहते इसका हाथ देवविग्रह की ओर उठ गया था। उसके आक्षेपों का जो उत्तर निरंजन देना चाहता था, वह क्रोध के वेग में भूल गया और सहसा उसने कह दिया, 'नास्तिक! हट जा!'

विजय की कनपटी लाल हो गयी, बरौनियाँ तन गयीं। वह कुछ बोलना ही चाहता था कि मंगल ने सहसा आकर हाथ पकड़ लिया और कहा, 'विजय!'

विद्रोही वहाँ से हटते-हटते भी मंगल से यह कहे बिना नहीं रहा, धर्म के सेनापति विभीषिका उत्पन्न करके साधारण जनता से अपनी वृत्ति कमाते हैं और उन्हीं को गालियाँ भी सुनाते हैं, गुरुडम कितने दिनों तक चलेगा, मंगल?'

मंगल विवाद को बचाने के लिए उसे घसीटता ले चला और कहने लगा, 'चलो, हम तुम्हारा शास्त्रार्थ-निमंत्रण स्वीकार करते हैं।' दोनों अपने कमरे की ओर चले गये।

निरंजन पल भर में आकाश से पृथ्वी पर आ गया। वास्तविक वातावरण में क्षोभ और क्रोध, लज्जा और मानसिक दुर्बलता ने उसे चौतन्य कर दिया। निरंजन को उद्विग्न होकर उठते देख किशोरी, जो अब तक स्तब्ध हो रही थी, बोल उठी, 'लड़का है!'

निरंजन ने वहाँ से जाते-जाते कहा, 'लड़का है तो तुम्हारा है, साधुओं को इसकी चिंता क्या?' उसे अब भी अपने त्याग पर विश्वास था।

किशोरी निरंजन को जानती थी, उसने उन्हें रोकने का प्रयत्न नहीं किया। वह रोने लगी।

मंगल ने विजय से कहा, 'तुमको गुरुजनों का अपमान नहीं करना चाहिए। मैंने बहुत स्वाधीन विचारों को काम में ले आने की चेष्टा की है, उदार समाजों में घूमा-फिरा हूँ, पर समाज के शासन-प्रश्न पर और असुविधाओं में सब एक ही से दिख पड़े। मैं समाज में बहुत दिनों तक रहा, उससे स्वतंत्र होकर भी रहा, पर सभी जगह संकीर्णता है, शासन के लिए, क्योंकि काम चलाना पड़ता है न! समाज में एक-से उन्नत और एक-सी मनोवृत्ति वाले मनुष्य नहीं, सबको संतुष्ट और धर्मशील बनाने के लिए धार्मिक समस्याएँ कुछ-न-कुछ उपाय निकाला करती हैं।'

'पर हिन्दुओं के पास निषेध के अतिरिक्त और भी कुछ है? यह मत करो, वह मत करो, पाप है। जिसका फल यह हुआ कि हिन्दुओं को पाप को छोड़कर पुण्य कहीं दिखलायी ही नहीं पड़ता।' विजय ने कहा।

'विजय! प्रत्येक संस्थाओं का कुछ उद्देश्य है, उसे सफल करने के लिए कुछ नियम बनाये जाते हैं। नियम प्रातः निषेधात्मक होते हैं, क्योंकि मानव अपने को सब कुछ करने का अधिकारी समझता है। कुल थोड़े-से सुकर्म है और पाप अधिक हैं, जो निषेध के बिना नहीं रुक सकते। देखो, हम किसी

भी धार्मिक संस्था से अपना सम्बन्ध जोड़ लें, तो हमें उसकी कुछ परम्पराओं का अनुकरण करना ही पड़ेगा। मूर्तिपूजा के विरोधियों ने भी अपने-अपने अहिन्दू सम्प्रदायों में धर्म-भावना के केन्द्र स्वरूप कोई-न-कोई धर्म-चिह्न रख छोड़ा है। जिन्हें वे चूमते हैं, सम्मान करते हैं और उसके सामने सिर झुकाते हैं। हिन्दुओं ने भी अपनी भावना के अनुसार जन-साधारण के हृदय में भेदभाव करने का मार्ग चलाया है। उन्होंने मानव जीवन में क्रम-विकास का अध्ययन किया है। वे यह नहीं मानते कि हाथ-पैर, मुँह-आँख और कान समान होने से हृदय भी एक-सा होगा और विजय! धर्म तो हृदय से आचरित होता है न, इसलिए अधिकार भेद है।'

'तो फिर उसमें उच्च विचार वाले लोगों को स्थान नहीं, क्योंकि समता और विषमता का द्वन्द्व उसके मूल में वर्तमान है।'

'उनसे तो अच्छा है, जो बाहर से साम्य की घोषणा करके भी भीतर से घोर विभिन्न मत के हैं और वह भी स्वार्थ के कारण! हिन्दू समाज तुमको मूर्ति-पूजा करने के लिए बाध्य नहीं करता, फिर तुमको व्यंग्य करने का कोई अधिकार नहीं। तुम अपने को उपयुक्त समझते हो, तो उससे उच्चतर उपासना-प्रणाली में सम्मिलित हो जाओ। देखो, आज तुमने घर में अपने इस काण्ड के द्वारा भयानक हलचल मचा दी है। सारा उत्सव बिगड़ गया है।'

अब किशोरी भीतर चली गयी, जो बाहर खड़ी हुई दोनों की बातें सुन रही थी। वह बोली, 'मंगल ने ठीक कहा है। विजय, तुमने अच्छा काम नहीं किया। सब लोगों का उत्साह ठण्डा पड़ गया। पूजा का आयोजन अस्त-व्यस्त हो गया।' किशोरी की आँखें भर आयी थीं, उसे बड़ा क्षोभ था, पर दुलार के कारण विजय को वह कुछ कहना नहीं चाहती थी।

मंगल ने कहा, 'माँ! विजय को साथ लेकर हम इस उत्सव को सफल बनाने का प्रयत्न करेंगे, आप अपने को दु:खी न कीजिये।'

किशोरी प्रसन्न हो गयी। उसने कहा, 'तुम तो अच्छे लड़के हो। देख तो विजय! मंगल की-सी बुद्धि सीख!'

विजय हँस पड़ा। दोनों देव मन्दिर की ओर चले।

नीचे गाड़ी की हरहराहट हुई, मालूम हुआ निरंजन स्टेशन चला गया।

उत्सव में विजय ने बड़े उत्साह से भाग लिया, पर यमुना सामने न आयी, तो विजय के सम्पूर्ण उत्साह के भीतर यह गर्व हँस रहा था कि मैंने यमुना का अच्छा बदला निरंजन से लिया।

किशोरी की गृहस्थी नये उत्साह से चलने लगी। यमुना के बिना वह पल भर भी नहीं रह सकती। जिसको जो कुछ माँगना होता, यमुना से कहता। घर का सब प्रबन्ध यमुना के हाथ में था। यमुना प्रबन्धकारिणी और आत्मीय दासी भी थी।

विजयचन्द्र के कमरे का झाड़-पोंछ और रखना-उठाना सब यमुना स्वयं करती थी। कोई दिन ऐसा न बीतता कि विजय को उसकी नयी सुरुचि का परिचय अपने कमरे में न मिलता। विजय के पान खाने का व्यसन बढ़ चला था। उसका कारण था यमुना के लगाये स्वादिष्ट पान। वह उपवन से चुनकर फूलों की माला बना लेती। गुच्छे सजाकर फूलदान में लगा देती। विजय की आँखों में उसका छोटे-से-छोटा काम भी कौतूहल मिश्रित प्रसन्नता उत्पन्न करता, पर एक बात से अपने को सदैव बचाती रही-उसने अपना सामना मंगल से न होने दिया। जब कभी परसना होता-किशोरी अपने सामने विजय और मंगल, दोनों को खिलाने लगती। यमुना अपना बदन समेटकर और लम्बा घूँघट काढ़े हुए परस जाती। मंगल ने कभी उधर देखने की चेष्टा भी न की, क्योंकि वह भद्र कुटुम्ब के नियमों को भली-भाँति जानता था। इसके विरुद्ध विजयचन्द्र ऊपर से न कहकर, सदैव चाहता कि यमुना से मंगल परिचित हो जाये और उसकी यमुना की प्रतिदिन की कुशलता की प्रकट प्रशंसा करने का अवसर मिले।

विजय को इन दोनों रहस्यपूर्ण व्यक्तियों के अध्ययन का कौतूहल होता। एक ओर सरल, प्रसन्न, अपनी व्यवस्था से संतुष्ट मंगल, दूसरी ओर सबको प्रसन्न करने की चेष्टा करने वाली यमुना का रहस्यपूर्ण हँसी। विजय विस्मित था। उसके युवक-हृदय को दो साथी मिले थे-एक घर के भीतर, दूसरा बाहर। दोनों ही संयत भाव के और फूँक-फूँककर पैर रखने वाले! इन दोनों से मिल जाने की चेष्टा करता।

एक दिन मंगल और विजय बैठे हुए भारतीय इतिहास का अध्ययन कर रहे थे। कोर्स तैयार करना था। विजय ने कहा, 'भाई मंगल! भारत के इतिहास में यह गुप्त-वंश भी बड़ा प्रभावशाली था, पर उसके मूल पुरुष का पता नहीं चलता।'

'गुप्त-वंश भारत के हिन्दू इतिहास का एक उज्ज्वल पृष्ठ है। सचमुच इसके साथ बड़ी-बड़ी गौरव-गाथाओं का सम्बन्ध है।' बड़ी गंभीरता से मंगल ने कहा।

'परन्तु इसके अभ्युदय में लिच्छिवियों के नाश का बहुत कुछ अंश है, क्या लिच्छिवियों के साथ इन लोगों ने विश्वासघात नहीं किया?' विजय ने पूछा।

'हाँ, वैसा ही उनका अन्त भी तो हुआ। देखो, थानेसर के एक कोने से एक साधारण सामन्त-वंश गुप्त सम्राटों से सम्बन्ध जोड़ लेने में कैसा सफल हुआ और क्या इतिहास इसका साक्षी नहीं है कि मगध के गुप्त सम्राटों को बड़ी सरलता से उनके मानवीय पद से हटाकर ही हर्षवर्धन उत्तरा-पथेश्वर बन गया था। यह तो ऐसे ही चला करता है।' मंगल ने कहा।

'तो ये उनसे बढ़कर प्रतारक थे, वह वर्धन-वंश भी-' विजय और कुछ कहना चाहता ही था कि मंगल ने रोककर कहा, 'ठहरो विजय! वर्धनों के प्रति ऐसे शब्द कहना कहाँ तक संगत है तुमको मालूम है कि ये अपना पाप छिपाना भी नहीं चाहते। देखो, यह वही यंत्र है, जिसे तुमने फेंक दिया था। जो कुछ इसका अर्थ प्रोफेसर देव ने किया है, उसे देखो तो-' कहते-कहते मंगल ने जेब से निकालकर अपना यंत्र और उसके साथ एक कागज फेंक दिया। विजय ने यंत्र तो न उठाया, कागज उठाकर पढ़ने लगा-'शकमण्डलेवर महाराजपुत्र राज्यवर्धन इस लेख के द्वारा यह स्वीकार करते हैं कि चन्द्रलेखा का हमारा विवाह-सम्बन्ध न होते हुए भी यह परिणीता वधु के समान पवित्र और हमारे स्नेह की सुन्दर कहानी है, इसलिए इसके वंशधर साम्राज्य में वही सम्मान पावेंगे, जो मेरे वंशधरों को साधारणतः मिलता है।'

विजय के हाथ से पत्र गिर पड़ा। विस्मय से उसकी आँखें बड़ी हो गयीं। वह मंगल की ओर एक टक निहारने लगा। मंगल ने कहा, 'क्या है विजय?'

'पूछते हो क्या है! आज एक बड़ा भारी आविष्कार हुआ है, तुम अभी तक नहीं समझ सके। आश्चर्य है! क्या इससे यह निष्कर्ष नहीं निकल सकता कि तुम्हारी नसों में वही रक्त है, जो हर्षवर्धन की धमनियों में प्रवाहित था?'

'यह अच्छी दूर की सूझी! कहीं मेरे पूर्व-पुरुषों को यह मंगल-सूचक यंत्र में समझाकर बिना जाने-समझे तो नहीं दे दिया गया था इसमें...'

'ठहरो, यदि मैं इस प्रकार समझूँ, तो क्या बुरा कि यह चन्द्रलेखा के वंशधरों के पास वंशानुक्रम से चला आया हो और पीछे यह शुभ समझकर उस कुल के बच्चों को ब्याह होने तक पहनाया जाता रहा हो। तुम्हारे यहाँ उसका व्यवहार भी तो इसी प्रकार रहा है।'

मंगल के सिर में विलक्षण भावनाओं की गर्मी से पसीना चमकने लगा। फिर उसने हँसकर कहा, 'वाह विजय! तुम भी बड़े भारी परिहास रसिक हो!' क्षण भर में भारी गंभीरता चली गयी, दोनों हँसने लगे।

(7)

रजनी के बालों में बिखरे हुए मोती बटोरने के लिए प्राची के प्रांगण में उषा आयी और इधर यमुना उपवन में फूल चुनने के लिए पहुँची। प्रभात की फीकी चाँदनी में बचे हुए एक-दो नक्षत्र अपने को दक्षिण-पवन के झोंकों में विलीन कर देना चाहते हैं। कुन्द के फूल थले के श्यामल अंचल पर कसीदा बनाने लगे थे। गंगा के मुक्त वक्षस्थल पर घूमती हुई, मन्दिरों के खुलने की, घण्टों की प्रतिध्वनि, प्रभात की शान्त निस्तब्धता में एक संगीत की झनकार उत्पन्न कर रही थी। अन्धकार और आलोक की सीमा बनी हुई युवती के रूप को अस्त होने वाला पीला चन्द्रमा और लाली फेंकने वाली उषा, अभी स्पष्ट दिखला सकी थी कि वह अपनी डाली फूलों से भर चुकी और उस कड़ी सर्दी में भी यमुना मालती-कुंज की पत्थर की चौकी पर बैठी हुई, देर से आते हुए शहनाई के मधुर-स्वर में अपनी हृदयतंत्री मिला रही थी।

संसार एक अँगड़ाई लेकर आँख खोल रहा था। उसके जागरण में मुस्कान थी। नीड़ में से निकलते हुए पक्षियों के कलरव को वह आश्चर्य से सुन रही थी। वह समझ न सकती थी कि उन्हें उल्लास है! संसार में प्रवृत्त होने की इतनी प्रसन्नता क्यों दो-दो दाने बीनकर ले आने और जीवन को लम्बा करने के लिए इतनी उत्कंठा! इतना उत्साह! जीवन इतने सुख की वस्तु है

टप...टप...टप...टप...! यमुना चकित होकर खड़ी हो गयी। खिल-खिलाकर हँसने का शब्द हुआ। यमुना ने देखा-विजय खड़ा है! उसने कहा, 'यमुना, तुमने तो समझा होगा कि बिना बादलों की बरसात कैसी ?'

'आप ही थे-मालती-लता से ओस की बूँदें गिराकर बरसात का अभिनय करने वाले! यह जानकर मैं तो चौंक उठी थी।'

'हाँ यमुना! आज तो हम लोगों का रामनगर चलने का निश्चय है। तुमने तो सामान आदि बाँध लिये होंगे-चलोगी न?'

'बहूजी की जैसी आज्ञा होगी।'

इस बेबसी के उत्तर पर विजय के मन में बड़ी सहानुभूति उत्पन्न हुई। उसने कहा, 'नहीं यमुना, तुम्हारे बिना तो मेरा, कहते-कहते रुककर कहा, 'प्रबन्ध ही न हो सकेगा-जलपान, पान स्नान सब अपूर्ण रहेगा।'

'तो मैं चलूँगी।' कहकर यमुना कुंज से बाहर आयी। वह भीतर जाने लगी। विजय ने कहा, 'बजरा कब का ही घाट आ गया होगा, हम लोग चलते हैं। माँ को लिवाकर तुरन्त आओ।'

भागीरथी के निर्मल जल पर प्रभात का शीतल पवन बालकों के समान खेल रहा था–छोटी छोटी लहरियों के घरौंदे बनते–बिगड़ते थे। उस पार के वृक्षों की श्रेणी के ऊपर एक भारी चमकीला और पीला बिम्ब था। रेत में उसकी पीली छाया और जल में सुनहला रंग, उड़ते हुए पक्षियों के झुण्ड से आक्रान्त हो जाता था। यमुना बजरे की खिड़की में से एकटक इस दृश्य को देख रही थी और छत पर से मंगलदेव उसकी लम्बी उँगलियों से धारा का कटना देख रहा था। डाँडों का छप–छप शब्द बजरे की गति में ताल दे रहा था। थोड़ी ही देर में विजय माझी को हटाकर पतवार थामकर जा बैठा। यमुना सामने बैठी हुई डाली में फूल सँवारने लगी, विजय औरों की आँख बचाकर उसे देख लिया करता।

बजरा धारा पर बह रहा था। प्रकृति–चितेरी संसार का नया चित्र बनाने के लिए गंगा के ईषत् नील जल में सफेदा मिला रही थी। धूप कड़ी हो चली थी। मंगल ने कहा, 'भाई विजय! इस नाव की सैर से अच्छा होगा कि मुझे उस पार की रेत में उतार दो। वहाँ दो–चार वृक्ष दिखायी दे रहे हैं, उन्हीं की छाया में सिर ठण्डा कर लूँगा।'

'हम लोगों को तो अभी स्नान करना है, चलो वहीं नाव लगाकर हम लोग भी निपट लें।'

माझियों ने उधर की ओर नाव खेना आरम्भ किया। नाव रेत से टिक गयी। बरसात उतरने पर यह द्वीप बन गया था। अच्छा एकान्त था। जल भी वहाँ स्वच्छ था। किशोरी ने कहा, 'यमुना, चलो हम लोग भी नहा लें।'

'आप लोग आ जायें, तब मैं जाऊँगी।' यमुना ने कहा। किशोरी उसकी सचेष्टता पर प्रसन्न हो गयी। वह अपनी दो सहेलियों के साथ बजरे में उतर गयी।

मंगलदेव पहले ही कूद पड़ा था। विजय भी कुछ इधर–उधर करके उतरा। द्वीप के विस्तृत किनारों पर वे लोग फैल गये। किशोरी और उनकी सहेलियाँ स्नान करके लौट आयीं, अब यमुना अपनी धोती लेकर बजरे में उतरी और बालू की एक ऊँची टोकरी के कोने में चली गयी। यह कोना एकान्त था। यमुना गंगा के जल में पैर डालकर कुछ देर तक चुपचाप बैठी हुई, विस्तृत जलधारा के ऊपर सूर्य की उज्ज्वल किरणों का प्रतिबिम्ब देखने लगी। जैसे रात के तारों की फूल–अंजली जाह्नवी के शीतल वृक्ष कर किसी ने बिखेर दी हो।

पीछे निर्जन बालू का द्वीप और सामने दूर पर नगर की सौध–श्रेणी, यमुना की आँखों में निश्चेष्ट कौतूहल का कारण बन गयी। कुछ देर में यमुना ने स्नान किया। ज्यों ही वह सूखी धोती पहनकर सूखे बालों को समेट रही थी, मंगलदेव

सामने आकर खड़ा हो गया। समान भाव से दोनों पर आकस्मिक आने वाली विपद को देखकर परस्पर शत्रुओं के समान मंगलदेव और यमुना एक क्षण के लिए स्तब्ध थे।

'तारा! तुम्हीं हो!' बड़े साहस से मंगल ने कहा।

युवती की आँखों में बिजली दौड़ गयी। वह तीखी दृष्टि से मंगलदेव को देखती हुई बोली, 'क्या मुझे अपनी विपत्ति के दिन भी किसी तरह न काटने दोगे। तारा मर गयी, मैं उसकी प्रेतात्मा यमुना हूँ।'

मंगलदेव ने आँखें नीचे कर लीं। यमुना अपनी गीली धोती लेकर चलने को उद्यृत हुई। मंगल ने हाथ जोड़कर कहा, 'तारा मुझे क्षमा करो।'

उसने दृढ़ स्वर में कहा, 'हम दोनों का इसी में कल्याण है कि एक-दूसरे को न पहचानें और न ही एक-दूसरे की राह में अड़ें। तुम विद्यालय के छात्र हो और मैं दासी यमुना-दोनों को किसी दूसरे का अवलम्ब है। पापी प्राण की रक्षा के लिए मैं प्रार्थना करती हूँ कि, क्योंकि इसे देकर मैं न दे सकी।'

'तुम्हारी यही इच्छा है तो यही सही।' कहकर ज्यों ही मंगलदेव ने मुँह फिराया, विजय ने टेकरी की आड़ से निकलकर पुकारा, 'मंगल! क्या अभी जलपान न करोगे?'

यमुना और मंगल ने देखा कि विजय की आँखें क्षण-भर में लाल हो गयींय परन्तु तीनों चुपचाप बजरे की ओर लौटे। किशोरी ने खिड़की से झाँककर कहा, 'आओ जलपान कर लो, बड़ा विलम्ब हुआ।'

विजय कुछ न बोला, जाकर चुपचाप बैठ गया। यमुना ने जलपान लाकर दोनों को दिया। मंगल और विजय लड़कों के समान चुपचाप मन लगाकर खाने लगे। आज यमुना का घूँघट कम था। किशोरी ने देखा, कुछ बेढब बात है। उसने कहा, 'आज न चलकर किसी दूसरे दिन रामनगर चला जाय, तो क्या हानि है दिन बहुत बीत चुका, चलते-चलते संध्या हो जाएगी। विजय, कहो तो घर ही लौट चला जाए?'

विजय ने सिर हिलाकर अपनी स्वीकृति दी।

माझियों ने उसी ओर खेना आरम्भ कर दिया।

दो दिन तक मंगलदेव और विजयचन्द से भेंट ही न हुई। मंगल चुपचाप अपनी किताब में लगा रहता है और समय पर स्कूल चला जाता। तीसरे दिन अकस्मात् यमुना पहले-पहल मंगल के कमरे में आयी। मंगल सिर झुकाकर पढ़ रहा था, उसने देखा नहीं, यमुना ने कहा, 'विजय बाबू ने तकिये से सिर नहीं

उठाया, ज्वर बड़ा भयानक होता जा रहा है। किसी अच्छे डॉक्टर को क्यों नहीं लिवा लाते।'

मंगल ने आश्चर्य से सिर उठाकर फिर देखा-यमुना! वह चुप रह गया। फिर सहसा अपना कोट लेते हुए उसने कहा, 'मैं डॉक्टर दीनानाथ के यहाँ जाता हूँ' और वह कोठरी से बाहर निकल गया।

विजयचन्द्र पलंग पर पड़ा करवट बदल रहा था। बड़ी बेचैनी थी। किशोरी पास ही बैठी थी। यमुना सिर सहला रही थी। विजय कभी-कभी उसका हाथ पकड़कर माथे से चिपटा लेता था।

मंगल डॉक्टर को लिये हुए भीतर चला आया। डॉक्टर ने देर तक रोगी की परीक्षा की। फिर सिर उठाकर एक बार मंगल की ओर देखा और पूछा, 'रोगी को आकस्मिक घटना से दुःख तो नहीं हुआ है?'

मंगल ने कहा, 'ऐसा तो यों कोई कारण नहीं है। हाँ, इसके दो दिन पहले हम लोगों ने गंगा में पहरों स्नान किया और तैरे थे।'

डॉक्टर ने कहा, 'कुछ चिंता नहीं। थोड़ा यूडीक्लोन सिर पर रखना चाहिए, बेचैनी हट जायेगी और दवा लिखे देता हूँ। चार-पाँच दिन में ज्वर उतरेगा। मुझे टेम्परेचर का समाचार दोनों समय मिलना चाहिए।'

किशोरी ने कहा, 'आप स्वयं दो बार दिन में देख लिया कीजिये तो अच्छा हो!'

डॉक्टर बहुत ही स्पष्टवादी और चिड़चिड़े स्वभाव का था और नगर में अपने काम में एक ही था। उसने कहा, 'मुझे दोनों समय देखने का अवकाश नहीं और आवश्यकता भी नहीं। यदि आप लोगों से स्वयं इतना भी नहीं हो सकता, तो डॉक्टर की दवा करनी व्यर्थ है।'

'जैसा आप कहेंगे वैसा ही होगा। आपको समय पर ठीक समाचार मिलेगा। डॉक्टर साहब दया कीजिये।' यमुना ने कहा।

डॉक्टर ने रुमाल निकालकर सिर पोंछा और मंगल के दिये हुए कागज पर औषधि लिखी। मंगल ने किशोरी से रुपया लिया और डॉक्टर के साथ ही वह औषधि लेने चला गया।

मंगल और यमुना की अविराम सेवा से आठवें दिन विजय उठ बैठा। किशोरी बहुत प्रसन्न हुई। निरंजन भी तार द्वारा समाचार पाकर चले आये थे। ठाकुर जी की सेवा-पूजा की धूम एक बार फिर मच गयी।

विजय अभी दुर्बल था। पन्द्रह दिनों में ही वह छः महीने का रोगी जान पड़ता था। यमुना आजकल दिन-रात अपने अन्नदाता विजय के स्वास्थ्य की रखवाली करती थी और जब निरंजन के ठाकुर जी की ओर जाने का उसे अवसर ही न मिलता था।

जिस दिन विजय बाहर आया, वह सीधे मंगल के कमरे में गया। उसके मुख पर संकोच और आँखों में क्षमा थी। विजय के कुछ कहने के पहले ही मंगल ने उखड़े हुए शब्दों में कहा, 'विजय, मेरी परीक्षा भी समाप्त हो गयी और नौकरी का प्रबन्ध भी हो गया। मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूँ। आज ही जाऊँगा, आज्ञा दो।'

'नहीं मंगल! यह तो नहीं हो सकता।' कहते-कहते विजय की आँखें भर आयीं।

'विजय! जब मैं पेट की ज्वाला से दग्ध हो रहा था, जब एक दाने का कहीं ठिकाना नहीं था, उस समय मुझे तुमने अवलम्ब दिया, परन्तु मैं उस योग्य न था। मैं तुम्हारा विश्वासपात्र न रह सका, इसलिए मुझे छुट्टी दो।'

'अच्छी बात है, तुम पराधीन नहीं हो। पर माँ ने देवी के दर्शन की मनौती की है, इसलिए हम लोग वहाँ तक तो साथ ही चलें। फिर जैसी तुम्हारी इच्छा।'

मंगल चुप रहा।

किशोरी ने मनौती की सामग्री जुटानी आरम्भ की। शिशिर बीत रहा था। यह निश्चय हुआ कि नवरात्र में चला जाये। मंगल को तब तक चुपचाप रहना दुःसह हो उठा। उसके शान्त मन में बार-बार यमुना की सेवा और विजय की बीमारी-ये दोनों बातें लड़कर हलचल मचा देती थीं। वह न जाने कैसी कल्पना से उन्मत्त हो उठता। हिंसक मनोवृत्ति जाग जाती। उसे दमन करने में वह असमर्थ था। दूसरे ही दिन बिना किसी से कहे-सुने मंगल चला गया।

विजय को खेद हुआ, पर दुःख नहीं। वह बड़ी दुविधा में पड़ा था। मंगल जैसे उसकी प्रगति में बाधा स्वरूप हो गया था। स्कूल के लड़कों को जैसी लम्बी छुट्टी की प्रसन्नता मिलती है, ठीक उसी तरह विजय के हृदय में प्रफुल्लता भरने लगी। बड़े उत्साह से वह भी अपनी तैयारी में लगा। फेसक्रीम, पोमेड, टूथ पाउडर, ब्रश आकर उसके बैग में जुटने लगे। तौलियों और सुगन्धों की भरमार से बैग ठसाठस भर गया।

किशोरी भी अपने सामान में लगी थी। यमुना कभी उसके कभी विजय के साधनों में सहायता करती। वह घुटनों के बल बैठकर विजय की सामग्री बड़े मनोयोग से हैंडबेग में सजा रही थी। विजय कहता, 'नहीं यमुना! तौलिया तो इस

बैग में अवश्य रहनी चाहिए।' यमुना कहती, 'इतनी सामग्री इस छोटे पात्र में समा नहीं सकती। वह ट्रक में रख दी जायेगी।'

विजय ने कहा, 'मैं अपने अत्यंत आवश्यक पदार्थ अपने समीप रखना चाहता हूँ।'

'आप अपनी आवश्यकताओं का ठीक अनुमान नहीं कर सकते। संभवतः आपका चिट्ठा बड़ा हुआ रहता है।'

'नहीं यमुना! वह मेरी नितान्त आवश्यकता है।'

'अच्छा तो सब वस्तु आप मुझसे माँग लीजियेगा। देखिये, जब कुछ भी घटे।'

विजय ने विचारकर देखा कि यमुना भी तो मेरी सबसे बढ़कर आवश्यकता की वस्तु है। वह हताश होकर सामान से हट गया। यमुना और किशोरी ने ही मिलकर सब सामान ठीक कर लिए।

निश्चित दिन आ गया। रेल का प्रबन्ध पहले ही ठीक कर लिया गया था। किशोरी की कुछ सहेलियाँ भी जुट गयी थीं। निरंजन थे प्रधान सेनापति। वह छोटी-सी सेना पहाड़ पर चढ़ाई करने चली।

चौत का सुन्दर एक प्रभात था। दिन आलस से भरा, अवसाद से पूर्ण, फिर भी मनोरंजकता थी। प्रवृत्ति थी। पलाश के वृक्ष लाल हो रहे थे। नयी-नयी पत्तियों के आने पर भी जंगली वृक्षों में घनापन न था। पवन बौखलाया हुआ सबसे धक्कम-धुक्की कर रहा था। पहाड़ी के नीचे एक झील-सी थी, जो बरसात में भर जाती है। आजकल खेती हो रही थी। पत्थरों के ढोकों से उनकी समानी बनी हुई थी, वहीं एक नाले का भी अन्त होता था। यमुना एक ढोके पर बैठ गयी। पास ही हैंडबैग धरा था। वह पिछड़ी हुई औरतों के आने की बाट जोह रही थी और विजय शैलपथ से ऊपर सबके आगे चढ़ रहा था।

किशोरी और उसकी सहेलियाँ भी आ गयीं। एक सुन्दर झुरमुट था, जिसमें सौन्दर्य और सुरुचि का समन्वय था। शहनाई के बिना किशोरी का कोई उत्साह पूरा न होता था, बाजे-गाजे से पूजा करने की मनौती थी। वे बाजे वाले भी ऊपर पहुँच चुके थे। अब प्रधान आक्रमणकारियों का दल पहाड़ी पर चढ़ने लगा। थोड़ी ही देर में पहाड़ी पर संध्या के रंग-बिरंगे बादलों का दृश्य दिखायी देने लगा। देवी का छोटा-सा मन्दिर है, वहीं सब एकत्र हुए। कपूरी, बादामी, फिरोजी, धानी, गुलेनार रंग के घूँघट उलट दिये गये। यहाँ परदे के आवश्यकता न थी। भैरवी के स्वर, मुक्त होकर पहाड़ी के झरनों की तरह

निकल रहे थे। सचमुच, वसन्त खिल उठा। पूजा के साथ ही स्वतंत्र रूप से ये सुन्दरियाँ भी गाने लगीं। यमुना चुपचाप कुरैये की डाली के नीचे बैठी थी। बेग का सहारा लिये वह धूप में अपना मुख बचाये थी। किशोरी ने उसे हठ करके गुलेनार चादर ओढ़ा दी। पसीने से लगकर उस रंग ने यमुना के मुख पर अपने चिह्न बना दिये थे। वह बड़ी सुन्दर रंगसाजी थी। यद्यपि उसके भाव आँखों के नीचे की कालिमा में करुण रंग में छिप रहे थे, परन्तु उस समय विलक्षण आकर्षण उसके मुख पर था। सुन्दरता की होड़ लग जाने पर मानसिक गति दबाई न जा सकती थी। विजय जब सौन्दर्य में अपने को अलग न रख सका, वह पूजा छोड़कर उसी के समीप एक विशालखण्ड पर जा बैठा। यमुना भी सम्भलकर बैठ गयी थी।

'क्यों यमुना! तुमको गाना नहीं आता बातचीत आरम्भ करने के ढंग से विजय ने कहा।

'आता क्यों नहीं, पर गाना नहीं चाहती हूँ।'

'क्यों?'

'यों ही। कुछ करने का मन नहीं करता।'

'कुछ भी?'

'कुछ नहीं, संसार कुछ करने योग्य नहीं।'

'फिर क्या?'

'इसमें यदि दर्शक बनकर जी सके, तो मनुष्य के बड़े सौभाग्य की बात है।'

'परन्तु मैं केवल इसे दूर से नहीं देखना चाहता।'

'अपनी-अपनी इच्छा है। आप अभिनय करना चाहते हैं, तो कीजिए पर यह स्मरण रखिये कि सब अभिनय सबके मनोनुकूल नहीं होते।'

'यमुना, आज तो तुमने रंगीन साड़ी पहनी है, बड़ी सुन्दर लग रही है!'

'क्या करूँ विजय बाबू! जो मिलेगा वहीं न पहनूँगी।' विरक्त होकर यमुना ने कहा।

विजय को रुखाई जान पड़ी, उसने भी बात बदल दी। कहा, 'तुमने तो कहा था कि तुमको जिस वस्तु की आवश्यकता होगी, मैं दूँगी, यहाँ मुझे कुछ आवश्यकता है।'

यमुना भयभीत होकर विजय के आतुर मुख का अध्ययन करने लगी। कुछ न बोली। विजय ने सहमकर कहा, 'मुझे प्यास लगी है।'

यमुना ने बैग से एक छोटी-सी चाँदी की लुटिया निकाली, जिसके साथ पतली रंगीन डोरी लगी थी। वह कुरैया के झुरमुट के दूसरी ओर चली गई। विजय चुपचाप सोचने लगा, और कुछ नहीं, केवल यमुना के स्वच्छ कपोलों पर गुलेनार रंग की छाप। उन्मत्त हृदय-किशोर हृदय स्वप्न देखने लगा-ताम्बूल राग-रंजित, चुंबन अंकित कपोलों का! वह पागल हो उठा।

यमुना पानी लेकर आयी, बैग से मिठाई निकालकर विजय के सामने रख दी। सीधे लड़के की तरह विजय ने जलपान किया, तब पूछा, 'पहाड़ी के ऊपर ही तुम्हें जल मिला, यमुना?'

'यहीं तो, पास ही एक कुण्ड है।'

'चलो तुम दिखला दो।'

दोनों कुरैये के झुरमुट की ओट में चले। वहाँ सचमुच एक चौकोर पत्थर का कुण्ड था, उसमें जल लबालब भरा था। यमुना ने कहा, 'मुझसे यही एक टंडे ने कहा है कि यह कुण्डा जाड़ा, गर्मी, बरसात सब दिनों में बराबर भरा रहता है, जितने आदमी चाहें इसमें जल पियें, खाली नहीं होता। यह देवी का चमत्कार है। इसी में विंध्यवासिनी देवी से कम इन पहाड़ी झीलों की देवी का मान नहीं है। बहुत दूर से लोग यहाँ आते हैं।'

'यमुना, है बड़े आश्चर्य की बात! पहाड़ी के इतने ऊपर भी यह जल कुण्ड सचमुच अद्‌भुत है, परन्तु मैंने और भी ऐसा कुण्ड देखा है, जिसमें कितने ही जल पियें, वह भरा ही रहता है!'

'सचमुच! कहाँ पर विजय बाबू?'

'सुन्दरी में रूप का कूप!' कहकर विजय यमुना के मुख को उसी भाँति देखने लगा, जैसे अनजान में ढेला फेंककर बालक चोट लगने वाले को देखता है।

'वाह विजय बाबू! आज-कल साहित्य का ज्ञान बढ़ा हुआ देखती हूँ!' कहते हुए यमुना ने विजय की ओर देखा, जैसे कोई बड़ी-बूढ़ी नटखट लड़के को संकेत से झिड़कती हो।

विजय लज्जित हो उठा। इतने में 'विजय बाबू' की पुकार हुई, किशोरी बुला रही थी। वे दोनों देवी के सामने पहुँचे। किशोरी मन-ही-मन मुस्कुराई। पूजा समाप्त हो चुकी थी। सबको चलने के लिए कहा गया। यमुना ने बैग उठाया। सब उतरने लगे। धूप कड़ी हो गयी थी, विजय ने अपना छाता खोल लिया।

उसकी बार-बार इच्छा होती थी कि वह यमुना से इसी की छाया में चलने को कहे, पर साहस न होता। यमुना की एक-दो लटें पसीने से उसके सुन्दर भाल पर चिपक गयी थीं। विजय उसकी विचित्र लिपि को पढ़ते-पढ़ते पहाड़ी से नीचे उतरा।

सब लोग काशी लौट आये।

8

अपराधी: जयशंकर प्रसाद

वनस्थली के रंगीन संसार में अरुण किरणों ने इठलाते हुए पदार्पण किया और वे चमक उठीं, देखा तो कोमल किसलय और कुसुमों की पंखुरियाँ, बसन्त-पवन के पैरों के समान हिल रही थीं। पीले पराग का अंगराग लगने से किरणें पीली पड़ गई। बसन्त का प्रभात था।

युवती कामिनी मालिन का काम करती थी। उसे और कोई न था। वह इस कुसुम-कानन से फूल चुन ले जाती और माला बनाकर बेचती। कभी-कभी उसे उपवास भी करना पड़ता। पर, वह यह काम न छोड़ती। आज भी वह फूले हुए कचनार के नीचे बैठी हुई, अर्द्ध-विकसित कामिनी-कुसुमों को बिना बेधे हुए, फन्दे देकर माला बना रही थी। भँवर आये, गुनगुनाकर चले गये। बसन्त के दूतों का सन्देश उसने न सुना। मलय-पवन अंचल उड़ाकर, रूखी लटों को बिखराकर, हट गया। मालिन बेसुध थी, वह फन्दा बनाती जाती थी और फूलों को फँसाती जाती थी।

द्रुत-गति से दौड़ते हुए अश्व के पद-शब्द ने उसे त्रस्त कर दिया। वह अपनी फूलों की टोकरी उठाकर भयभीत होकर सिर झुकाये खड़ी हो गई। राजकुमार आज अचानक उधर वायु-सेवन के लिये आ गये थे। उन्होंने दूर ही से देखा, समझ गये कि वह युवती त्रस्त है। बलवान अश्व वहीं रुक गया। राजकुमार ने पूछा-'तुम कौन हो?'

कुरंगी कुमारी के समान बड़ी-बड़ी आँखें उठाकर उसने कहा-'मालिन!'

'क्या तुम माला बनाकर बेचती हो?'

'हाँ।'

'यहाँ का रक्षक तुम्हें रोकता नहीं?'

'नहीं, यहाँ कोई रक्षक नहीं है।'

'आज तुमने कौन-सी माला बनाई है?'

'यही कामिनी की माला बना रही थी।'

'तुम्हारा नाम क्या है?'

'कामिनी।'

'वाह! अच्छा, तुम इस माला को पूरी करो, मैं लौटकर-उसे लूँगा।'' डरने पर भी मालिन ढीठ थी। उसने कहा-'धूप निकल आने पर कामिनी का सौरभ कम हो जायेगा।'

'मैं शीघ्र आऊँगा'-कहकर राजकुमार चले गये।

मालिन ने माला बना डाली। किरणें प्रतीक्षा में लाल-पीली होकर धवल हो चलीं। राजकुमार लौटकर नहीं आये। तब उसी ओर चली-जिधर राजकुमार गये थे।

युवती बहुत दूर न गई होगी कि राजकुमार लौटकर दूसरे मार्ग से उसी स्थान पर आये। मालिन को न देखकर पुकारने लगे-'मालिन! ओ मालिन!'

दूरागत कोकिल की पुकार-सा वह स्वर उसके कान में पड़ा था। वह लौट आई। हाथों में कामिनी की माला लिये वह वन-लक्ष्मी के समान लौटी। राजकुमार उसी दिन-सौन्दर्य को सकौतूहल देख रहे थे। कामिनी ने माला गले में पहना दी। राजकुमार ने अपना कौशेय उष्णीश खोलकर मालिन के ऊपर फेंक दिया। कहा-'जाओ, इसे पहनकर आओ।'' आश्चर्य और भय से लताओं की झुरमुट में जाकर उसने आज्ञानुसार कौशेय वसन पहना।

बाहर आई, तो उज्ज्वल किरणें उसके अंग-अंग पर हँसते-हँसते लोट-पोट हो रही थीं। राजकुमार मुस्कराये और कहा-'आज से तुम इस कुसुम-कानन की वन-पालिका हुई हो। स्मरण रखना।'

राजकुमार चले गये। मालिन किंकर्तव्यविमूढ़ होकर मधूक-वृक्ष के नीचे बैठ गई।

बसन्त बीत गया। गर्मी जलाकर चली गई। कानन में हरियाली फैल रही थी। श्यामल घटायें आकाश में और शस्य-शोभा धरणी पर एक सघन-सौन्दर्य

का सृजन कर रही थी। वन-पालिका के चारों ओर मयूर घेरकर नाचते थे। सन्ध्या में एक सुन्दर उत्सव हो रहा था। रजनी आई। वन-पालिका के कुटीर को तम ने घेर लिया। मूसलाधार वृष्टि होने लगी। युवती प्रकृति का मद-विह्वल लास्य था। वन-पालिका पर्ण-कुटीर के वातायन से चकित होकर देख रही थी। सहसा बाहर कम्पित कण्ठ से शब्द हुआ-'आश्रय चाहिए!'' वन-पालिका ने कहा-'तुम कौन हो?'

'एक अपराधी।'

'तब यहाँ स्थान नहीं है।'

'विचार कर उत्तर दो, कहीं आश्रय न देकर तुम अपराध न कर बैठो।'' वन-पालिका विचारने लगी। बाहर से फिर सुनाई पड़ा-'विलम्ब होने से प्राणों की आशंका है।'

वन-पालिका निस्संकोच उठी और उसने द्वार खोल दिया। आगन्तुक ने भीतर प्रवेश किया। वह एक बलिष्ठ युवक था, साहस उसकी मुखाकृति थी। वन-पालिका ने पूछा-'तुमने कौन-सा अपराध किया है?'

'बड़ा भारी अपराध है, प्रभात होने पर सुनाऊँगा। इस रात्रि में केवल आश्रय दो।'-कहकर आगन्तुक अपना आर्द्र वस्त्र निचोड़ने लगा। उसका स्वर विकृत और वदन नीरस था। अन्धकार ने उसे और भी अस्पष्ट बना दिया था।

युवती वन-पालिका व्याकुल होकर प्रभात की प्रतीक्षा करने लगी। सहसा युवक ने उसका हाथ पकड़ लिया। वह त्रस्त हो गई, बोली-'अपराधी, यह क्या?'

'अपराधी हूँ सुन्दरी!'-अबकी बार उसका स्वर परिवर्तित था। पागल प्रकृति पर्णकुटी को घेरकर अपनी हँसी में फूटी पड़ती थी। वह करस्पर्श उन्मादकारी था। कामिनी की धमनियों में बाहर के बरसाती नालों के समान रक्त दौड़ रहा था। युवक के स्वर में परिचय था, परन्तु युवती की वासना के कौतूहल ने भय का बहाना खोज लिया! बाहर करकापात के साथ ही बिजली कड़की। वन-पालिका ने दूसरा हाथ युवक के कण्ठ में डाल दिया।

अन्धकार हँसने लगा।

बहुत दिन बीत गये। कितने ही बरस आये और चले गये। वह कुसुम-कानन-जिसमें मोर, शुक और पिक, फूलों से लदी झाड़ियों में विहार करते थे, अब एक जंगल हो गया। अब राजकुमार वहाँ नहीं आते थे। अब वे स्वयं राजा हैं। सुकुमार पौदे सूख गये। विशालकाय वृक्षों ने अपनी शाखाओं से

जकड़ लिया। उस गहन वन में एक कोने में पर्णकुटी थी, उसमें एक स्त्री और उसका पुत्र, दोनो रहते थे।

दोनों बहेलियों का व्यवसाय करतेय उसी से उनका जीवन-निर्वाह होता। पक्षियों को फँसाकर नागरिकों के हाथ वह बालक बेचा करता, कभी-कभी मृग-शावक भी पकड़ ले आता।

एक दिन वन-पालिका का पुत्र एक सुन्दर कुरंग पकड़कर नगर की ओर बेचने के लिए ले गया। उसकी पीठ पर बड़ी अच्छी बूटियाँ थीं। वह दर्शनीय था। राजा का पुत्र अपने टट्टू पर चढ़कर घूमने निकला था, उसके रक्षक साथ थे। राजपुत्र मचल गया। किशोर मूल्य माँगने लगा। रक्षकों ने कुछ देकर उसे छीन लेना चाहा। किशोर ने कुरंग का फन्दा ढीला कर दिया। वह छलाँग भरता हुआ निकल गया। राजपुत्र अत्यन्त हठी था, वह रोने लगा। रक्षकों ने किशोर को पकड़ लिया। वे उसे राजमन्दिर की ओर ले चले।

वातायन से रानी ने देखा, उसका लाल रोता हुआ लौट रहा है। एक आँधी-सी आ गई। रानी ने समाचार सुनकर उस बहेलिये के लड़के को बेंतों से पीटे जाने की आज्ञा दी।

किशोर ने बिना रोये-चिल्लाये और आँसू बहाये बेंतों की चोट सहन की। उसका सारा अंग क्षत-विक्षत था, पीड़ा से चल नहीं सकता था। मृगया से लौटते हुए राजा ने देखा। एक बार दया तो आई, परन्तु उसका कोई उपयोग न हुआ। रानी की आज्ञा थी। वन-पालिका ने राजा के निकल जाने पर किशोर को गोद में उठा लिया। अपने आँसुओं से घाव धोती हुई, उसने कहा-'आह! वे कितने निर्दयी हैं!'

फिर कई वर्ष बीत गये। नवीन राजपुत्र को मृगया की शिक्षा के लिए, लक्ष्य साधने के लिए, वही नगरोपकण्ठ का वन स्थिर हुआ। वहाँ राजपुत्र हिरणों पर, पक्षियों पर तीर चलाता। वन-पालिका को अब फिर कुछ लाभ होने लगा। हिरणों को हाँकने से पक्षियों का पता बताने से, कुछ मिल जाता है। परन्तु उसका पुत्र किशोर राजकुमार की मृगया में भाग न लेता।

एक दिन बसन्त की उजली धूप में राजा अपने राजपुत्र की मृगया-परीक्षा लेने के लिए, सोलह बरस बाद, उस जंगल में आये। राजा का मुँह एक बार विवर्ण हो गया। उस कुसुम कानन के सभी सुकुमार पौधे सूखकर लोप हो गये हैं। उनकी पेड़ियों में कहीं-कहीं दो-एक अंकुर निकल कर अपने प्राचीन बीज का निर्देश करते थे। राजा स्वप्न के समान उस अतीत की कल्पना कर रहे थे।

अहेरियों के वेश में राजपुत्र और उसके समवयस्क जंगल में आये। किशोर भी अपना धनुष लिये एक ओर खड़ा था। कुरंग पर तीर छूटे। किशोर का तीर कुरंग के कण्ठ को बेधकर राजपुत्र की छाती में घुस गया। राजपुत्र अचेत होकर गिर पड़ा। किशोर पकड़ लिया गया।

इधर वन-पालिका राजा के आने का समाचार सुनकर फूल खोजने लगी थी। उस जंगल में अब कामिनी-कुसुम नहीं थे। उसने मधूक और दूर्वा की सुन्दर माला बनाई, यही उसे मिले थे।

राजा क्रोध से उन्मत्त थे। प्रतिहिंसा से कड़ककर बोले-मारो!-बधिकों के तीर छूटे? वह कमनीय-कलेवर किशोर पृथ्वी पर लोटने लगा। ठीक उसी समय मधूक-मालिका लिये वन-पालिका राजा के सामने पहुँची।

कठोर नियति जब अपना विधान पूर्ण कर चुकी थी, तब कामिनी किशोर के शव के पास पहुँची! पागल-सी उसने माला राजा के ऊपर फेंकी और किशोर को गोद में बैठा लिया। उसकी निश्चेष्ट आँखे मौन भाषा में जैसे माँ-माँ कह रही थीं! उसने हृदय में घुस जानेवाली आँखों से एक बार राजा की ओर देखा और भी देखा-राजपुत्र का शव!

राजा एक बार आकाश और पृथ्वी के बीच में हो गये। जैसे वह कहाँ-से-कहाँ चले आये। राजपुत्र का शोक और क्रोध, वेग से बहती हुई बरसाती नदी की धारा में बुल्ले के समान बह गया। उनका हृदय विषय-शून्य हो गया। एक बार सचेत होकर उन्होंने देखा और पहचाना-अपना वही-'जीर्ण कौशेय उष्णीश।'-'वन-पालिका!'

'राजा'-कामिनी की आँखों में आँसू नहीं थे।

'यह कौन था?'

गम्भीर स्वर में सर नीचा किये वन-पालिका ने कहा-'अपराधी।'

9

इंद्रजालः जयशंकर प्रसाद

गाँव के बाहर, एक छोटे-से बंजर में कंजरों का दल पड़ा था। उस परिवार में टट्टू, भैंसे और कुत्तों को मिलाकर इक्कीस प्राणी थे। उसका सरदार मैकू, लम्बी-चौड़ी हड्डियोंवाला एक अधेड़ पुरुष था। दया-माया उसके पास फटकने नहीं पाती थी। उसकी घनी दाढ़ी और मूँछों के भीतर प्रसन्नता की हँसी छिपी ही रह जाती। गाँव में भीख माँगने के लिए जब कंजरों की स्त्रियाँ जातीं, तो उनके लिए मैकू की आज्ञा थी कि कुछ न मिलने पर अपने बच्चों को निर्दयता से गृहस्थ के द्वार पर जो स्त्री न पटक देगी, उसको भयानक दण्ड मिलेगा।

उस निर्दय झुण्ड में गानेवाली एक लडकी थी और एक बाँसुरी बजानेवाला युवक। ये दोनों भी गा-बजाकर जो पाते, वह मैकू के चरणों में लाकर रख देते। फिर भी गोली और बेला की प्रसन्नता की सीमा न थी। उन दोनों का नित्य सम्पर्क ही उनके लिए स्वर्गीय सुख था। इन घुमक्कड़ों के दल में ये दोनों विभिन्न रुचि के प्राणी थे। बेला बेडिन थी। माँ के मर जाने पर अपने शराबी और अकर्मण्य पिता के साथ वह कंजरों के हाथ लगी। अपनी माता के गाने-बजाने का संस्कार उसकी नस-नस में भरा था। वह बचपन से ही अपनी माता का अनुकरण करती हुई अलापती रहती थी।

शासन की कठोरता के कारण कंजरों का डाका और लड़कियों के चुराने का व्यापार बन्द हो चला था। फिर भी मैकू अवसर से नहीं चूकता। अपने दल की उन्नति में बराबर लगा ही रहता। इस तरह गोली के बाप के मर जाने पर-जो

एक चतुर नट था–मैकू ने उसकी खेल की पिटारी के साथ गोली पर भी अधिकार जमाया। गोली महुअर तो बजाता ही था, पर बेला का साथ होने पर उसने बाँसुरी बजाने में अभ्यास किया। पहले तो उसकी नट–विद्या में बेला भी मनोयोग से लगीय किन्तु दोनों को भानुमती वाली पिटारी ढोकर दो–चार पैसे कमाना अच्छा न लगा। दोनों को मालूम हुआ कि दर्शक उस खेल से अधिक उसका गाना पसन्द करते हैं। दोनों का झुकाव उसी ओर हुआ। पैसा भी मिलने लगा। इन नवागन्तुक बाहरियों की कंजरों के दल में प्रतिष्ठा बढ़ी।

बेला साँवली थी। जैसे पावस की मेघमाला में छिपे हुए आलोकपिण्ड का प्रकाश निखरने की अदम्य चेष्टा कर रहा हो, वैसे ही उसका यौवन सुगठित शरीर के भीतर उद्वेलित हो रहा था। गोली के स्नेह की मदिरा से उसकी कजरारी आँखें लाली से भरी रहतीं। वह चलती तो थिरकती हुई, बातें करती तो हँसती हुई। एक मिठास उसके चारों ओर बिखरी रहती। फिर भी गोली से अभी उसका ब्याह नहीं हुआ था।

गोली जब बाँसुरी बजाने लगता, तब बेला के साहित्यहीन गीत जैसे प्रेम के माधुर्य की व्याख्या करने लगते। गाँव के लोग उसके गीतों के लिए कंजरों को शीघ्र हटाने का उद्योग नहीं करते! जहाँ अपने सदस्यों के कारण कंजरों का वह दल घृणा और भय का पात्र था, वहाँ गोली और बेला का संगीत आकर्षण के लिए पर्याप्त था, किन्तु इसी में एक व्यक्ति का अवांछनीय सहयोग भी आवश्यक था। वह था भूरे, छोटी–सी ढोल लेकर उसे भी बेला का साथ करना पड़ता।

भूरे सचमुच भूरा भेडिया था। गोली अधरों से बाँसुरी लगाये अर्द्धनिमीलित आँखों के अन्तराल से, बेला के मुख को देखता हुआ जब हृदय की फूँक से बाँस के टुकड़े को अनुप्राणित कर देता, तब विकट घृणा से ताड़ित होकर भूरे की भयानक थाप ढोल पर जाती। क्षण–भर के लिए जैसे दोनों चौंक उठते।

उस दिन ठाकुर के गढ़ में बेला का दल गाने के लिए गया था। पुरस्कार में कपड़े–रुपये तो मिले ही थे, बेला को एक अँगूठी भी मिली थी। मैकू उन सबको देखकर प्रसन्न हो रहा था। इतने में सिरकी के बाहर कुछ हल्ला सुनाई पड़ा। मैकू ने बाहर आकर देखा कि भूरे और गोली में लड़ाई हो रही थी। मैकू के कर्कश स्वर से दोनों भयभीत हो गये। गोली ने कहा–'मैं बैठा था, भूरे ने मुझको गालियाँ दीं। फिर भी मैं न बोला, इस पर उसने मुझे पैर से ठोकर लगा दी।'

''और यह समझता है कि मेरी बाँसुरी के बिना बेला गा ही नहीं सकती। मुझसे कहने लगा कि आज तुम ढोलक बेताल बजा रहे थे।'' भूरे का कण्ठ क्रोध से भर्राया हुआ था।

मैकू हँस पड़ा। वह जानता था कि गोली युवक होने पर भी सुकुमार और अपने प्रेम की माधुरी में विह्वल, लजीला और निरीह था। अपने को प्रमाणित करने की चेष्टा उसमें थी ही नहीं। वह आज जो कुछ उग्र हो गया, इसका कारण है केवल भूरे की प्रतिद्वन्द्विता।

बेला भी वहाँ आ गयी थी। उसने घृणा से भूरे की ओर देखकर कहा–

'तो क्या तुम सचमुच बेताल नहीं बजा रहे थे?'

'मैं बेताल न बजाऊँगा, तो दूसरा कौन बजायेगा। अब तो तुमको नये यार न मिले हैं। बेला! तुझको मालूम नहीं तेरा बाप मुझसे तेरा ब्याह ठीक करके मरा है। इसी बात पर मैंने उसे अपना नैपाली का दोगला टट्टू दे दिया था, जिस पर अब भी तू चढ़कर चलती है।'' भूरे का मुँह क्रोध के झाग से भर गया था। वह और भी कुछ बकताय किन्तु मैकू की डाँट पड़ी। सब चुप हो गये।

उस निर्जन प्रान्त में जब अन्धकार खुले आकाश के नीचे तारों से खेल रहा था, तब बेला बैठी कुछ गुनगुना रही थी।

कंजरों की झोपड़ियों के पास ही पलाश का छोटा-सा जंगल था। उनमें बेला के गीत गूँज रहे थे। जैसे कमल के पास मधुकर को जाने से कोई रोक नहीं सकता, उसी तरह गोली भी कब माननेवाला था। आज उसके निरीह हृदय में संघर्ष के कारण आत्मविश्वास का जन्म हो गया था। अपने प्रेम के लिए, अपने वास्तविक अधिकार के लिए झगड़ने की शक्ति उत्पन्न हो गयी थी। उसका छुरा कमर में था। हाथ में बाँसुरी थी। बेला की गुनगुनाहट बन्द होते ही बाँसुरी में गोली उसी तान को दुहराने लगा। दोनों वन-विहंगम की तरह उस अँधेरे कानन में किलकारने लगे। आज प्रेम के आवेश ने आवरण हटा दिया था, वे नाचने लगे। आज तारों की क्षीण ज्योति में हृदय-से-हृदय मिले, पूर्ण आवेग में। आज बेला के जीवन में यौवन का और गोली के हृदय में पौरुष का प्रथम उन्मेष था।

किन्तु भूरा भी वहाँ आने से नहीं रुका। उसके हाथ में भी भयानक छुरा था। आलिंगन में आबद्ध बेला ने चीत्कार किया। गोली छटककर दूर जा खड़ा हुआ, किन्तु घाव ओछा लगा।

बाघ की तरह झपटकर गोली ने दूसरा वार किया। भूरे सम्हाल न सका। फिर तीसरा वार चलाना ही चाहता था कि मैकू ने गोली का हाथ पकड़ लिया। वह नीचे सिर किये खड़ा रहा।

मैकू ने कड़क कर कहा–'बेला, भूरे से तुझे ब्याह करना ही होगा। यह खेल अच्छा नहीं।'

उसी क्षण सारी बातें गोली के मस्तक में छाया–चित्र–सी नाच उठीं। उसने छुरा धीरे से गिरा दिया। उसका हाथ छूट गया। जब बेला और मैकू भूरे का हाथ पकड़कर ले चले, तब गोली कहाँ जा रहा है, इसका किसी को ध्यान न रहा।

कंजर–परिवार में बेला भूरे की स्त्री मानी जाने लगी। बेला ने भी सिर झुका कर इसे स्वीकार कर लिया। परन्तु उसे पलाश के जंगल में सन्ध्या के समय जाने से कोई भी नहीं रोक सकता था। उसे जैसे सायंकाल में एक हलका–सा उन्माद हो जाता। भूरे या मैकू भी उसे वहाँ जाने से रोकने में असमर्थ थे। उसकी दृढ़ता–भरी आँखों से घोर विरोध नाचने लगता।

बरसात का आरम्भ था। गाँव की ओर से पुलिस के पास कोई विरोध की सूचना भी नहीं मिली थी। गाँव वालों की छुरी–हँसिया और काठ–कबाड़ के कितने ही काम बनाकर वे लोग पैसे लेते थे। कुछ अन्न यों भी मिल जाता। चिडियाँ पकड़कर, पक्षियों का तेल बनाकर, जड़ी–बूटी की दवा तथा उत्तेजक औषधियों और मदिरा का व्यापार करके, कंजरों ने गाँव तथा गढ़ के लोगों से सद्भाव भी बना लिया था। सबके ऊपर आकर्षक बाँसुरी जब उसके साथ नहीं बजती थी, तब भी बेला के गले में एक ऐसी नयी टीस उत्पन्न हो गयी थी, जिसमें बाँसुरी का स्वर सुनाई पड़ता था।

अन्तर में भरे हुए निष्फल प्रेम से युवती का सौन्दर्य निखर आया था। उसके कटाक्ष अलस, गति मदिर और वाणी झंकार से भर गयी थी। ठाकुर साहब के गढ़ में उसका गाना प्रायः हुआ करता था।

छींट का घाघरा और चोली, उस पर गोटे से ढँकी हुई ओढ़नी सहज ही खिसकती रहती। कहना न होगा कि आधा गाँव उसके लिए पागल था। बालक पास से, युवक ठीक–ठिकाने से और बूढ़े अपनी मर्यादा, आदर्शवादिता की रक्षा करते हुए दूर से उसकी तान सुनने के लिए, एक झलक देखने के लिए घात लगाये रहते।

गढ़ के चौक में जब उसका गाना जमता, तो दूसरा काम करते हुए अन्यमनस्कता की आड़ में मनोयोग से और कनखियों से ठाकुर उसे देख लिया करते।

मैकू घाघ था। उसने ताड़ लिया। उस दिन संगीत बन्द होने पर पुरस्कार मिल जाने पर और भूरे के साथ बेला के गढ़ के बाहर जाने पर भी मैकू वहीं थोड़ी देर तक खड़ा रहा। ठाकुर ने उसे देखकर पूछा–'क्या है?'

'सरकार! कुछ कहना है।'

'क्या?'

'यह छोकरी इस गाँव से जाना नहीं चाहती। उधर पुलिस तंग कर रही है।'

'जाना नहीं चाहती, क्यों?'

'वह तो घूम-घाम कर गढ़ में आ जाती है। खाने को मिल जाता है।...'

मैकू आगे की बात चुप होकर कुछ-कुछ संकेत-भरी मुस्कराहट से कह देना चाहता था।

ठाकुर के मन में हलचल होने लगी। उसे दबाकर प्रतिष्ठा का ध्यान करके ठाकुर ने कहा–

'तो मैं क्या करूँ?'

'सरकार! वह तो साँझ होते ही पलाश के जंगल में अकेली चली जाती है। वहीं बैठी हुई बड़ी रात तक गाया करती है।'

'हूँ!'

'एक दिन सरकार धमका दें, तो हम लोग उसे ले-देकर आगे कहीं चले जायँ।'

'अच्छा।'

मैकू जाल फैलाकर चला आया। एक हजार की बोहनी की कल्पना करते वह अपनी सिरकी में बैठकर हुक्का गुड़गुड़ाने लगा।

बेला के सुन्दर अंग की मेघ-माला प्रेमराशि की रजत-रेखा से उद्‌भासित हो उठी थी। उसके हृदय में यह विश्वास जम गया था कि भूरे के साथ घर बसाना गोली के प्रेम के साथ विश्वासघात करना है। उसका वास्तविक पति तो गोली ही है। बेला में यह उच्छृंखल भावना विकट ताण्डव करने लगी। उसके हृदय में वसन्त का विकास था। उमंग में मलयानिल की गति थी। कण्ठ में वनस्थली की काकली थी। आँखों में कुसुमोत्सव था और प्रत्येक आन्दोलन में परिमल का उद्‌गार था। उसकी मादकता बरसाती नदी की तरह वेगवती थी।

आज उसने अपने जूड़े में जंगली करौंदे के फूलों की माला लपेटकर, भरी मस्ती में जंगल की ओर चलने के लिए पैर बढ़ाया, तो भूरे ने डाँटकर कहा–'कहाँ चली?'

'यार के पास।'' उसने छूटते ही कहा। बेला के सहवास में आने पर अपनी लघुता को जानते हुए मसोसकर भूरे ने कहा-'तू खून कराये बिना चैन न लेगी।'

बेला की आँखों में गोली का और उसके परिवर्धमान प्रेमांकुर का चित्र था, जो उसके हट जाने पर विरह-जल से हरा-भरा हो उठा था। बेला पलाश के जंगल में अपने बिछुड़े हुए प्रियतम के उद्देश्य से दो-चार विरह-वेदना की तानों की प्रतिध्वनि छोड़ आने का काल्पनिक सुख नहीं छोड़ सकती थी।

उस एकान्त सन्ध्या में बरसाती झिल्लियों की झनकार से वायुमण्डल गूँज रहा था। बेला अपने परिचित पलाश के नीचे बैठकर गाने लगी-

चीन्हत नाहीं बदल गये नैना....

ऐसा मालूम होता था कि सचमुच गोली उस अन्धकार में अपरिचित की तरह मुँह फिराकर चला जा रहा है। बेला की मनोवेदना को पहचानने की क्षमता उसने खो दी है।

बेला का एकान्त में विरह-निवेदन उसकी भाव-प्रवणता को और भी उत्तेजित करता था। पलाश का जंगल उसकी कातर कुहुक से गूँज रहा था। सहसा उस निस्तब्धता को भंग करते हुए घोड़े पर सवार ठाकुर साहब वहाँ आ पहुँचे।

'अरे बेला! तू यहाँ क्या कर रही है?'

बेला की स्वर-लहरी रुक गयी थी। उसने देखा ठाकुर साहब! महत्व का सम्पूर्ण चित्र, कई बार जिसे उसने अपने मन की असंयत कल्पना में दुर्गम शैल-शृंग समझकर अपने भ्रम पर अपनी हँसी उड़ा चुकी थी। वह सकुच कर खड़ी हो रही। बोली नहीं, मन में सोच रही थी-'गोली को छोड़कर भूरे के साथ रहना क्या उचित है? और नहीं तो फिर....'

ठाकुर ने कहा-'तो तुम्हारे साथ कोई नहीं है। कोई जानवर निकल आवे, तो?'

बेला खिलखिला कर हँस पड़ी। ठाकुर का प्रमाद बढ़ चला था। घोड़े से झुककर उसका कन्धा पकड़ते हुए कहा, 'चलो, तुमको पहुँचा दें।'

उसका शरीर काँप रहा था और ठाकुर आवेश में भर रहे थे। उन्होंने कहा-'बेला, मेरे यहाँ चलोगी?'

'भूरे मेरा पति है!'' बेला के इस कथन में भयानक व्यंग था। वह भूरे से छुटकारा पाने के लिए तरस रही थी। उसने धीरे से अपना सिर ठाकुर की जाँघ से सटा दिया। एक क्षण के लिए दोनों चुप थे। फिर उसी समय अन्धकार में दो मूर्तियों का प्रादुर्भाव हुआ। कठोर कण्ठ से भूरे ने पुकारा-'बेला!'

ठाकुर सावधान हो गये थे। उनका हाथ बगल की तलवार की मूठ पर जा पड़ा। भूरे ने कहा–'जंगल में किसलिए तू आती थी, यह मुझे आज मालूम हुआ। चल, तेरा खून पिये बिना न छोड़ूँगा।'

ठाकुर के अपराध का आरम्भ तो उनके मन में हो ही चुका था। उन्होंने अपने को छिपाने का प्रयत्न छोड़ दिया। कड़ककर बोले–'खून करने के पहले अपनी बात भी सोच लो, तुम मुझ पर सन्देह करते हो, तो यह तुम्हारा भ्रम है। मैं तो....'

अब मैकू आगे आया। उसने कहा–'सरकार! बेला अब कंजरों के दल में नहीं रह सकेगी।'

'तो तुम क्या कहना चाहते हो?' ठाकुर साहब अपने में आ रहे थे, फिर भी घटना–चक्र से विवश थे।

'अब यह आपके पास रह सकती है। भूरे इसे लेकर हम लोगों के संग नहीं रह सकता।' मैकू पूरा खिलाड़ी था। उसके सामने उस अन्धकार में रुपये चमक रहे थे।

ठाकुर को अपने अहंकार का आश्रय मिला। थोड़ा–सा विवेक, जो उस अन्धकार में झिलमिला रहा था, बुझ गया। उन्होंने कहा–

'तब तुम क्या चाहते हो?'

'एक हजार।'

'चलो, मेरे साथ'–कहकर बेला का हाथ पकड़कर ठाकुर ने घोड़े को आगे बढ़ाया। भूरे कुछ भुनभुना रहा था, पर मैकू ने उसे दूसरी ओर भेजकर ठाकुर का संग पकड़ लिया। बेला रिकाब पकड़े चली जा रही थी।

दूसरे दिन कंजरों का दल उस गाँव से चला गया।

ऊपर की घटना को कई साल बीत गये। बेला ठाकुर साहब की एकमात्र प्रेमिका समझी जाती है। अब उसकी प्रतिष्ठा अन्य कुल–बधुओं की तरह होने लगी है। नये उपकरणों से उसका घर सजाया गया है। उस्तादों से गाना सीखा है। गढ़ के भीतर ही उसकी छोटी–सी साफ–सुथरी हवेली है। ठाकुर साहब की उमंग की रातें वहीं कटती हैं। फिर भी ठाकुर कभी–कभी प्रत्यक्ष देख पाते कि बेला उनकी नहीं है! वह न जाने कैसे एक भ्रम में पड़ गये। बात निबाहने की आ पड़ी।

एक दिन एक नट आया। उसने अनेक तरह के खेल दिखलाये। उसके साथ उसकी स्त्री थी, वह घूँघट ऊँचा नहीं करती थी। खेल दिखलाकर जब अपनी पिटारी लेकर जाने लगा, तो कुछ मनचले लोगों ने पूछा–

'क्यों जी, तुम्हारी स्त्री कोई खेल नहीं करती क्या?'

'करती तो है सरकार! फिर किसी दिन दिखलाऊँगा।'' कहकर वह चला गया, किन्तु उसकी बाँसुरी की धुन बेला के कानों में उन्माद का आह्वान सुना रही थी। पिंजड़े की वन-विहंगनी को वसन्त की फूली हुई डाली का स्मरण हो आया था।

दूसरे दिन गढ़ में भारी जमघट लगा। गोली का खेल जम रहा था। सब लोग उसके हस्त-कौशल में मुग्ध थे। सहसा उसने कहा-

'सरकार! एक बड़ा भारी दैत्य आकाश में आ गया है, मैं उससे लड़ने जाता हूँ, मेरी स्त्री की रक्षा आप लोग कीजियेगा।'

गोली ने एक डोरी निकालकर उसको ऊपर आकाश की ओर फेंका। वह सीधी तन गयी। सबके देखते-देखते गोली उसी के सहारे आकाश में चढ़कर अदृश्य हो गया। सब लोग मुग्ध होकर भविष्य की प्रतीक्षा कर रहे थे। किसी को यह ध्यान नहीं रहा कि स्त्री अब कहाँ है।

गढ़ के फाटक की ओर सबकी दृष्टि फिर गयी। गोली लहू से रंगा चला आ रहा था। उसने आकर ठाकुर को सलाम किया और कहा-'सरकार! मैंने उस दैत्य को हरा दिया। अब मुझे इनाम मिलना चाहिए।'

सब लोग उस पर प्रसन्न होकर पैसों-रुपयों की बौछार करने लगे। उसने झोली भरकर इधर-उधर देखा, फिर कहा-

'सरकार मेरी स्त्री भी अब मिलनी चाहिए, मैं भी...।' किन्तु यह क्या, वहाँ तो उसकी स्त्री का पता नहीं। गोली सिर पकड़कर शोक-मुद्रा में बैठ गया। जब खोजने पर उसकी स्त्री नहीं मिली, तो उसने चिल्लाकर कहा-'यह अन्याय इस राज्य में नहीं होना चाहिए। मेरी सुन्दरी स्त्री को ठाकुर साहब ने गढ़ के भीतर कहीं छिपा दिया। मेरी योगिनी कह रही है।' सब लोग हँसने लगे। लोगों ने समझा, यह कोई दूसरा खेल दिखलाने जा रहा है। ठाकुर ने कहा-'तो तू अपनी सुन्दर स्त्री मेरे गढ़ में से खोज ला!' अन्धकार होने लगा था। उसने जैसे घबड़ाकर चारों ओर देखने का अभिनय किया। फिर आँख मूँदकर सोचने लगा।

लोगों ने कहा-'खोजता क्यों नहीं? कहाँ है तेरी सुन्दरी स्त्री?'

'तो जाऊँ न सरकार?'

'हाँ, हाँ, जाता क्यों नहीं'-ठाकुर ने भी हँसकर कहा।

गोली नयी हवेली की ओर चला। वह निः शंक भीतर चला गया। बेला बैठी हुई तन्मय भाव से बाहर की भीड़ झरोखे से देख रही थी। जब उसने गोली

को समीप आते देखा, तो वह काँप उठी। कोई दासी वहाँ न थी। सब खेल देखने में लगी थीं। गोली ने पोटली फेंककर कहा–'बेला! जल्द चलो।'

बेला के हृदय में तीव्र अनुभूति जाग उठी थी। एक क्षण में उस दीन भिखारी की तरह–जो एक मुट्ठी भीख के बदले अपना समस्त सचिंत आशीर्वाद दे देना चाहता है–वह वरदान देने के लिए प्रस्तुत हो गयी। मन्त्र–मुग्ध की तरह बेला ने उस ओढ़नी का घूँघट बनाया। वह धीरे–धीरे उसके पीछे भीड़ में आ गयी। तालियाँ पिटीं। हँसी का ठहाका लगा। वही घूँघट, न खुलने वाला घूँघट सायंकालीन समीर से हिल कर रह जाता था। ठाकुर साहब हँस रहे थे। गोली दोनों हाथों से सलाम कर रहा था।

रात हो चली थी। भीड़ के बीच गोली बेला को लिये जब फाटक के बाहर पहुँचा, तब एक लड़के ने आकर कहा–'एक्का ठीक है।'

तीनों सीधे उस पर जाकर बैठ गये। एक्का वेग से चल पड़ा।

अभी ठाकुर साहब का दरबार जम रहा था और नट के खेलों की प्रशंसा हो रही थी।

10

गुनाहों का देवता: धर्मवीर भारती

इस उपन्यास के नये संस्करण पर दो शब्द लिखते समय मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि क्या लिखूँ? अधिक-से-अधिक मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता उन सभी पाठकों के प्रति व्यक्त कर सकता हूँ जिन्होंने इसकी कलात्मक अपरिपक्वता के बावजूद इसको पसन्द किया है। मेरे लिए इस उपन्यास का लिखना वैसा ही रहा है जैसा पीड़ा के क्षणों में पूरी आस्था से प्रार्थना करना और इस समय भी मुझे ऐसा लग रहा है जैसे मैं वह प्रार्थना मन-ही-मन दोहरा रहा हूँ, बस...

–धर्मवीर भारती

अगर पुराने जमाने की नगर-देवता की और ग्राम-देवता की कल्पनाएँ आज भी मान्य होतीं तो मैं कहता कि इलाहाबाद का नगर-देवता जरूर कोई रोमांण्टिक कलाकार है। ऐसा लगता है कि इस शहर की बनावट, गठन, जिंदगी और रहन-सहन में कोई बँधे-बँधायें नियम नहीं, कहीं कोई कसाव नहीं, हर जगह एक स्वच्छन्द खुलाव, एक बिखरी हुई-सी अनियमितता। बनारस की गलियों से भी पतली गलियाँ और लखनऊ की सडकों से चौड़ी सडकें। यार्कशायर और ब्राइटन के उपनगरों का मुकाबला करने वाले सिविल लाइन्स और दलदलों की गन्दगी को मात करने वाले मुहल्ले। मौसम में भी कहीं कोई सम नहीं, कोई

सन्तुलन नहीं। सुबहें मलयजी, दोपहरें अंगारी, तो शामें रेशमी! धरती ऐसी कि सहारा के रेगिस्तान की तरह बालू भी मिले, मालवा की तरह हरे-भरे खेत भी मिलें और ऊसर और परती की भी कमी नहीं। सचमुच लगता है कि प्रयाग का नगर-देवता स्वर्ग-कुंजों से निर्वासित कोई मनमौजी कलाकार है जिसके सृजन में हर रंग के डोरे हैं।

और चाहे जो हो, मगर इधर क्वार, कार्तिक तथा उधर वसन्त के बाद और होली के बीच के मौसम से इलाहाबाद का वातावरण नैस्टर्शियम और पैंजी के फूलों से भी ज्यादा खूबसूरत और आम के बौरों की खुशबू से भी ज्यादा महकदार होता है। सिविल लाइन्स हो या अल्फ्रेड पार्क, गंगातट हो या खुसरूबाग, लगता है कि हवा एक नटखट दोशीजा की तरह कलियों के आँचल और लहरों के मिजाज से छेड़खानी करती चलती है और अगर आप सर्दी से बहुत नहीं डरते तो आप जरा एक ओवरकोट डालकर सुबह-सुबह घूमने निकल जाएँ तो इन खुली हुई जगहों की फिजाँ इठलाकर आपको अपने जादू में बाँध लेगी। खासतौर से पौ फटने के पहले तो आपको एक बिल्कुल नयी अनुभूति होगी। वसन्त के नये-नये मौसमी फूलों के रंग से मुकाबला करने वाली हल्की सुनहली, बाल-सूर्य की अँगुलियाँ सुबह की राजकुमारी के गुलाबी वक्ष पर बिखरे हुए भौंराले गेसुओं को धीरे-धीरे हटाती जाती हैं और क्षितिज पर सुनहली तरुणाई बिखर पड़ती है।

एक ऐसी ही खुशनुमा सुबह थी और जिसकी कहानी मैं कहने जा रहा हूँ, वह सुबह से भी ज्यादा मासूम युवक, प्रभाती गाकर फूलों को जगाने वाले देवदूत की तरह अल्फ्रेड पार्क के लॉन पर फूलों की सरजमीं के किनारे-किनारे घूम रहा था। कत्थई स्वीटपी के रंग का पश्मीने का लम्बा कोट, जिसका एक कालर उठा हुआ था और दूसरे कालर में सरो की एक पत्ती बटन होल में लगी हुई थी, सफेद मक्खन जीन की पतली पैंट और पैरों में सफेद जरी की पेशावरी सैण्डिलें, भरा हुआ गोरा चेहरा और ऊँचे चमकते हुए माथे पर झूलती हुई एक रूखी भूरी लट। चलते-चलते उसने एक रंग-बिरंगा गुच्छा इकट्ठा कर लिया था और रह-रह कर वह उसे सूँघ लेता था।

पूरब के आसमान की गुलाबी पाँखुरियाँ बिखरने लगी थीं और सुनहले पराग की एक बौछार सुबह के ताजे फूलों पर बिछ रही थी। 'अरे सुबह हो गयी?' उसने चौंककर कहा और पास की एक बेंच पर बैठ गया। सामने से एक माली आ रहा था। 'क्यों जी, लाइब्रेरी खुल गयी?' 'अभी नहीं बाबूजी!'

उसने जवाब दिया। वह फिर सन्तोष से बैठ गया और फूलों की पाँखुरियाँ नोचकर नीचे फेंकने लगा। जमीन पर बिछाने वाली सोने की चादर परतों पर परतें बिछाती जा रही थी और पेड़ों की छायाओं का रंग गहराने लगा था। उसकी बेंच के नीचे फूलों की चुनी हुई पत्तियाँ बिखरी थीं और अब उसके पास सिर्फ एक फूल बाकी रह गया था। हलके फालसई रंग के उस फूल पर गहरे बैंजनी डोरे थे।

'हलो कपूर!' सहसा किसी ने पीछे से कन्धे पर हाथ रखकर कहा, 'यहाँ क्या झक मार रहे हो सुबह-सुबह?'

उसने मुडकर पीछे देखा, 'आओ, ठाकुर साहब! आओ बैठो यार, लाइब्रेरी खुलने का इन्तजार कर रहा हूँ।'

'क्यों, यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी चाट डाली, अब इसे तो शरीफ लोगों के लिए छोड़ दो!'

'हाँ, हाँ, शरीफ लोगों ही के लिए छोड़ रहा हूँ, डॉक्टर शुक्ला की लड़की है न, वह इसकी मेम्बर बनना चाहती थी तो मुझे आना पड़ा, उसी का इन्तजार भी कर रहा हूँ।'

'डॉक्टर शुक्ला तो पॉलिटिक्स डिपार्टमेंट में हैं?'

'नहीं, गवर्नमेंट साइकोलॉजिकल ब्यूरो में।'

'और तुम पॉलिटिक्स में रिसर्च कर रहे हो?'

'नहीं, इकोनॉमिक्स में!'

'बहुत अच्छे! तो उनकी लड़की को सदस्य बनवाने आये हो?' कुछ अजब स्वर में ठाकुर ने कहा।

'छिह!' कपूर ने हँसते हुए, कुछ अपने को बचाते हुए कहा, 'यार, तुम जानते हो कि मेरा उनसे कितना घरेलू सम्बन्ध है। जब से मैं प्रयाग में हूँ, उन्हीं के सहारे हूँ और आजकल तो उन्हीं के यहाँ पढ़ता-लिखता भी हूँ...।'

ठाकुर साहब हँस पड़े, 'अरे भाई, मैं डॉक्टर शुक्ला को जानता नहीं क्या? उनका-सा भला आदमी मिलना मुश्किल है। तुम सफाई व्यर्थ में दे रहे हो।'

ठाकुर साहब यूनिवर्सिटी के उन विद्यार्थियों में से थे जो बरायनाम विद्यार्थी होते हैं और कब तक वे यूनिवर्सिटी को सुशोभित करते रहेंगे, इसका कोई निश्चय नहीं। एक अच्छे-खासे रुपये वाले व्यक्ति थे और घर के ताल्लुकेदार। हँसमुख, फब्तियाँ कसने में मजा लेने वाले, मगर दिल के साफ, निगाह के सच्चे। बोले-

'एक बात तो मैं स्वीकार करता हूँ कि तुम्हारी पढ़ाई का सारा श्रेय डॉ. शुक्ला को है! तुम्हारे घर वाले तो कुछ खर्चा भेजते नहीं?'

'नहीं, उनसे अलग ही होकर आया था। समझ लो कि इन्होंने किसी-न-किसी बहाने मदद की है।'

'अच्छा, आओ, तब तक लोटस-पोंड (कमल-सरोवर) तक ही घूम लें। फिर लाइब्रेरी भी खुल जाएगी!'

दोनों उठकर एक कृत्रिम कमल-सरोवर की ओर चल दिये जो पास ही में बना हुआ था। सीढ़ियाँ चढकर ही उन्होंने देखा कि एक सज्जन किनारे बैठे कमलों की ओर एकटक देखते हुए ध्यान में तल्लीन हैं। छिपकली से दुबले-पतले, बालों की एक लट माथे पर झूमती हुई-

'कोई प्रेमी हैं, या कोई फिलासफर हैं, देखा ठाकुर?'

'नहीं यार, दोनों से निकृष्ट कोटि के जीव हैं-ये कवि हैं। मैं इन्हें जानता हूँ। ये रवीन्द्र बिसरिया हैं। एम. ए. में पढ़ता है। आओ, मिलाएँ तुम्हें!'

ठाकुर साहब ने एक बड़ा-सा घास का तिनका तोडकर पीछे से चुपके-से जाकर उसकी गरदन गुदगुदायी। बिसरिया चौंक उठा-पीछे मुडकर देखा और बिगड़ गया-'यह क्या बदतमीजी है, ठाकुर साहब! मैं कितने गम्भीर विचारों में डूबा था।'' और सहसा बड़े विचित्र स्वर में आँखें बन्द कर बिसरिया बोला, 'आह! कैसा मनोरम प्रभात है! मेरी आत्मा में घोर अनुभूति हो रही थी...।'

कपूर बिसरिया की मुद्रा पर ठाकुर साहब की ओर देखकर मुसकराया और इशारे में बोला, 'है यार शगल की चीज। छेड़ो जरा!'

ठाकुर साहब ने तिनका फेंक दिया और बोले, 'माफ करना, भाई बिसरिया! बात यह है कि हम लोग कवि तो हैं नहीं, इसलिए समझ नहीं पाते। क्या सोच रहे थे तुम?'

बिसरिया ने आँखें खोलीं और एक गहरी साँस लेकर बोला, 'मैं सोच रहा था कि आखिर प्रेम क्या होता है, क्यों होता है? कविता क्यों लिखी जाती है? फिर कविता के संग्रह उतने क्यों नहीं बिकते जितने उपन्यास या कहानी-संग्रह?'

'बात तो गम्भीर है।' कपूर बोला, 'जहाँ तक मैंने समझा और पढ़ा है-प्रेम एक तरह की बीमारी होती है, मानसिक बीमारी, जो मौसम बदलने के दिनों में होती है, मसलन क्वार-कार्तिक या फागुन-चैत। उसका सम्बन्ध रीढ़ की हड्डी से होता है और कविता एक तरह का सन्निपात होता है। मेरा मतलब आप समझ रहे हैं, मि. सिबरिया?'

'सिबरिया नहीं, बिसरिया?' ठाकुर साहब ने टोका।

बिसरिया ने कुछ उजलत, कुछ परेशानी और कुछ गुस्से से उनकी ओर देखा और बोला, 'क्षमा कीजिएगा, आप या तो फ्रॉयडवादी हैं या प्रगतिवादी और आपके विचार सर्वदा विदेशी हैं। मैं इस तरह के विचारों से घृणा करता हूँ...।'

कपूर कुछ जवाब देने ही वाला था कि ठाकुर साहब बोले, 'अरे भाई, बेकार उलझ गये तुम लोग, पहले परिचय तो कर लो आपस में। ये हैं श्री चन्द्रकुमार कपूर, विश्वविद्यालय में रिसर्च कर रहे हैं और आप हैं श्री रवीन्द्र बिसरिया, इस वर्ष एम. ए. में बैठ रहे हैं। बहुत अच्छे कवि हैं।'

कपूर ने हाथ मिलाया और फिर गम्भीरता से बोला, 'क्यों साहब, आपको दुनिया में और कोई काम नहीं रहा जो आप कविता करते हैं?'

बिसरिया ने ठाकुर साहब की ओर देखा और बोला, 'ठाकुर साहब, यह मेरा अपमान है, मैं इस तरह के सवालों का आदी नहीं हूँ।' और उठ खड़ा हुआ।

'अरे बैठो-बैठो!' ठाकुर साहब ने हाथ खींचकर बिठा लिया, 'देखो, कपूर का मतलब तुम समझे नहीं। उसका कहना यह है कि तुममें इतनी प्रतिभा है कि लोग तुम्हारी प्रतिभा का आदर करना नहीं जानते। इसलिए उन्होंने सहानुभूति में तुमसे कहा कि तुम और कोई काम क्यों नहीं करते। वरना कपूर साहब तुम्हारी कविता के बहुत शौकीन हैं। मुझसे बराबर तारीफ करते हैं।'

बिसरिया पिघल गया और बोला, 'क्षमा कीजिएगा। मैंने गलत समझा, अब मेरा कविता-संग्रह छप रहा है, मैं आपको अवश्य भेंट करूँगा।' और फिर बिसरिया ठाकुर साहब की ओर मुडकर बोला, 'अब लोग मेरी कविताओं की इतनी माँग करते हैं कि मैं परेशान हो गया हूँ। अभी कल 'त्रिवेणी' के सम्पादक मिले। कहने लगे अपना चित्र दे दो। मैंने कहा कि कोई चित्र नहीं है तो पीछे पड़ गये। आखिरकार मैंने आइडेण्टिटी कार्ड उठाकर दे दिया!'

'वाह!' कपूर बोला, 'मान गये आपको हम! तो आप राष्ट्रीय कविताएँ लिखते हैं या प्रेम की?'

'जब जैसा अवसर हो!'' ठाकुर साहब ने जड़ दिया, 'वैसे तो यह वारफ्रण्ट का कवि-सम्मेलन, शराबबन्दी कॉन्फ्रेन्स का कवि-सम्मेलन, शादी-ब्याह का कवि-सम्मेलन, साहित्य-सम्मेलन का कवि-सम्मेलन सभी जगह बुलाये जाते हैं। बड़ा यश है इनका!'

बिसरिया ने प्रशंसा से मुग्ध होकर देखा, मगर फिर एक गर्व का भाव मुँह पर लाकर गम्भीर हो गया।

कपूर थोड़ी देर चुप रहा, फिर बोला, 'तो कुछ हम लोगों को भी सुनाइए न!'

'अभी तो मूड नहीं है।' बिसरिया बोला।

ठाकुर साहब बिसरिया को पिछले पाँच सालों से जानते थे, वे अच्छी तरह जानते थे कि बिसरिया किस समय और कैसे कविता सुनाता है। अतः बोले, 'ऐसे नहीं कपूर, आज शाम को आओ। जरा गंगाजी चलें, कुछ बोटिंग रहे, कुछ खाना-पीना रहे तब कविता भी सुनना!'

कपूर को बोटिंग का बेहद शौक था। फौरन राजी हो गया और शाम का विस्तृत कार्यक्रम बन गया।

इतने में एक कार उधर से लाइब्रेरी की ओर गुजरी। कपूर ने देखा और बोला, 'अच्छा, ठाकुर साहब, मुझे तो इजाजत दीजिए। अब चलूँ लाइब्रेरी में। वो लोग आ गये। आप कहाँ चल रहे हैं?'

'मैं जरा जिमखाने की ओर जा रहा हूँ। अच्छा भाई, तो शाम को पक्की रही।'

'बिल्कुल पक्की!'' कपूर बोला और चल दिया।

लाइब्रेरी के पोर्टिको में कार रुकी थी और उसके अन्दर ही डॉक्टर साहब की लड़की बैठी थी।

'क्यों सुधा, अन्दर क्यों बैठी हो?'

'तुम्हें ही देख रही थी, चन्दर।'' और वह उतर आयी। दुबली-पतली, नाटी-सी, साधारण-सी लड़की, बहुत सुन्दर नहीं, केवल सुन्दर, लेकिन बातचीत में बहुत दुलारी।

'चलो, अन्दर चलो।'' चन्दर ने कहा।

वह आगे बढ़ी, फिर ठिठक गयी और बोली, 'चन्दर, एक आदमी को चार किताबें मिलती हैं?'

'हाँ! क्यों?'

'तो...तो...' उसने बड़े भोलेपन से मुसकराते हुए कहा, 'तो तुम अपने नाम से मेम्बर बन जाओ और दो किताबें हमें दे दिया करना बस, ज्यादा का हम क्या करेंगे?'

'नहीं!'' चन्दर हँसा, 'तुम्हारा तो दिमाग खराब है। खुद क्यों नहीं बनतीं मेम्बर?'

'नहीं, हमें शरम लगती है, तुम बन जाओ मेम्बर हमारी जगह पर।'

'पगली कहीं की!'' चन्दर ने उसका कन्धा पकड़कर आगे ले चलते हुए कहा, 'वाह रे शरम! अभी कल ब्याह होगा तो कहना, हमारी जगह तुम बैठ जाओ चन्दर! कॉलेज में पहुँच गयी लड़कीय अभी शरम नहीं छूटी इसकी! चल अन्दर!'

और वह हिचकती, ठिठकती, झेंपती और मुड़-मुड़कर चन्दर की ओर रूठी हुई निगाहों से देखती हुई अन्दर चली गयी।

थोड़ी देर बाद सुधा चार किताबें लादे हुए निकली। कपूर ने कहा, 'लाओ, मैं ले लूँ!' तो बाँस की पतली टहनी की तरह लहराकर बोली, 'सदस्य मैं हूँ। तुम्हें क्यों दूँ किताबें?' और जाकर कार के अन्दर किताबें पटक दीं। फिर बोली, 'आओ, बैठो, चन्दर!'

'मैं अब घर जाऊँगा।'

'ऊँहूँ, यह देखो!' और उसने भीतर से कागजों का एक बंडल निकाला और बोली, 'देखो, यह पापा ने तुम्हारे लिए दिया है। लखनऊ में कॉन्फ्रेन्स है न। वहीं पढने के लिए यह निबन्ध लिखा है उन्होंने। शाम तक यह टाइप हो जाना चाहिए। जहाँ संख्याएँ हैं वहाँ खुद आपको बैठकर बोलना होगा और पापा सुबह से ही कहीं गये हैं। समझे जनाब!' उसने बिल्कुल अल्हड़ बच्चों की तरह गरदन हिलाकर शोख स्वरों में कहा।

कपूर ने बंडल ले लिया और कुछ सोचता हुआ बोला, 'लेकिन डॉक्टर साहब का हस्तलेख, इतने पृष्ठ, शाम तक कौन टाइप कर देगा?'

'इसका भी इन्तजाम है,' और अपने ब्लाउज में से एक पत्र निकालकर चन्दर के हाथ में देती हुई बोली, 'यह कोई पापा की पुरानी ईसाई छात्रा है। टाइपिस्ट। इसके घर मैं तुम्हें पहुँचाये देती हूँ। मुकर्जी रोड पर रहती है यह। उसी के यहाँ टाइप करवा लेना और यह खत उसे दे देना।'

'लेकिन अभी मैंने चाय नहीं पी।'

'समझ गये, अब तुम सोच रहे होगे कि इसी बहाने सुधा तुम्हें चाय भी पिला देगी। सो मेरा काम नहीं है, जो मैं चाय पिलाऊँ? पापा का काम है यह! चलो, आओ!'

चन्दर जाकर भीतर बैठ गया और किताबें उठाकर देखने लगा, 'अरे, चारों कविता की किताबें उठा लायी-समझ में आएँगी तुम्हारे? क्यों, सुधा?'

'नहीं!' चिढ़ाते हुए सुधा बोली, 'तुम कहो, तुम्हें समझा दें। इकोनॉमिक्स पढने वाले क्या जानें साहित्य?'

'अरे, मुकर्जी रोड पर ले चलो, ड्राइवर!' चन्दर बोला, 'इधर कहाँ चल रहे हो?'

'नहीं, पहले घर चलो!' सुधा बोली, 'चाय पी लो, तब जाना!'

'नहीं, मैं चाय नहीं पिऊँगा।' चन्दर बोला।

'चाय नहीं पिऊँगा, वाह! वाह!' सुधा की हँसी में दूधिया बचपन छलक उठा-'मुँह तो सूखकर गोभी हो रहा है, चाय नहीं पिएँगे।'

बँगला आया तो सुधा ने महराजिन से चाय बनाने के लिए कहा और चन्दर को स्टडी रूम में बिठाकर प्याले निकालने के लिए चल दी।

वैसे तो यह घर, यह परिवार चन्द्र कपूर का अपना हो चुका था, जब से वह अपनी माँ से झगड़कर प्रयाग भाग आया था पढ़ने के लिए, यहाँ आकर बी. ए. में भरती हुआ था और कम खर्च के खयाल से चौक में एक कमरा लेकर रहता था, मतभी डॉक्टर शुक्ला उसके सीनियर टीचर थे और उसकी परिस्थितियों से अवगत थे। चन्दर की अंग्रेजी बहुत ही अच्छी थी और डॉ. शुक्ला उससे अक्सर छोटे-छोटे लेख लिखवाकर पत्रिकाओं में भिजवाते थे। उन्होंने कई पत्रों के आर्थिक स्तम्भ का काम चन्दर को दिलवा दिया था और उसके बाद चन्दर के लिए डॉ. शुक्ला का स्थान अपने संरक्षक और पिता से भी ज्यादा हो गया था। चन्दर शरमीला लड़का था, बेहद शरमीला, कभी उसने यूनिवर्सिटी के वजीफे के लिए भी कोशिश न की थी, लेकिन जब बी. ए. में वह सारी यूनिवर्सिटी में सर्वप्रथम आया तब स्वयं इकोनॉमिक्स विभाग ने उसे यूनिवर्सिटी के आर्थिक प्रकाशनों का वैतनिक सम्पादक बना दिया था। एम. ए. में भी वह सर्वप्रथम आया और उसके बाद उसने रिसर्च ले ली। उसके बाद डॉ. शुक्ला यूनिवर्सिटी से हटकर ब्यूरो में चले गये थे। अगर सच पूछा जाय तो उसके सारे कॅरियर का श्रेय डॉ. शुक्ला को था जिन्होंने हमेशा उसकी हिम्मत बढ़ायी और उसको अपने लड़के से बढ़कर माना। अपनी सारी मदद के बावजूद डॉ. शुक्ला ने उससे इतना अपनापन बनाये रखा कि कैसे धीरे-धीरे चन्दर सारी गैरियत खो बैठाय यह उसे खुद नहीं मालूम। यह बँगला, इसके कमरे, इसके लॉन, इसकी किताबें, इसके निवासी, सभी कुछ जैसे उसके अपने थे और सभी का उससे जाने कितने जन्मों का सम्बन्ध था।

और यह नन्हीं दुबली-पतली रंगीन चन्द्रकिरन-सी सुधा। जब आज से वर्षों पहले यह सातवीं पास करके अपनी बुआ के पास से यहाँ आयी थी तब से लेकर आज तक कैसे वह भी चन्दर की अपनी होती गयी थी, इसे चन्दर खुद

नहीं जानता था। जब वह आयी थी तब वह बहुत शरमीली थी, बहुत भोली थी, आठवीं में पढने के बावजूद वह खाना खाते वक्त रोती थी, मचलती थी तो अपनी कॉपी फाड़ डालती थी और जब तक डॉक्टर साहब उसे गोदी में बिठाकर नहीं मनाते थे, वह स्कूल नहीं जाती थी। तीन बरस की अवस्था में ही उसकी माँ चल बसी थी और दस साल तक वह अपनी बुआ के पास एक गाँव में रही थी। अब तेरह वर्ष की होने पर गाँव वालों ने उसकी शादी पर जोर देना और शादी न होने पर गाँव की औरतों ने हाथ नचाना और मुँह मटकाना शुरू किया तो डॉक्टर साहब ने उसे इलाहाबाद बुलाकर आठवीं में भर्ती करा दिया। जब वह आयी थी तो आधी जंगली थी, तरकारी में घी कम होने पर वह महराजिन का चौका जूठा कर देती थी और रात में फूल तोड़कर न लाने पर अकसर उसने माली को दाँत भी काट खाया था। चन्दर से जरूर वह बेहद डरती थी, पर न जाने क्यों चन्दर भी उससे नहीं बोलता था। लेकिन जब दो साल तक उसके ये उपद्रव जारी रहे और अक्सर डॉक्टर साहब गुस्से के मारे उसे न साथ खिलाते थे और न उससे बोलते थे, तो वह रो-रोकर और सिर पटक-पटककर अपनी जान आधी कर देती थी। तब अक्सर चन्दर ने पिता और पुत्री का समझौता कराया था, अक्सर सुधा को डाँटा था, समझाया था और सुधा, घर-भर से अल्हड़ पुरवाई और विद्रोही झोंके की तरह तोड़-फोड़ मचाती रहने वाली सुधा, चन्दर की आँख के इशारे पर सुबह की नसीम की तरह शान्त हो जाती थी। कब और क्यों उसने चन्दर के इशारों का यह मौन अनुशासन स्वीकार कर लिया था, यह उसे खुद नहीं मालूम था और यह सभी कुछ इतने स्वाभाविक ढंग से, इतना अपने-आप होता गया कि दोनों में से कोई भी इस प्रक्रिया से वाकिफ नहीं था, कोई भी इसके प्रति जागरूक न था, दोनों का एक-दूसरे के प्रति अधिकार और आकर्षण इतना स्वाभाविक था जैसे शरद की पवित्रता या सुबह की रोशनी।

और मजा तो यह था कि चन्दर की शक्ल देखकर छिप जाने वाली सुधा इतनी ढीठ हो गयी थी कि उसका सारा विद्रोह, सारी झुँझलाहट, मिजाज की सारी तेजी, सारा तीखापन और सारा लड़ाई-झगड़ा, सभी की तरफ से हटकर चन्दर की ओर केन्द्रित हो गया था। वह विद्रोहिनी अब शान्त हो गयी थी। इतनी शान्त, इतनी सुशील, इतनी विनम्र, इतनी मिष्टभाषिणी कि सभी को देखकर ताज्जुब होता था, लेकिन चन्दर को देखकर जैसे उसका बचपन फिर लौट आता था और जब तक वह चन्दर को खिझाकर, छेड़कर लड़ नहीं लेती थी उसे चैन नहीं पड़ता था। अक्सर दोनों में अनबोला रहता था, लेकिन जब दो दिन तक दोनों

मुँह फुलाये रहते थे और डॉक्टर साहब के लौटने पर सुधा उत्साह से उनके ब्यूरो का हाल नहीं पूछती थी और खाते वक्त दुलार नहीं दिखाती थी तो डॉक्टर साहब फौरन पूछते थे, 'क्या... चन्दर से लड़ाई हो गयी क्या?' फिर वह मुँह फुलाकर शिकायत करती थी और शिकायतें भी क्या-क्या होती थीं, चन्दर ने उसकी हेड मिस्ट्रेस का नाम एलीफैंटा (श्रीमती हथिनी) रखा था, या चन्दर ने उसको डिबेट के भाषण के प्वाइंट नहीं बताये, या चन्दर कहता है कि सुधा की सखियाँ कोयला बेचती हैं और जब डॉक्टर साहब कहते हैं कि वह चन्दर को डाँट देंगे तो वह खुशी से फूल उठती और चन्दर के आने पर आँखें नचाती हुई चिढ़ाती थी, 'कहो, कैसी डाँट पड़ी?'

वैसे सुधा अपने घर की पुरखिन थी। किस मौसम में कौन-सी तरकारी पापा को माफिक पड़ती है, बाजार में चीजों का क्या भाव है, नौकर चोरी तो नहीं करता, पापा कितने सोसायटियों के मेम्बर हैं, चन्दर के इकोनॉमिक्स के कोर्स में क्या है, यह सभी उसे मालूम था। मोटर या बिजली बिगड़ जाने पर वह थोड़ी-बहुत इंजीनियरिंग भी कर लेती थी और मातृत्व का अंश तो उसमें इतना था कि हर नौकर और नौकरानी उससे अपना सुख-दुःख कह देते थे। पढ़ाई के साथ-साथ घर का सारा काम-काज करते हुए उसका स्वास्थ्य भी कुछ बिगड़ गया था और अपनी उम्र के हिसाब से कुछ अधिक शान्त, संयम, गम्भीर और बुजुर्ग थी, मगर अपने पापा और चन्दर, इन दोनों के सामने हमेशा उसका बचपन इठलाने लगता था। दोनों के सामने उसका हृदय उन्मुक्त था और स्नेह बाधाहीन।

लेकिन हाँ, एक बात थी। उसे जितना स्नेह और स्नेह-भरी फटकारें और स्वास्थ्य के प्रति चिन्ता अपने पापा से मिलती थी, वह सब बड़े निःस्वार्थ भाव से वह चन्दर को दे डालती थी। खाने-पीने की जितनी परवाह उसके पापा उसकी रखते थे, न खाने पर या कम खाने पर उसे जितने दुलार से फटकारते थे, उतना ही ख्याल वह चन्दर का रखती थी और स्वास्थ्य के लिए जो उपदेश उसे पापा से मिलते थे, उसे और भी स्नेह में पागकर वह चन्दर को दे डालती थी। चन्दर कै बजे खाना खाता है, यहाँ से जाकर घर पर कितनी देर पढ़ता है, रात को सोते वक्त दूध पीता है या नहीं, इन सबका लेखा-जोखा उसे सुधा को देना पड़ता और जब कभी उसके खाने-पीने में कोई कमी रह जाती तो उसे सुधा की डाँट खानी ही पड़ती थी। पापा के लिए सुधा अभी बच्ची थी और स्वास्थ्य के मामले में सुधा के लिए चन्दर अभी बच्चा था और कभी-कभी तो सुधा की

स्वास्थ्य-चिन्ता इतनी ज्यादा हो जाती थी कि चन्दर बेचारा जो खुद तन्दुरुस्त था, घबरा उठता था। एक बार सुधा ने कमाल कर दिया। उसकी तबीयत खराब हुई और डॉक्टर ने उसे लड़कियों का एक टॉनिक पीने के लिए बताया। इम्तहान में जब चन्दर कुछ दुबला-सा हो गया तो सुधा अपनी बची हुई दवा ले आयी और लगी चन्दर से जिद करने कि 'पियो इसे!' जब चन्दर ने किसी अखबार में उसका विज्ञापन दिखाकर बताया कि लड़कियों के लिए है, तब कहीं जाकर उसकी जान बची।

इसीलिए जब आज सुधा ने चाय के लिए कहा तो उसकी रूह काँप गयी क्योंकि जब कभी सुधा चाय बनाती थी तो प्याले के मुँह तक दूध भरकर उसमें दो-तीन चम्मच चाय का पानी डाल देती थी और अगर उसने ज्यादा स्ट्रांग चाय की माँग की तो उसे खालिस दूध पीना पड़ता था और चाय के साथ फल और मेवा और खुदा जाने क्या-क्या और उसके बाद सुधा का इसरार, न खाने पर सुधा का गुस्सा और उसके बाद की लम्बी-चौड़ी मनुहारय इस सबसे चन्दर बहुत घबराता था। लेकिन जब सुधा उसे स्टडी रूम में बिठाकर जल्दी से चाय बना लायी तो उसे मजबूर होना पड़ा और बैठे-बैठे निहायत बेबसी से उसने देखा कि सुधा ने प्याले में दूध डाला और उसके बाद थोड़ी-सी चाय डाल दी। उसके बाद अपने प्याले में चाय डालकर और दो चम्मच दूध डालकर आप ठाठ से पीने लगे और बेतकल्लुफी से दूधिया चाय का प्याला चन्दर के सामने खिसकाकर बोली, 'पीजिए, नाश्ता आ रहा है।'

चन्दर ने प्याले को अपने सामने रखा और उसे चारों तरफ घुमाकर देखता रहा कि किस तरफ से उसे चाय का अंश मिल सकता है। जब सभी ओर से प्याले में क्षीरसागर नजर आया तो उसने हारकर प्याला रख दिया।

'क्यों, पीते क्यों नहीं?' सुधा ने अपना प्याला रख दिया।

'पीएँ क्या? कहीं चाय भी हो?'

'तो और क्या खालिस चाय पीजिएगा? दिमागी काम करने वालों को ऐसी ही चाय पीनी चाहिए।'

'तो अब मुझे सोचना पड़ेगा कि मैं चाय छोड़ूँ या रिसर्च। न ऐसी चाय मुझे पसन्द, न ऐसा दिमागी काम!'

'लो, आपको विश्वास नहीं होता। मेरी क्लासफेलो है गेसू काजमीय सबसे तेज लड़की है, उसकी अम्मी उसे दूध में चाय उबालकर देती है।'

'क्या नाम है तुम्हारी सखी का?'

'गेसू!'

'बड़ा अच्छा नाम है!'

'और क्या! मेरी सबसे घनिष्ठ मित्र है और उतनी ही अच्छी है जितना अच्छा नाम!'

'जरूर-जरूर,' मुँह बिचकाते हुए चन्दर ने कहा, 'और उतनी ही काली होगी, जितने काले गेसू।'

'धत्र, शरम नहीं आती किसी लड़की के लिए ऐसा कहते हुए!'

'और हमारे दोस्तों की बुराई करती हो तब?'

'तब क्या! वे तो सब हैं ही बुरे! अच्छा तो नाश्ता, पहले फल खाओ, श' और वह प्लेट में छील-छीलकर सन्तरा रखने लगी। इतने में ज्यों ही वह झुककर एक गिरे हुए सन्तरे को नीचे से उठाने लगी कि चन्दर ने झट से उसका प्याला अपने सामने रख लिया और अपना प्याला उधर रख दिया और शान्त चित्त से पीने लगा। सन्तरे की फाँकें उसकी ओर बढ़ाते हुए ज्यों ही उसने एक घूँट चाय ली तो वह चौंककर बोली, 'अरे, यह क्या हुआ?'

'कुछ नहीं, हमने उसमें दूध डाल दिया। तुम्हें दिमागी काम बहुत रहता है!' चन्दर ने ठाठ से चाय घूँटते हुए कहा। सुधा कुढ़ गयी। कुछ बोली नहीं। चाय खत्म करके चन्दर ने घड़ी देखी।

'अच्छा लाओ, क्या टाइप कराना है? अब बहुत देर हो रही है।'

'बस यहाँ तो एक मिनट बैठना बुरा लगता है आपको! हम कहते हैं कि नाश्ते और खाने के वक्त आदमी को जल्दी नहीं करनी चाहिए। बैठिए न!'

'अरे, तो तुम्हें कॉलेज की तैयारी नहीं करनी है?'

'करनी क्यों नहीं है। आज तो गेसू को मोटर पर लेते हुए तब जाना है!'

'तुम्हारी गेसू और कभी मोटर पर चढ़ी है?'

'जी, वह साबिर हुसैन काजमी की लड़की है, उसके यहाँ दो मोटरें हैं और रोज तो उसके यहाँ दावतें होती रहती हैं।'

'अच्छा, हमारी तो दावत कभी नहीं की?'

'अहा हा, गेसू के यहाँ दावत खाएँगे! इसी मुँह से! जनाब उसकी शादी भी तय हो गयी है, अगले जाड़ों तक शायद हो भी जाय।'

'छिह, बड़ी खराब लड़की हो! कहाँ रहता है ध्यान तुम्हारा?'

सुधा ने मजाक में पराजित कर बहुत विजय-भरी मुसकान से उसकी ओर देखा। चन्दर ने झेंपकर निगाह नीची कर ली तो सुधा पास आकर चन्दर का कन्धा पकड़कर बोली-'अरे उदास हो गये, नहीं भइया, तुम्हारा भी ब्याह तय कराएँगे, घबराते क्यों हो!' और एक मोटी-सी इकोनॉमिक्स की किताब उठाकर बोली, 'लो, इस मुटकी से ब्याह करोगे! लो बातचीत कर लो, तब तक मैं वह निबन्ध ले आऊँ, टाइप कराने वाला।'

चन्दर ने खिसियाकर बड़ी जोर से सुधा का हाथ दबा दिया। 'हाय रे!' सुधा ने हाथ छुड़ाकर मुँह बनाते हुए कहा, 'लो बाबा, हम जा रहे हैं, काहे बिगड़ रहे हैं आप?' और वह चली गयी! डॉक्टर साहब का लिखा हुआ निबन्ध उठा लायी और बोली, 'लो, यह निबन्ध की पाण्डुलिपि है।' उसके बाद चन्दर की ओर बड़े दुलार से देखती हुई बोली, 'शाम को आओगे?'

'न!'

'अच्छा, हम परेशान नहीं करेंगे। तुम चुपचाप पढना। जब रात को पापा आ जाएँ तो उन्हें निबन्ध की प्रतिलिपि देकर चले जाना!'

'नहीं, आज शाम को मेरी दावत है ठाकुर साहब के यहाँ।'

'तो उसके बाद आ जाना और देखो, अब फरवरी आ गयी है, मास्टर ढूँढ़ दो हमें।'

'नहीं, ये सब झूठी बात है। हम कल सुबह आएँगे।'

'अच्छा, तो सुबह जल्दी आना और देखो, मास्टर लाना मत भूलना। ड्राइवर तुम्हें मुकर्जी रोड पहुँचा देगा।'

वह कार में बैठ गया और कार स्टार्ट हो गयी कि फिर सुधा ने पुकारा। वह फिर उतरा। सुधा बोली, 'लो, यह लिफाफा तो भूल ही गये थे। पापा ने लिख दिया है। उसे दे देना।'

'अच्छा।'' कहकर फिर चन्दर चला कि फिर सुधा ने पुकारा, 'सुनो!'

'एक बार में क्यों नहीं कह देती सब!'' चन्दर ने झल्लाकर कहा।

'अरे बड़ी गम्भीर बात है। देखो, वहाँ कुछ ऐसी-वैसी बात मत कहना लड़की से, वरना उसके यहाँ दो बड़े-बड़े बुलडॉग हैं।'' कहकर उसने गाल फुलाकर, आँख फैलाकर ऐसी बुलडॉग की भंगिमा बनायी कि चन्दर हँस पड़ा। सुधा भी हँस पड़ी।

ऐसी थी सुधा और ऐसा था चन्दर।

सिविल लाइन्स के एक उजाड़ हिस्से में एक पुराने-से बँगले के सामने आकर मोटर रुकी। बँगले का नाम था 'रोजलान' लेकिन सामने के कम्पाउंड में जंगली घास उग रही थी और गुलाब के फूलों के बजाय अहाते में मुरगी के पंख बिखरे पड़े थे। रास्ते पर भी घास उग आयी थी और और फाटक पर, जिसके एक खम्भे की कॉर्निस टूट चुकी थी, बजाय लोहे के दरवाजे के दो आड़े बाँस लगे हुए थे। फाटक के एक ओर एक छोटा-सा लकड़ी का नामपटल लगा था, जो कभी काला रहा होगा, लेकिन जिसे धूल, बरसात और हवा ने चितकबरा बना दिया था। चन्दर मोटर से उतरकर उस बोर्ड पर लिखे हुए अधमिटे सफेद अक्षरों को पढने की कोशिश करने लगा और जाने किसका मुँह देखकर सुबह उठा था कि उसे सफलता भी मिल गयी। उस पर लिखा था, 'ए. एफ. डिक्रूज'। उसने जेब से लिफाफा निकाला और पता मिलाया। लिफाफे पर लिखा था, 'मिस पी. डिक्रूज'। यही बँगला है, उसे सन्तोष हुआ।

'हॉर्न दो!' उसने ड्राइवर से कहा। ड्राइवर ने हॉर्न दिया। लेकिन किसी का बाहर आना तो दूर, एक मुरगा, जो अहाते में कुड़कुड़ा रहा था, उसने मुड़कर बड़े सन्देह और त्रस से चन्दर की ओर देखा और उसके बाद पंख फड़फड़ाते हुए, चीखते हुए जान छोड़कर भागा। 'बड़ा मनहूस बँगला है, यहाँ आदमी रहते हैं या प्रेत?' कपूर ने ऊबकर कहा और ड्राइवर से बोला, 'जाओ तुम, हम अन्दर जाकर देखते हैं!'

'अच्छा हुजूर, सुधा बीबी से क्या कह देंगे?'

'कह देना, पहुँचा दिया।'

कार मुड़ी और कपूर बाँस फाँदकर अन्दर घुसा। आगे का पोर्टिको खाली पड़ा था और नीचे की जमीन ऐसी थी जैसे कई साल से उस बँगले में कोई सवारी गाड़ी न आयी हो। वह बरामदे में गया। दरवाजे बन्द थे और उन पर धूल जमी थी। एक जगह चौखट और दरवाजे के बीच में मकड़ी ने जाला बुन रखा था। 'यह बँगला खाली है क्या?' कपूर ने सोचा। सुबह साढ़े आठ बजे ही वहाँ ऐसा सन्नाटा छाया था कि दिल घबरा जाय। आस-पास चारों ओर आधी फर्लांग तक कोई बँगला नहीं था। उसने सोचा बँगले के पीछे की ओर शायद नौकरों की झोंपड़ियाँ हों। वह दायें बाजू से मुड़ा और खुशबू का एक तेज झोंका उसे चूमता हुआ निकल गया। 'ताज्जुब है, यह सन्नाटा, यह मनहूसी और इतनी खुशबू!' कपूर ने कहा और आगे बढ़ा तो देखा कि बँगले के पिछवाड़े गुलाब का एक बहुत खूबसूरत बाग है। कच्ची रविशें और बड़े-बड़े गुलाब, हर रंग के। वह सचमुच 'रोजलान' था।

वह बाग में पहुँचा। उधर से भी बँगले के दरवाजे बन्द थे। उसने खटखटाया लेकिन कोई जवाब नहीं मिला। वह बाग में घुसा कि शायद कोई माली काम कर रहा हो। बीच-बीच में ऊँचे-ऊँचे जंगली चमेली के झाड़ थे और कहीं-कहीं लोहे की छड़ों के कटघरे। बेगमबेलिया भी फूल रही थी लेकिन चारों ओर एक अजब-सा सन्नाटा था और हर फूल पर किसी खामोशी के फरिश्ते की छाँह थी। फूलों में रंग था, हवा में ताजगी थी, पेड़ों में हरियाली थी, झोंकों में खुशबू थी, लेकिन फिर भी सारा बाग एक ऐसे सितारों का गुलदस्ता लग रहा था जिनकी चमक, जिनकी रोशनी और जिनकी ऊँचाई लुट चुकी हो। लगता था जैसे बाग का मालिक मौसमी रंगीनी भूल चुका हो, क्योंकि नैस्टर्शियम या स्वीटपी या फ्लाक्स, कोई भी मौसमी फूल न था, सिर्फ गुलाब थे और जंगली चमेली थी और बेगमबेलिया थी जो सालों पहले बोये गये थे। उसके बाद उन्हीं की काट-छाँट पर बाग चल रहा था। बागबानी में कोई नवीनता और मौसम का उल्लास न था।

चन्दर फूलों का बेहद शौकीन था। सुबह घूमने के लिए उसने दरिया किनारे के बजाय अल्फ्रेड पार्क चुना था क्योंकि पानी की लहरों के बजाय उसे फूलों के बाग के रंग और सौरभ की लहरों से बेहद प्यार था और उसे दूसरा शौक था कि फूलों के पौधों के पास से गुजरते हुए हर फूल को समझने की कोशिश करना। अपनी नाजुक टहनियों पर हँसते-मुसकराते हुए ये फूल जैसे अपने रंगों की बोली में आदमी से जिंदगी का जाने कौन-सा राज कहना चाहते हैं और ऐसा लगता है कि जैसे हर फूल के पास अपना व्यक्तिगत सन्देश है जिसे वह अपने दिल की पाँखुरियों में आहिस्ते से सहेज कर रखे हुए हैं कि कोई सुनने वाला मिले और वह अपनी दास्ताँ कह जाए। पौधे की ऊपरी फुनगी पर मुस्कराता हुआ आसमान की तरफ मुँह किये हुए यह गुलाब जो रात-भर सितारों की मुस्कराहट चुपचाप पीता रहा है, यह अपने मोतियों-पाँखुरियों के होंठों से जाने क्यों खिलखिलाता ही जा रहा है। जाने इसे कौन-सा रहस्य मिल गया है और वह एक नीचे वाली टहनी में आधा झुका हुआ गुलाब, झुकी हुई पलकों-सी पाँखुरियाँ और दोहरे मखमली तार-सी उसकी डंडी, यह गुलाब जाने क्यों उदास है? और यह दुबली-पतली लम्बी-सी नाजुक कली जो बहुत सावधानी से हरा आँचल लपेटे है और प्रथम ज्ञात-यौवना की तरह लाज में जो सिमटी तो सिमटी ही चली जा रही है, लेकिन जिसके यौवन की गुलाबी लपटें सात हरे परदों में से झलकी ही पड़ती हैं, झलकी ही पड़ती हैं और फारस के शाहजादे जैसा शान

से खिला हुआ पीला गुलाब! उस पीले गुलाब के पास आकर चन्दर रुक गया और झुककर देखने लगा। कातिक पूनो के चाँद से झरने वाले अमृत को पीने के लिए व्याकुल किसी सुकुमार, भावुक परी की फैली हुई अंजलि के बराबर बड़ा-सा वह फूल जैसे रोशनी बिखेर रहा था। बेगमबेलिया के कुंज से छनकर आनेवाली तोतापंखी धूप ने जैसे उस पर धान-पान की तरह खुशनुमा हरियाली बिखेर दी थी। चन्दर ने सोचा, उसे तोड़ लें लेकिन हिम्मत न पड़ी। वह झुका कि उसे सूँघ ही लें। सूँघने के इरादे से उसने हाथ बढ़ाया ही था कि किसी ने पीछे से गरजकर कहा, 'हीयर यू आर, आई हैव काट रेड-हैण्डेड टुडे!' (यह तुम हो, आज तुम्हें मौके पर पकड़ पाया हूँ)

और उसके बाद किसी ने अपने दोनों हाथों में जकड़ लिया और उसकी गरदन पर सवार हो गया। वह उछल पड़ा और अपने को छुड़ाने की कोशिश करने लगा। पहले तो वह कुछ समझ नहीं पाया। अजब रहस्यमय है यह बँगला। एक अव्यक्त भय और एक सिहरन में उसके हाथ-पाँव ढीले हो गये। लेकिन उसने हिम्मत करके अपना एक हाथ छुड़ा लिया और मुड़कर देखा तो एक बहुत कमजोर, बीमार-सा, पीली आँखों वाला गोरा उसे पकड़े हुए था। चन्दर के दूसरे हाथ को फिर पकड़ने की कोशिश करता हुआ वह हाँफता हुआ बोला (अंग्रेजी में), 'रोज-रोज यहाँ से फूल गायब होते थे। मैं कहता था, कहता था, कौन ले जाता है। हो...हो..., ' वह हाँफता जा रहा था, 'आज मैंने पकड़ा तुम्हें। रोज चुपके से चले जाते थे...' वह चन्दर को कसकर पकड़े था लेकिन उस बीमार गोरे की साँस जैसे छूटी जा रही थी। चन्दर ने उसे झटका देकर धकेल दिया और डाँटकर बोला, 'क्या मतलब है तुम्हारा! पागल है क्या! खबरदार जो हाथ बढ़ाया, अभी ढेर कर दूँगा तुझे! गोरा सुअर!' और उसने अपनी आस्तीनें चढ़ायीं।

वह धक्के से गिर गया था, धूल झाड़ते उठ बैठा और बड़ी ही रोनी आवाज में बोला, 'कितना जुल्म है, कितना जुल्म है! मेरे फूल भी तुम चुरा ले गये और मुझे इतना हक भी नहीं कि तुम्हें धमकाऊँ! अब तुम मुझसे लड़ोगे! तुम जवान हो, मैं बूढ़ा हूँ। हाय रे मैं!' और सचमुच वह जैसे रोने लगा हो।

चन्दर ने उसका रोना देखा और उसका सारा गुस्सा हवा हो गया और हँसी रोककर बोला, 'गलतफहमी है, जनाब! मैं बहुत दूर रहता हूँ। मैं चिठ्ठी लेकर मिस डिक्रूज से मिलने आया था।'

उसका रोना नहीं रुका, 'तुम बहाना बनाते हो, बहाना बनाते हो और अगर मैं विश्वास नहीं करता तो तुम मारने की धमकी देते हो? अगर मैं कमजोर न

होता...तो तुम्हें पीसकर खा जाता और तुम्हारी खोपड़ी कुचलकर फेंक देता जैसे तुमने मेरे फूल फेंके होंगे?'

'फिर तुमने गाली दी! मैं उठाकर तुम्हें अभी नाले में फेंक दूँगा!'

'अरे बाप रे! दौड़ो, दौड़ो, मुझे मार डाला...पॉपी...टॉमी...अरे दोनों कुत्ते मर गये...।' उसने डर के मारे चीखना शुरू किया।

'क्या है, बर्टी? क्यों चिल्ला रहे हो?'' बाथरूम के अन्दर से किसी ने चिल्लाकर कहा।

'अरे मार डाला इसने...दौड़ो-दौड़ो!'

झटके से बाथरूम का दरवाजा खुला बेदिङ्-गाउन पहने हुए एक लड़की दौड़ती हुई आयी और चन्दर को देखकर रुक गयी।

'क्या है?' उसने डाँटकर पूछा।

'कुछ नहीं, शायद पागल मालूम देता है!'

'जबान सँभालकर बोलो, वह मेरा भाई है!'

'ओह! कोई भी हो। मैं मिस डिक्रूज से मिलने आया था। मैंने आवाज दी तो कोई नहीं बोला। मैं बाग में घूमने लगा। इतने में इसने मेरी गरदन पकड़ ली। यह बीमार और कमजोर है वरना अभी गरदन दबा देता।'

गोरा उस लड़की के आते ही फिर तनकर खड़ा हो गया और दाँत पीसकर बोला, 'अरे मैं तुम्हारे दाँत तोड़ दूँगा। बदमाश कहीं का, चुपके-चुपके आया और गुलाब तोडने लगा। मैं चमेली के झाड़ के पीछे छिपा देख रहा था।'

'अभी मैं पुलिस बुलाती हूँ, तुम देखते रहो बर्टी इसे। मैं फोन करती हूँ।' लड़की ने डाँटते हुए कहा।

'अरे भाई, मैं मिस डिक्रूज से मिलने आया हूँ।'

'मैं तुम्हें नहीं जानती, झूठा कहीं का। मैं मिस डिक्रूज हूँ।'

'देखिए तो यह खत!'

लड़की ने खत खोला और पढ़ा और एकदम उसने आवाज बदल दी।

'छिह बर्टी, तुम किसी दिन पागलखाने जाओगे। आपको डॉ. शुक्ला ने भेजा है। तुम तो मुझे बदनाम करा डालोगे!'

उसकी शक्ल और भी रोनी हो गयी, 'मैं नहीं जानता था, मैं जानता नहीं था।'' उसने और भी घबराकर कहा।

'माफ कीजिएगा!'' लड़की ने बड़े मीठे स्वर में साफ हिन्दुस्तानी में कहा, 'मेरे भाई का दिमाग जरा ठीक नहीं रहता, जब से इनकी पत्नी की मौत हो गयी।'

'इसका मतलब ये नहीं कि ये किसी भले आदमी की इज्जत उतार लें।'' चन्दर ने बिगडकर कहा।

'देखिए, बुरा मत मानिए। मैं इनकी ओर से माफी माँगती हूँ। आइए, अन्दर चलिए।' उसने चन्दर का हाथ पकड़ लिया। उसका हाथ बेहद ठण्डा था। वह नहाकर आ रही थी। उसके हाथ के उस तुषार स्पर्श से चन्दर सिहर उठा और उसने हाथ झटककर कहा, 'अफसोस, आपका हाथ तो बर्फ है?'

लड़की चौंक गयी। वह सद्यस्नाता सहसा सचेत हो गयी और बोली, 'अरे शैतान तुम्हें ले जाए, बर्टी! तुम्हारे पीछे मैं बेदिङ् गाउन में भाग आयी।'' और बेदिङ् गाउन के दोनों कालर पकड़कर उसने अपनी खुली गरदन ढँकने का प्रयास किया और फिर अपनी पोशाक पर लज्जित होकर भागी।

अभी तक गुस्से के मारे चन्दर ने उस पर ध्यान ही नहीं दिया था। लेकिन उसने देखा कि वह तेईस बरस की दुबली-पतली तरुणी है। लहराता हुआ बदन, गले तक कटे हुए बाल। एंग्लो-इंडियन होने के बावजूद गोरी नहीं है। चाय की तरह वह हल्की, पतली, भूरी और तुर्श थी। भागते वक्त ऐसी लग रही थी जैसे छलकती हुई चाय।

इतने में वह गोरा उठा और चन्दर का कन्धा छूकर बोला, 'माफ करना, भाई! उससे मेरी शिकायत मत करना। असल में ये गुलाब मेरी मृत पत्नी की यादगार हैं। जब इनका पहला पेड़ आया था तब मैं इतना ही जवान था जितने तुम और मेरी पत्नी उतनी ही अच्छी थी जितनी पम्मी।'

'कौन पम्मी?'

'यह मेरी बहन प्रमिला डिक्रूज!'

'ओह! कब मरी आपकी पत्नी?ड्ढ माफ कीजिएगा मुझे भी मालूम नहीं था!'

'हाँ, मैं बड़ा अभागा हूँ। मेरा दिमाग कुछ खराब है, देखिए!' कहकर उसने झुककर अपनी खोपड़ी चन्दर के सामने कर दी और बहुत गिड़गिड़ाकर बोला, 'पता नहीं कौन मेरे फूल चुरा ले जाता है! अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद पाँच साल से मैं इन फूलों को सँभाल रहा हूँ! हाय रे मैं! जाइए, पम्मी बुला रही है।'

पिछवाड़े के सहन का बीच का दरवाजा खुल गया था और पम्मी कपड़े पहनकर बाहर झाँक रही थी। चन्दर आगे बढ़ा और गोरा मुड़कर अपने गुलाब और चमेली की झाड़ी में खो गया। चन्दर गया और कमरे में पड़े हुए एक सोफा पर बैठ गया। पम्मी ट्वायलेट कर चुकी थी और एक हल्की फ्रान्सीसी खुशबू

से महक रही थी। शैम्पू से धुले हुए रूखे बाल जो मचले पड़ रहे थे, खुशनुमा आसमानी रंग का एक पतला चिपका हुआ झीना ब्लाउज और ब्लाउज पर एक फ्लैनेल का फुलपैंट जिसके दो गेलिस कमर, छाती और कन्धे पर चिपके हुए थे। होंठों पर एक हल्की लिपस्टिक की झलक मात्र थी और गले तक बहुत हल्का पाउडर, जो बहुत नजदीक से ही मालूम होता था। लम्बे नाखूनों पर हल्की गुलाबी पैंट। वह आयी, निस्संकोच भाव से उसी सोफे पर कपूर के बगल में बैठ गयी और बड़ी मुलायम आवाज में बोली, 'मुझे बड़ा दु:ख है, मिस्टर कपूर! आपको बहुत तवालत उठानी पड़ी। चोट तो नहीं आयी?'

'नहीं, नहीं, कोई बात नहीं!' कपूर का सारा गुस्सा हवा हो गया। कोई भी लड़की नि:संकोच भाव से, इतनी अपनायत से सहानुभूति दिखाये और माफी माँगे, तो उसके सामने कौन पानी-पानी नहीं हो जाएगा और फिर वह भी तब जबकि उसके होंठों पर न केवल बोली अच्छी लगती हो, वरन लिपस्टिक भी इतनी प्यारी हो। लेकिन चन्दर की एक आदत थी और चाहे कुछ न हो, कम-से-कम वह यह अच्छी तरह जानता था कि नारी जाति से व्यवहार करते समय कहाँ पर कितनी ढील देनी चाहिए, कितना कसना चाहिए, कब सहानुभूति से उन्हें झुकाया जा सकता है, कब अकड़कर। इस वक्त जानता था कि इस लड़की से वह जितनी सहानुभूति चाहे, ले सकता है, अपने अपमान के हर्जाने के तौर पर। इसलिए कपूर साहब बोले, 'लेकिन मिस डिक्रूज, आपके भाई बीमार होने के बावजूद बहुत मजबूत हैं। उफ! गरदन पर जैसे अभी तक जलन हो रही है।'

'ओहो! सचमुच मैं बहुत शर्मिन्दा हूँ। देखूँ!'' और कालर हटाकर उसने गरदन पर अपनी बर्फीली अँगुलियाँ रख दीं, 'लाइए, लोशन मल दूँ मैं!'

'धन्यवाद, धन्यवाद, इतना कष्ट न कीजिए। आपकी अँगुलियाँ गन्दी हो जाएँगी!' कपूर ने बड़ी शालीनता से कहा।

पम्मी के होठों पर एक हल्की-सी मुस्कराहट, आँखों में हल्की-सी लाज और वक्ष में एक हल्का-सा कम्पन दौड़ गया। यह वाक्य कपूर ने चाहे शरारत में ही कहा हो, लेकिन कहा इतने शान्त और संयत स्वरों में कि पम्मी कुछ प्रतिवाद भी न कर सकी और फिर छह बरस से साठ बरस तक की कौन ऐसी स्त्री है, जो अपने रूप की प्रशंसा पर बेहोश न हो जाए।

'अच्छा लाइए, वह स्पीच कहाँ है, जो मुझे टाइप करनी है।' उसने विषय बदलते हुए कहा।

'यह लीजिए।' कपूर ने दे दी।

'यह तो मुश्किल से तीन-चार घण्टे का काम है?' और पम्मी स्पीच को उलट-पुलटकर देखने लगी।

'माफ कीजिएगा, अगर मैं कुछ व्यक्तिगत सवाल पूछूँ, क्या आप टाइपिस्ट हैं?' कपूर ने बहुत शिष्टता से पूछा।

'जी नहीं!' पम्मी ने उन्हीं कागजों पर नजर गड़ाते हुए कहा, 'मैंने कभी टाइपिंग और शार्टहैंड सीखी थी और तब मैं सीनियर केम्ब्रिज पास करके यूनिवर्सिटी गयी थी। यूनिवर्सिटी मुझे छोड़नी पड़ी क्योंकि मैंने अपनी शादी कर ली।'

'अच्छा, आपके पति कहाँ हैं?'

'रावलपिंडी में, आर्मी में।'

'लेकिन फिर आप डिक्रूज क्यों लिखती हैं और फिर मिस?'

'क्योंकि हमलोग अलग हो गये हैं।' और स्पीच के कागज को फिर तह करती हुई बोली-

'मिस्टर कपूर, आप अविवाहित हैं?'

'जी हाँ?'

'और विवाह करने का इरादा तो नहीं रखते?'

'नहीं।'

'बहुत अच्छे। तब तो हम लोगों में निभ जाएगी। मैं शादी से बहुत नफरत करती हूँ। शादी अपने को दिया जानेवाला सबसे बड़ा धोखा है। देखिए, ये मेरे भाई हैं न, कैसे पीले और बीमार-से हैं। ये पहले बड़े तन्दुरुस्त और टेनिस में प्रान्त के अच्छे खिलाड़ियों में से थे। एक बिशप की दुबली-पतली भावुक लड़की से इन्होंने शादी कर ली और उसे बेहद प्यार करते थे। सुबह-शाम, दोपहर, रात कभी उसे अलग नहीं होने देते थे। हनीमून के लिए उसे लेकर सीलोन गये थे। वह लड़की बहुत कलाप्रिय थी। बहुत अच्छा नाचती थी, बहुत अच्छा गाती थी और खुद गीत लिखती थी। यह गुलाब का बाग उसी ने बनवाया था और इन्हीं के बीच में दोनों बैठकर घंटों गुजार देते थे।

'कुछ दिनों बाद दोनों में झगड़ा हुआ। क्लब में बॉल डान्स था और उस दिन वह लड़की बहुत अच्छी लग रही थी। बहुत अच्छी। डान्स के वक्त इनका ध्यान डान्स की तरफ कम था, अपनी पत्नी की तरफ ज्यादा। इन्होंने आवेश में

उसकी अँगुलियाँ जोर से दबा दीं। वह चीख पड़ी और सभी इन लोगों की ओर देखकर हँस पड़े।

'वह घर आयी और बहुत बिगड़ी, बोली, 'आप नाच रहे थे या टेनिस का मैच खेल रहे थे, मेरा हाथ था या टेनिस का रैकट?' इस बात पर बर्टी भी बिगड़ गया और उस दिन से जो इन लोगों में खटकी तो फिर कभी न बनी। धीरे-धीरे वह लड़की एक सार्जेंट को प्यार करने लगी। बर्टी को इतना सदमा हुआ कि वह बीमार पड़ गया। लेकिन बर्टी ने तलाक नहीं दिया, उस लड़की से कुछ कहा भी नहीं और उस लड़की ने सार्जेंट से प्यार जारी रखा लेकिन बीमारी में बर्टी की बहुत सेवा की। बर्टी अच्छा हो गया। उसके बाद उसको एक बच्ची हुई और उसी में वह मर गयी। हालाँकि हम लोग सब जानते हैं कि वह बच्ची उस सार्जेंट की थी लेकिन बर्टी को यकीन नहीं होता कि वह सार्जेंट को प्यार करती थी। वह कहता है, 'यह दूसरे को प्यार करती होती तो मेरी इतनी सेवा कैसे कर सकती थी भला!' उस बच्ची का नाम बर्टी ने रोज रखा और उसे लेकर दिनभर उन्हीं गुलाब के पेड़ों के बीच में बैठा करता था जैसे अपनी पत्नी को लेकर बैठता था। दो साल बाद बच्ची को साँप ने काट लिया, वह मर गयी और तब से बर्टी का दिमाग ठीक नहीं रहता। खैर, जाने दीजिए। आइए, अपना काम शुरू करें। चलिए, अन्दर के स्टडी-रूम में चलें!'

'चलिए!' चन्दर बोला और पम्मी के पीछे-पीछे चल दिया। मकान बहुत बड़ा था और पुराने अंग्रेजों के ढंग पर सजा हुआ था। बाहर से जितना पुराना और गन्दा नजर आता था, अन्दर से उतना ही आलीशान और सुथरा। ईस्ट इंडिया कम्पनी के जमाने की छाप थी अन्दर। यहाँ तक कि बिजली लगने के बावजूद अन्दर पुराने बड़े-बड़े हाथ से खींचे जाने वाले पंखे लगे थे। दो कमरों को पार कर वे लोग स्टडी-रूम में पहुँचे। बड़ा-सा कमरा जिसमें चारों तरफ अलमारियों में किताबें सजी हुई थीं। चार कोने में चार मेजें लगी हुई थीं जिनमें कुछ बस्ट और कुछ तस्वीरें स्टैंड के सहारे रखी हुई थीं। एक अलमारी में नीचे खाने में टाइपराइटर रखा था। पम्मी ने बिजली जला दी और टाइपराइटर खोलकर साफ करने लगी। चन्दर घूमकर किताबें देखने लगा। एक कोने में कुछ मराठी की किताबें रखी थीं। उसे बड़ा ताज्जुब हुआ-'अच्छा पम्मी, ओह, माफ कीजिएगा, मिस डिक्रूज...'

'नहीं, आप मुझे पम्मी पुकार सकते हैं। मुझे यही नाम अच्छा लगता है-हाँ, क्या पूछ रहे थे आप?'

'क्या आप मराठी भी जानती हैं?'

'नहीं, मैं तो नहीं, मेरी नानीजी जानती थीं। क्या आपको डॉक्टर शुक्ला ने हमलोगों के बारे में कुछ नहीं बताया?'

'नहीं!' कपूर ने कहा।

'अच्छा! ताज्जुब है!' पम्मी बोली, 'आपने ट्रेनाली डिक्रूज का नाम सुना है न?'

'हाँ हाँ, डिक्रूज जिन्होंने कौशाम्बी की खुदाई करवायी थी। वह तो बहुत बड़े पुरातत्त्ववेत्ता थे?' कपूर ने कहा।

'हाँ, वही। वह मेरे सगे नाना थे और वह अंग्रेज नहीं थे, मराठा थे और उन्होंने मेरी नानी से शादी की थी जो एक कश्मीरी ईसाई महिला थीं। उनके कारण भारत में उन्हें ईसाइयत अपनानी पड़ी। यह मेरे नाना का ही मकान है और अब हम लोगों को मिल गया है। डॉ. शुक्ला के दोस्त मिस्टर श्रीवास्तव बैरिस्टर हैं न, वे हमारे खानदान के ऐटर्नी थे। उन्होंने और डॉ. शुक्ला ने ही यह जायदाद हमें दिलवायी। लीजिए, मशीन तो ठीक हो गयी।'' उसने टाइपराइटर में कार्बन और कागज लगाकर कहा, 'लाइए निबन्ध!'

इसके बाद घंटे-भर तक टाइपराइटर रुका नहीं। कपूर ने देखा कि यह लड़की जो व्यवहार में इतनी सरल और स्पष्ट है, फैशन में इतनी नाजुक और शौकीन है, काम करने में उतनी ही मेहनती और तेज भी है। उसकी अँगुलियाँ मशीन की तरह चल रही थीं और तेज इतनी कि एक घंटे में उसने लगभग आधी पांडुलिपि टाइप कर डाली थी। ठीक एक घण्टे के बाद उसने टाइपराइटर बन्द कर दिया, बगल में बैठे हुए कपूर की ओर झुककर कहा, 'अब थोड़ी देर आराम।'' और अपनी अँगुलियाँ चटखाने के बाद वह कुरसी खिसकाकर उठी और एक भरपूर अँगड़ाई ली। उसका अंग-अंग धनुष की तरह झुक गया। उसके बाद कपूर के कन्धे पर बेतकल्लुफी से हाथ रखकर बोली, 'क्यों, एक प्याला चाय मँगवायी जाय?'

'मैं तो पी चुका हूँ।'

'लेकिन मुझसे तो काम होने से रहा अब बिना चाय के।' पम्मी एक अल्हड़ बच्ची की तरह बोली और अन्दर चली गयी। कपूर ने टाइप किये हुए कागज उठाये और कलम निकालकर उनकी गलतियाँ सुधारने लगा। चाय पीकर थोड़ी देर में पम्मी वापस आयी और बैठ गयी। उसने एक सिगरेट केस कपूर के सामने किया।

'धन्यवाद, मैं सिगरेट नहीं पीता।'

'अच्छा, ताज्जुब है, आपकी इजाजत हो तो मैं सिगरेट पी लूँ!'

'क्या आप सिगरेट पीती हैं? छिह, पता नहीं क्यों औरतों का सिगरेट पीना मुझे बहुत ही नासपन्द है।'

'मेरी तो मजबूरी है मिस्टर कपूर, मैं यहाँ के समाज में मिलती-जुलती नहीं, अपने विवाह और अपने तलाक के बाद मुझे ऐंग्लो-इंडियन समाज से नफरत हो गयी है। मैं अपने दिल से हिन्दुस्तानी हूँ। लेकिन हिन्दुस्तानियों से घुलना-मिलना हमारे लिए सम्भव नहीं। घर में अकेले रहती हूँ। सिगरेट और चाय से तबीयत बदल जाती है। किताबों का मुझे शौक नहीं।'

'तलाक के बाद आपने पढ़ाई जारी क्यों नहीं रखी?' कपूर ने पूछा।

'मैंने कहा न, कि किताबों का मुझे शौक नहीं बिल्कुल!' पम्मी बोली। 'और मैं अपने को आदमियों में घुलने-मिलने के लायक नहीं पाती। तलाक के बाद साल-भर तक मैं अपने घर में बन्द रही। मैं और बर्टी। सिर्फ बर्टी से बात करने का मौका मिला। बर्टी मेरा भाई, वह भी बीमार और बूढ़ा। कहीं कोई तकल्लुफ की गुंजाइश नहीं। अब मैं हरेक से बेतकल्लुफी से बात करती हूँ तो कुछ लोग मुझ पर हँसते हैं, कुछ लोग मुझे सभ्य समाज के लायक नहीं समझते, कुछ लोग उसका गलत मतलब निकालते हैं। इसलिए मैंने अपने को अपने बँगले में ही कैद कर लिया है। अब आप ही हैं, आज पहली बार मैंने देखा आपको। मैं समझी ही नहीं कि आपसे कितना दुराव रखना चाहिए। अगर आप भलेमानस न हों तो आप इसका गलत मतलब निकाल सकते हैं।'

'अगर यही बात हो तो...' कपूर हँसकर बोला, 'सम्भव है कि मैं भलेमानस बनने के बजाय गलत मतलब निकालना ज्यादा पसन्द करूँ।'

'तो सम्भव है मैं मजबूर होकर आपसे भी न मिलूँ!'' पम्मी गम्भीरता से बोली।

'नहीं, मिस डिक्रूज...'

'नहीं, आप पम्मी कहिए, डिक्रूज नहीं!'

'पम्मी सही, आप गलत न समझें, मैं मजाक कर रहा था।'' कपूर बोला। उसने इतनी देर में समझ लिया था कि यह साधारण ईसाई छोकरी नहीं है।

इतने में बर्टी लडखड़ाता हुआ, हाथ में धूल सना खुरपा लिये आया और चुपचाप खड़ा हो गया और अपनी धुँधली पीली आँखों से एकटक कपूर को देखने लगा। कपूर ने एक कुरसी खिसका दी और कहा, 'आइए!' पम्मी उठी

और बर्टी के कन्धे पर एक हाथ रखकर उसे सहारा देकर कुरसी पर बिठा दिया। बर्टी बैठ गया और आँखें बन्द कर लीं। उसका बीमार कमजोर व्यक्तित्त्व जाने कैसा लगता था कि पम्मी और कपूर दोनों चुप हो गये। थोड़ी देर बाद बर्टी ने आँखें खोलीं और बहुत करुण स्वर में बोला, 'पम्मी, तुम नाराज हो, मैंने जान-बूझकर तुम्हारे मित्र का अपमान नहीं किया था?'

'अरे नहीं!' पम्मी ने उठकर बर्टी का माथा सहलाते हुए कहा, 'मैं तो भूल गयी और कपूर भी भूल गये?'

'अच्छा, धन्यवाद! पम्मी, अपना हाथ इधर लाओ!' और वह पम्मी के हाथ पर सिर रखकर पड़ रहा और बोला, 'मैं कितना अभागा हूँ! कितना अभागा! अच्छा पम्मी, कल रात को तुमने सुना था, वह आयी थी और पूछ रही थी, बर्टी तुम्हारी तबीयत अब ठीक है, मैंने झट अपनी आँखें ढँक लीं कि कहीं आँखों का पीलापन देख न ले। मैंने कहा, तबीयत अब ठीक है, मैं अच्छा हूँ तो उठी और जाने लगी। मैंने पूछा, कहाँ चली, तो बोली सार्जेंट के साथ जरा क्लब जा रही हूँ। तुमने सुना था पम्मी?'

कपूर स्तब्ध-सा उन दोनों की ओर देख रहा था। पम्मी ने कपूर को आँख का इशारा करते हुए कहा, 'हाँ, हमसे मिली थी वह, लेकिन बर्टी, वह सार्जेंट के साथ नहीं गयी थी!'

'हाँ, तब?' बर्टी की आँखें चमक उठीं और उसने उल्लास-भरे स्वर में पूछा।

'वह बोली, बर्टी के ये गुलाब सार्जेंट से ज्यादा प्यारे हैं।' पम्मी बोली।

'अच्छा!' मुसकराहट से बर्टी का चेहरा खिल उठा, उसकी पीली-पीली आँखें और धँस गयीं और दाँत बाहर झलकने लगे, 'हूँ! क्या कहा उसने, फिर तो कहो!'

उसने कहा, 'ये गुलाब सार्जेंट से ज्यादा प्यारे हैं, फिर इन्हीं गुलाबों पर नाचती रही और सुबह होते ही इन्हीं फूलों में छिप गयी! तुम्हें सुबह किसी फूल में तो नहीं मिली?'

'उहूँ, तुम्हें तो किसी फूल में नहीं मिली?' बर्टी ने बच्चों के-से भोले विश्वास के स्वरों में कपूर से पूछा।

चन्दर चौंक उठा। पम्मी और बर्टी की इन बातों पर उसका मन बेहद भर आया था। बर्टी की मुसकराहट पर उसकी नसें थरथरा उठी थीं।

'नहीं, मैंने तो नहीं देखा था।' चन्दर ने कहा।

बर्टी ने फिर मायूसी से सिर झुका लिया और आँखें बन्द कर लीं और कराहती हुई आवाज में बोला, 'जिस फूल में वह छिप गयी थी, उसी को किसी ने चुरा लिया होगा!' फिर सहसा वह तनकर खड़ा हो गया और पुचकारते हुए बोला, 'जाने कौन ये फूल चुराता है! अगर मुझे एक बार मिल जाए तो मैं उसका खून ऐसे पी लूँ!' उसने हाथ की अँगुली काटते हुए कहा और उठकर लड़खड़ाता हुआ चला गया।

वातावरण इतना भारी हो गया था कि फिर पम्मी और कपूर ने कोई बातें नहीं कीं। पम्मी ने चुपचाप टाइप करना शुरू किया और कपूर चुपचाप बर्टी की बातें सोचता रहा। घंटा-भर बाद टाइपराइटर खामोश हुआ तो कपूर ने कहा-

'पम्मी, मैंने जितने लोग देखे हैं उनमें शायद बर्टी सबसे विचित्र है और शायद सबसे दयनीय!'

पम्मी खामोश रही। फिर उसी लापरवाही से अँगड़ाई लेते हुए बोली, 'मुझे बर्टी की बातों पर जरा भी दया नहीं आती। मैं उसको दिलासा देती हूँ क्योंकि वह मेरा भाई है और बच्चे की तरह नासमझ और लाचार है।'

कपूर चौंक गया। वह पम्मी की ओर आश्चर्य से चुपचाप देखता रहाय कुछ बोला नहीं।

'क्यों, तुम्हें ताज्जुब क्यों होता है?' पम्मी ने कुछ मुसकराकर कहा, 'लेकिन मैं सच कहती हूँ'-वह बहुत गम्भीर हो गयी, 'मुझे जरा तरस नहीं आता इस पागलपन पर।' क्षण-भर चुप रही, फिर जैसे बहुत ही तेजी से बोली, 'तुम जानते हो उसके फूल कौन चुराता है? मैं, मैं उसके फूल तोडकर फेंक देती हूँ। मुझे शादी से नफरत है, शादी के बाद होने वाली आपसी धोखेबाजी से नफरत है और उस धोखेबाजी के बाद इस झूठ-मूठ की यादगार और बेईमानी के पागलपन से नफरत है और ये गुलाब के फूल, ये क्यों मूल्यवान हैं, इसलिए न कि इसके साथ बर्टी की जिंदगी की इतनी बड़ी ट्रेजेडी गुँथी हुई है। अगर एक फूल के खूबसूरत होने के लिए आदमी की जिंदगी में इतनी बड़ी ट्रेजेडी आना जरूरी है तो लानत है उस फूल की खूबसूरती पर! मैं उससे नफरत करती हूँ। इसीलिए मैं किताबों से नफरत करती हूँ। एक कहानी लिखने के लिए कितनी कहानियों की ट्रेजेडी बर्दाश्त करनी होती है।'

पम्मी चुप हो गयी। उसका चेहरा सुर्ख हो गया था। थोड़ी देर बाद उसका तैश उतर गया और वह अपने आवेश पर खुद शरमा गयी। उठकर वह कपूर के

पास गयी और उसके कन्धों पर हाथ रखकर बोली, 'बर्टी से मत कहना, अच्छा?'

कपूर ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी और कागज समेटकर खड़ा हुआ। पम्मी ने उसके कन्धों पर हाथ रखकर उसे अपनी ओर घुमाकर कहा, 'देखो, पिछले चार साल से मैं अकेली थी और किसी दोस्त का इन्तजार कर रही थी, तुम आये और दोस्त बन गये। तो अब अक्सर आना, ऐं?'

'अच्छा!' कपूर ने गम्भीरता से कहा।

'डॉ. शुक्ला से मेरा अभिवादन कहना, कभी यहाँ जरूर आएँ।'

'आप कभी चलिए, वहाँ उनकी लड़की है। आप उससे मिलकर खुश होंगी।'

पम्मी उसके साथ फाटक तक पहुँचाने चली तो देखा बर्टी एक चमेली के झाड़ में टहनियाँ हटा-हटाकर कुछ ढूँढ़ रहा था। पम्मी को देखकर पूछा उसने-'तुम्हें याद है, वह चमेली के झाड़ में तो नहीं छिपी थी?' कपूर ने पता नहीं क्यों जल्दी पम्मी को अभिवादन किया और चल दिया। उसे बर्टी को देखकर डर लगता था।

सुधा का कॉलेज बड़ा एकान्त और खूबसूरत जगह बना हुआ था। दोनों ओर ऊँची-सी मेड़ और बीच में से कंकड़ की एक खूबसूरत घुमावदार सड़क। दायीं ओर चने और गेहूँ के खेत, बेर और शहतूत के झाड़ और बायीं ओर ऊँचे-ऊँचे टीले और ताड़ के लम्बे-लम्बे पेड़। शहर से काफी बाहर देहात का-सा नजारा और इतना शान्त वातावरण लगता था कि यहाँ कोई उथल-पुथल, कोई शोरगुल है ही नहीं। जगह इतनी हरी-भरी कि दर्जों के कमरों के पीछे ही महुआ चूता था और लम्बी-लम्बी घास की दुपहरिया के नीले फूलों की जंगली लतरें उलझी रहती थीं।

और इस वातावरण ने अगर किसी पर सबसे ज्यादा प्रभाव डाला था तो वह थी गेसू। उसे अच्छी तरह मालूम था कि बाँस के झाड़ के पीछे किस चीज के फूल हैं। पुराने पीपल पर गिलोय की लतर चढ़ी है और करौंदे के झाड़ के पीछे एक साही की माँद है। नागफनी की झाड़ी के पास एक बार उसने एक लोमड़ी भी देखी थी। शहर के एक मशहूर रईस साबिर हुसैन काजमी की वह सबसे बड़ी लड़की थी। उसकी माँ, जिन्हें उसके पिता अदन से ब्याह कर लाये थे, शहर की मशहूर शायरा थीं। हालाँकि उनका दीवान छपकर मशहूर हो चुका था, मगर वह किसी भी बाहरी आदमी से कभी नहीं मिलती-जुलती थीं, उनकी

सारी दुनिया अपने पति और अपने बच्चों तक सीमित थी। उन्हें शायराना नाम रखने का बहुत शौक था। अपनी दोनों लड़कियों का नाम उन्होंने गेसू और फूल रखा था और अपने छोटे बच्चे का नाम हसरत। हाँ, अपने पतिदेव साबिर साहब के हुक्के से बेहद चिढ़ती थीं और उनका नाम उन्होंने रखा था, 'आतिश-फिजाँ।'

घास, फूल, लतर और शायरी का शौक गेसू ने अपनी माँ से विरासत में पाया था। किस्मत से उसका कॉलेज भी ऐसा मिला जिसमें दर्जों की खिड़कियों से आम की शाखें झाँका करती थीं इसलिए हमेशा जब कभी मौका मिलता था, क्लास से भाग कर गेसू घास पर लेटकर सपने देखने की आदी हो गयी थी। क्लास के इस महाभिनिष्क्रमण और उसके बाद लतरों की छाँह में जाकर ध्यान-योग की साधना में उसकी एकमात्र साथिन थी सुधा। आम की घनी छाँह में हरी-हरी दूब में दोनों सिर के नीचे हाथ रखकर लेट रहतीं और दुनिया-भर की बातें करतीं। बातों में छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी किस तरह की बातें करती थीं, यह वही समझ सकता है जिसने कभी दो अभिन्न सहेलियों की एकान्त वार्ता सुनी हो। गालिब की शायरी से लेकर, उनके छोटे भाई हसरत ने एक कुत्ते का पिल्ला पाला है, यह गेसू सुनाया करती थी और शरत के उपन्यासों से लेकर यह कि उसकी मालिन ने गिलट का कड़ा बनवाया है, यह सुधा बताया करती थी। दोनों अपने-अपने मन की बातें एक-दूसरे को बता डालती थीं और जितना भावुक, प्यारा, अनजान और सुकुमार दोनों का मन था, उतनी ही भावुक और सुकुमार दोनों की बातें। हाँ भावुक, सुकुमार दोनों ही थीं, लेकिन दोनों में एक अन्तर था। गेसू शायर होते हुए भी इस दुनिया की थी और सुधा शायर न होते हुए भी कल्पनालोक की थी। गेसू अगर झाड़ियों में से कुछ फूल चुनती तो उन्हें सूँघती, उन्हें अपनी चोटी में सजाती और उन पर चन्द शेश्र कहने के बाद भी उन्हें माला में पिरोकर अपनी कलाई में लपेट लेती। सुधा लतरों के बीच में सिर रखकर लेट जाती और निर्निमेष पलकों से फूलों को देखती रहती और आँखों से न जाने क्या पीकर उन्हें उन्हीं की डालों पर फूलता हुआ छोड़ देती। गेसू हर चीज का उचित इस्तेमाल जानती थी, किसी भी चीज को पसन्द करने या प्यार करने के बाद अब उसका क्या उपयोग है, क्रियात्मक यथार्थ जीवन में उसका क्या स्थान है, यह गेसू खूब समझती थी। लेकिन सुधा किसी भी फूल के जादू में बँध जाना चाहती थी, उसी की कल्पना में डूब जाना जानती थी, लेकिन उसके बाद सुधा को कुछ नहीं मालूम था। गेसू की कल्पना और भावुक सूक्ष्मता शायरी में व्यक्त हो जाती थी, अत: उसकी जिंदगी में काफी

व्यावहारिकता और यथार्थ था, लेकिन सुधा, जो शायरी लिख नहीं सकती थी, अपने स्वभाव और गठन में खुद ही एक मासूम शायरी बन गयी थी। वह भी पिछले दो सालों में तो सचमुच ही इतनी गम्भीर, सुकुमार और भावनामयी बन गयी थी कि लगता था कि सूर के गीतों से उसके व्यक्तित्त्व के रेशे बुन गये हैं।

लड़कियाँ, गेसू और सुधा के इस स्वभाव और उनकी अभिन्नता से वाकिफ थीं और इसलिए जब आज सुधा की मोटर आकर सायबान में रुकी और उसमें से सुधा और गेसू हाथ में फाइल लिये उतरीं तो कामिनी ने हँसकर प्रभा से कहा, 'लो, चन्दा-सूरज की जोड़ी आ गयी!' सुधा ने सुन लिया। मुसकराकर गेसू की ओर फिर कामिनी और प्रभा की ओर देखकर हँस दी। सुधा बहुत कम बोलती थी, लेकिन उसकी हँसी ने उसे खुशमिजाज साबित कर रखा था और वह सभी की प्यारी थी। प्रभा ने आकर सुधा के गले में बाँह डालकर कहा, 'गेसू बानो, थोड़ी देर के लिए सुधारानी को हमें दे दो। जरा कल के नोट्स उतारने हैं इनसे पूछकर।'

गेसू हँसकर बोली, 'उसके पापा से तय कर ले, फिर तू जिंदगी भर सुधा को पाल-पोस, मुझे क्या करना है।'

जब सुधा प्रभा के साथ चली गयी तो गेसू ने कामिनी के कन्धे पर हाथ रखा और कहा, 'कम्मो रानी, अब तो तुम्हीं हमारे हिस्से में पड़ी, आओ। चलो, देखें लतर में कुन्दरू हैं?'

'कुन्दरू तो नहीं, अब चने का खेत हरिया आया है।' कम्मो बोली।

गृह-विज्ञान का पीरियड था और मिस उमालकर पढ़ा रही थीं। बीच की कतार की एक बेंच पर कामिनी, प्रभा, गेसू और सुधा बैठी थीं। हिस्सा बाँट अभी तक कायम था, अत: कामिनी के बगल में गेसू, गेसू के बगल में प्रभा और प्रभा के बाद बेंच के कोने पर सुधा बैठी थी। मिस उमालकर रोगियों के खान-पान के बारे में समझा रही थीं। मेज के बगल में खड़ी हुई, हाथ में एक किताब लिये हुए, उसी पर निगाह लगाये वह बोलती जा रही थीं। शायद अंग्रेजी की किताब में जो कुछ लिखा हुआ था, उसी का हिन्दी में उल्था करते हुए बोलती जा रही थीं, 'आलू एक नुकसानदेह तरकारी है, रोग की हालत में। वह खुश्क होता है, गरम होता है और हजम मुश्किल से होता है।..।'

सहसा गेसू ने एकदम बीच से पूछा, 'गुरुजी, गाँधी जी आलू खाते हैं या नहीं?' सभी हँस पड़े।

मिस उमालकर ने बहुत गुस्से से गेसू की ओर देखा और डाँटकर कहा, 'व्हाइ टॉक ऑव गाँधी? आई वाण्ट नो पोलिटिकल डिस्क्शन इन क्लास। (गाँधी से क्या मतलब? मैं दर्जे में राजनीतिक बहस नहीं चाहती।)' इस पर तो सभी लड़कियों की दबी हुई हँसी फूट पड़ी। मिस उमालकर झल्ला गयीं और मेज पर किताब पटकते हुए बोलीं, 'साइलेन्स (खामोश)!' सभी चुप हो गये। उन्होंने फिर पढ़ाना शुरू किया।

'जिगर के रोगियों के लिए हरी तरकारियाँ बहुत फायदेमन्द होती हैं। लौकी, पालक और हर किस्म के हरे साग तन्दुरुस्ती के लिए बहुत फायदेमन्द होते हैं।'

सहसा प्रभा ने कुहनी मारकर गेसू से कहा, 'ले, फिर क्या है, निकाल चने का हरा साग, खा-खाकर मोटे हों मिस उमालकर के घंटे में!'

गेसू ने अपने कुरते की जेब से बहुत-सा साग निकालकर कामिनी और प्रभा को दिया।

मिस उमालकर अब शक्कर के हानि-लाभ बता रही थीं, 'लम्बे रोग के बाद रोगी को शक्कर कम देनी चाहिए। दूध या साबूदाने में ताड़ की मिश्री मिला सकते हैं। दूध तो ग्लूकोज के साथ बहुत स्वादिष्ट लगता है।'

इतने में जब तक सुधा के पास साग पहुँचा कि फौरन मिस उमालकर ने देख लिया। वह समझ गयीं, यह शरारत गेसू की होगी, 'मिस गेसू, बीमारी की हालत में दूध काहे के साथ स्वादिष्ट लगता है?'

इतने में सुधा के मुँह से निकला, 'साग काहे के साथ खाएँ?' और गेसू ने कहा, 'नमक के साथ!'

'हूँ? नमक के साथ?' मिस उमालकर ने कहा, 'बीमारी में दूध नमक के साथ अच्छा लगता है। खड़ी हो! कहाँ था ध्यान तुम्हारा?'

गेसू सन्न। मिस उमालकर का चेहरा मारे गुस्से के लाल हो रहा था।

'क्या बात कर रही थीं तुम और सुधा?'

गेसू सन्न!

'अच्छा, तुम लोग क्लास के बाहर जाओ और आज हम तुम्हारे गार्जियन को खत भेजेंगे। चलो, जाओ बाहर।'

सुधा ने कुछ मुसकराते हुए प्रभा की ओर देखा और प्रभा हँस दी। गेसू ने देखा कि मिस उमालकर का पारा और भी चढने वाला है तो वह चुपचाप किताब उठाकर चल दी। सुधा भी पीछे-पीछे चल दी। कामिनी ने कहा,

'खत-वत भेजती रहना, सुधा!'' और क्लास ठठाकर हँस पड़ी। मिस उमालकर गुस्से से नीली पड़ गयीं, 'क्लास अब खत्म होगी।' और रजिस्टर उठाकर चल दीं। गेसू अभी अन्दर ही थी कि वह बाहर चली गयीं और उनके जरा दूर पहुँचते ही गेसू ने बड़ी अदा से कहा, 'बड़े बेआबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले!' और सारी क्लास फिर हँसी से गूँज उठी। लड़कियाँ चिड़ियों की तरह फुर्र हो गयीं और थोड़ी ही देर में सुधा और गेसू बैडमिंटन फील्ड के पास वाले छतनार पाकड़ के नीचे लेटी हुई थीं।

बड़ी खुशनुमा दोपहरी थी। खुशबू से लदे हल्के-हल्के झोंके गेसू की ओढ़नी और गरारे की सिलवटों से आँखमिचौली खेल रहे थे। आसमान में कुछ हल्के रुपहले बादल उड़ रहे थे और जमीन पर बादलों की साँवली छायाएँ दौड़ रही थीं। घास के लम्बे-चौड़े मैदान पर बादलों की छायाओं का खेल बड़ा मासूम लग रहा था। जितनी दूर तक छाँह रहती थी, उतनी दूर तक घास का रंग गहरा काही हो जाता था और जहाँ-जहाँ बादलों से छनकर धूप बरसने लगती थी वहाँ-वहाँ घास सुनहरे धानी रंग की हो जाती थी। दूर कहीं पर पानी बरसा था और बादल हल्के होकर खरगोश के मासूम स्वच्छन्द बच्चों की तरह दौड़ रहे थे। सुधा आँखों पर फाइल की छाँह किये हुए बादलों की ओर एकटक देख रही थी। गेसू ने उसकी ओर करवट बदली और उसकी वेणी में लगे हुए रेशमी फीते को उँगली में उमेठते हुए एक लम्बी-सी साँस भरकर कहा-

बादशाहों की मुअत्तर ख्वाबगाहों में कहाँ
वह मजा जो भीगी-भीगी घास पर सोने में है,
मुतमइन बेफिक्र लोगों की हँसी में भी कहाँ
लुत्फ जो एक-दूसरे को देखकर रोने में है।

सुधा ने बादलों से अपनी निगाह नहीं हटायी, बस एक करुण सपनीली मुसकराहट बिखेरकर रह गयी।

'क्या देख रही है, सुधा?' गेसू ने पूछा।

'बादलों को देख रही हूँ।' सुधा ने बेहोश आवाज में जवाब दिया। गेसू उठी और सुधा की छाती पर सिर रखकर बोली-

कैफ बरदोश, बादलों को न देख,
बेखबर, तू न कुचल जाय कहीं!

और सुधा के गाल में जोर की चुटकी काट ली। 'हाय रे!' सुधा ने चीखकर कहा और उठ बैठी, 'वाह वाह! कितना अच्छा शेर है! किसका है?'

'पता नहीं किसका है।' गेसू बोली, 'लेकिन बहुत सच है सुधी, आस्माँ के बादलों के दामन में अपने ख्वाब टाँक लेना और उनके सहारे जिंदगी बसर करने का खयाल है तो बड़ा नाजुक, मगर रानी बड़ा खतरनाक भी है। आदमी बड़ी ठोकरें खाता है। इससे तो अच्छा है कि आदमी को नाजुकखयाली से साबिका ही न पड़े। खाते-पीते, हँसते-बोलते आदमी की जिंदगी कट जाए।'

सुधा ने अपना आँचल ठीक किया और लटों में से घास के तिनके निकालते हुए कहा, 'गेसू, अगर हम लोगों को भी शादी-ब्याह के झंझट में न फँसना पड़े और इसी तरह दिन कटते जाएँ तो कितना मजा आए। हँसते-बोलते, पढ़ते-लिखते, घास में लेटकर बादलों से प्यार करते हुए कितना अच्छा लगता है, लेकिन हम लड़कियों की जिंदगी भी क्या! मैं तो सोचती हूँ गेसूय कभी ब्याह ही न करूँ। हमारे पापा का ध्यान कौन रखेगा?'

गेसू थोड़ी देर तक सुधा की आँखों में आँखें डालकर शरारत-भरी निगाहों से देखती रही और मुसकराकर बोली, 'अरे, अब ऐसी भोली नहीं हो रानी तुम! ये शबाब, ये उठान और ब्याह नहीं करेंगी, जोगन बनेंगी।'

'अच्छा, चल हट बेशरम कहीं की, खुद ब्याह करने की ठान चुकी है तो दुनिया-भर को क्यों तोहमत लगाती है!'

'मैं तो ठान ही चुकी हूँ, मेरा क्या! फ्रिक तो तुम लोगों की है कि ब्याह नहीं होता तो लेटकर बादल देखती हैं।' गेसू ने मचलते हुए कहा।

'अच्छा अच्छा,' गेसू की ओढ़नी खींचकर सिर के नीचे रखकर सुधा ने कहा, 'क्या हाल है तेरे अख्तर मियाँ का? मँगनी कब होगी तेरी?'

'मँगनी क्या, किसी भी दिन हो जाय, बस फूफीजान के यहाँ आने-भर की कसर है। वैसे अम्मी तो फूल की बात उनसे चला रही थीं, पर उन्होंने मेरे लिए इरादा जाहिर किया। बड़े अच्छे हैं, आते हैं तो घर-भर में रोशनी छा जाती है।'' गेसू ने बहुत भोलेपन से गोद में सुधा का हाथ रखकर उसकी उँगलियाँ चिटकाते हुए कहा।

'वे तो तेरे चचाजाद भाई हैं न? तुझसे तो पहले उनसे बोल-चाल रही होगी।' सुधा ने पूछा।

'हाँ-हाँ, खूब अच्छी तरह से। मौलवी साहब हम लोगों को साथ-साथ पढ़ाते थे और जब हम दोनों सबक भूल जाते थे तो एक-दूसरे का कान पकड़कर साथ-साथ उठते-बैठते थे।' गेसू कुछ झेंपते हुए बोली।

सुधा हँस पड़ी, 'वाह रे! प्रेम की इतनी विचित्र शुरुआत मैंने कहीं नहीं सुनी थी। तब तो तुम लोग एक-दूसरे का कान पकडने के लिए अपने-आप सबक भूल जाते होंगे?'

'नहीं जी, एक बार फिर पढ़कर कौन सबक भूलता है और एक बार सबक याद होने के बाद जानती हो इश्क में क्या होता है-

मकतबे इश्क में इक ढंग निराला देखा,
उसको छुट्टी न मिली जिसको सबक याद हुआ'

'खैर, यह सब बात जाने दे सुधा, अब तू कब ब्याह करेगी?'

'जल्दी ही करूँगी।'' सुधा बोली।

'किससे?'

'तुझसे।'' और दोनों खिलखिलाकर हँस पड़ीं।

बादल हट गये थे और पाकड़ की छाँह को चीरते हुए एक सुनहली रोशनी का तार झिलमिला उठा। हँसते वक्त गेसू के कान के टॉप चमक उठे और सुधा का ध्यान उधर खिंच गया। 'ये कब बनवाया तूने?'

'बनवाया नहीं।'

'तो उन्होंने दिये होंगे, क्यों?'

गेसू ने शरमाकर सिर हिला दिया।

सुधा ने उठकर हाथ से छूते हुए कहा, 'कितने सुन्दर कमल हैं! वाह! क्यों, गेसू! तूने सचमुच के कमल देखे हैं?'

'न।'

'मैंने देखे हैं।'

'कहाँ?'

'असल में पाँच-छह साल पहले तक तो मैं गाँव में रहती थी न! ऊँचाहार के पास एक गाँव में मेरी बुआ रहती हैं न, बचपन से मैं उन्हीं के पास रहती थी। पढ़ाई की शुरुआत मैंने वहीं की और सातवीं तक वहीं पढ़ी। तो वहाँ मेरे स्कूल के पीछे के पोखरे में बहुत-से कमल थे। रोज शाम को मैं भाग जाती थी और तालाब में घुसकर कमल तोड़ती और घर से बुआ एक लम्बा-सा सोंटा लेकर गालियाँ देती हुई आती थीं मुझे पकड़ने के लिए। जहाँ वह किनारे पर पहुँचतीं तो मैं कहती, अभी डूब जाएँगे बुआ, अभी डूबे, तो बहुत रबड़ी-मलाई की लालच देकर वह मिन्नत करतीं-निकल आओ, तो मैं निकलती थी। तुमने तो कभी देखा नहीं होगा हमारी बुआ को?'

'न, तूने कभी दिखाया ही नहीं।'

'इधर बहुत दिनों से आयीं ही नहीं वे। आएँगी तो दिखाऊँगी तुझे और उनकी एक लड़की है। बड़ी प्यारी, बहुत मजे की है। उसे देखकर तो तुम उसे बहुत प्यार करोगी। वो तो अब यहीं आने वाली है। अब यहीं पढ़ेगी।'

'किस दर्जे में पढ़ती है?'

'प्राइवेट विदुषी में बैठेगी इस साल। खूब गोल-मटोल और हँसमुख है।' सुधा बोली।

इतने में घंटा बोला और गेसू ने सुधा के पैर के नीचे दबी हुई अपनी ओढ़नी खींची।

'अरे, अब आखिरी घंटे में जाकर क्या पढ़ोगी! हाजिरी कट ही गयी। अब बैठो यहीं बातचीत करें, आराम करें।'' सुधा ने अलसाये स्वर में कहा और खड़ी होकर एक मदमाती हुई अँगड़ाई ली-गेसू ने हाथ पकडकर उसे बिठा लिया और बड़ी गम्भीरता से कहा, 'देखो, ऐसी अरसौहीं अँगड़ाई न लिया करो, इससे लोग समझ जाते हैं कि अब बचपन करवट बदल रहा है।'

'धत्!' बेहद झेंपकर और फाइल में मुँह छिपाकर सुधा बोली।

'लो, तुम मजाक समझती हो, एक शायर ने तुम्हारी अँगड़ाई के लिए कहा है-

कौन ये ले रहा है अँगड़ाई
आसमानों को नींद आती है'

'वाह!'' सुधा बोली, 'अच्छा गेसू, आज बहुत-से शेर सुनाओ।'

'सुनो-
इक रिदायेतीरगी है और खाबेकायनात
डूबते जाते हैं तारे, भीगती जाती है रात!'

'पहली लाइन के क्या मतलब हैं?' सुधा ने पूछा।

'रिदायेतीरगी के माने हैं अँधेरे की चादर और खाबेकायनात के माने हैं जिंदगी का सपना-अब फिर सुनो शेर-

इक रिदायेतीरगी है और खाबेकायनात
डूबते जाते हैं तारे, भीगती जाती है रात!'

'वाह! कितना अच्छा है-अन्धकार की चादर है, जीवन का स्वप्न है, तारे डूबते जाते हैं, रात भीगती जाती है...गेसू, उर्दू की शायरी बहुत अच्छी है।'

'तो तू खुद उर्दू क्यों नहीं पढ़ लेती?' गेसू ने कहा।

'चाहती तो बहुत हूँ, पर निभ नहीं पाता!'

'किसी दिन शाम को आओ सुधा तो अम्मीजान से तुझे शेर सुनवाएँ। यह ले तेरी मोटर तो आ गयी।'

सुधा उठी, अपनी फाइल उठायी। गेसू ने अपनी ओढनी झाड़ी और आगे चली। पास आकर उचककर उसने प्रिंसिपल का रूम देखा। वह खाली था। उसने दाई को खबर दी और मोटर पर बैठ गयी।

गेसू बाहर खड़ी थी। 'चल तू भी न!'

'नहीं, मैं गाड़ी पर चली जाऊँगी।'

'अरे चलो, गाड़ी साढ़े चार बजे जाएगी। अभी घंटा-भर है। घर पर चाय पिएँगे, फिर मोटर पहुँचा देगी। जब तक पापा नहीं हैं, तब तक जितना चाहो कार घिसो!'

गेसू भी आ बैठी और कार चल दी।

दूसरे दिन जब चन्दर डॉ. शुक्ला के यहाँ निबन्ध की प्रतिलिपि लेकर पहुँचा तो आठ बज चुके थे। सात बजे तो चन्दर की नींद ही खुली थी और जल्दी से वह नहा-धोकर साइकिल दौड़ाता हुआ भागा था कि कहीं भाषण की प्रतिलिपि पहुँचने में देर न हो जाए।

जब वह बँगले पर पहुँचा तो धूप फैल चुकी थी। अब धूप भली नहीं मालूम देती थी, धूप की तेजी बर्दाश्त के बाहर होने लगी थी, लेकिन सुधा नीलकाँटे के ऊँचे-ऊँचे झाड़ों की छाँह में एक छोटी-सी कुरसी डाले बैठी थी। बगल में एक छोटी-सी मेज थी जिस पर कोई किताब खुली हुई रखी थी, हाथ में क्रोशिया थी और उँगलियाँ एक नाजुक तेजी से डोरे से उलझ-सुलझ रही थीं। हल्के बादामी रंग की इकलाई की लहराती हुई धोती, नारंगी और काली तिरछी धारियों का कलफ किया चुस्त ब्लाउज और एक कन्धे पर उभरा एक उसका फ ऐसा लग रहा था जैसे कि बाँह पर कोई रंगीन तितली आकर बैठी हुई हो और उसका सिर्फ एक पंख उठा हो! अभी-अभी शायद नहाकर उठी थी क्योंकि शरद की खुशनुमा धूप की तरह हलके सुनहले बाल पीठ पर लहरा रहे थे। नीलकाँटे की टहनियाँ उनको सुनहली लहरें समझकर अठखेलियाँ कर रही थीं।

चन्दर की साइकिल जब अन्दर दिख पड़ी तो सुधा ने उधर देखा लेकिन कुछ भी न कहकर फिर अपनी क्रोशिया बुनने में लग गयी। चन्दर सीधा पोर्टिको में गया और अपनी साइकिल रखकर भीतर चला गया डॉ. शुक्ला के पास। स्टडी-रूम में, बैठक में, सोने के कमरे में कहीं भी डॉ. शुक्ला नजर नहीं आये। हारकर वह बाहर आया तो देखा मोटर अभी गैरज में है। तो वे जा कहाँ सकते?

और सुधा को तो देखिए! क्या अकड़ी हुई है आज, जैसे चन्दर को जानती ही नहीं। चन्दर सुधा के पास गया। सुधा का मुँह और भी लटक गया।

'डॉक्टर साहब कहाँ हैं?' चन्दर ने पूछा।

'हमें क्या मालूम?' सुधा ने क्रोशिया पर से बिना निगाह उठाये जवाब दिया।

'तो किसे मालूम होगा?' चन्दर ने डाँटते हुए कहा, 'हर वक्त का मजाक हमें अच्छा नहीं लगता। काम की बात का उसी तरह जवाब देना चाहिए। उनके निबन्ध की लिपि देनी है या नहीं!'

'हाँ-हाँ, देनी है तो मैं क्या करूँ? नहा रहे होंगे। अभी कोई ये तो है नहीं कि तुम निबन्ध की लिपि लाये हो तो कोई नहाये-धोये न, बस सुबह से बैठा रहे कि अब निबन्ध आ रहा है, अब आ रहा है!' सुधा ने मुँह बनाकर आँखें नचाते हुए कहा।

'तो सीधे क्यों नहीं कहती कि नहा रहे हैं।' चन्दर ने सुधा के गुस्से पर हँसकर कहा। चन्दर की हँसी पर तो सुधा का मिजाज और भी बिगड़ गया और अपनी क्रोशिया उठाकर और किताब बगल में दबाकर, वह उठकर अन्दर चल दी। उसके उठते ही चन्दर आराम से उस कुरसी पर बैठ गया और मेज पर टाँग फैलाकर बोला-'आज मुझे बहुत गुस्सा चढ़ा है, खबरदार कोई बोलना मत!'

सुधा जाते-जाते मुडकर खड़ी हो गयी।

'हमने कह दिया चन्दर एक बार कि हमें ये सब बातें अच्छी नहीं लगतीं। जब देखो तुम चिढ़ाते रहते हो!' सुधा ने गुस्से से कहा।

'नहीं! चिढ़ाएँगे नहीं तो पूजा करेंगे! तुम अपने मौके पर छोड़ देती हो!' चन्दर ने उसी लापरवाही से कहा।

सुधा गयी नहीं। वहीं घास पर बैठ गयी और किताब खोलकर पढने लगी। जब पाँच मिनट तक वह कुछ नहीं बोली तो चन्दर ने सोचा आज बात कुछ गम्भीर है।

'सुधा!' उसने बड़े दुलार से पुकारा। 'सुधा!'

सुधा ने कुछ नहीं कहा मगर दो बड़े-बड़े आँसू टप से नीचे किताब पर गिर गये।

'अरे क्या बात है सुधा, नहीं बताओगी?'

'कुछ नहीं।'

'बता दो, तुम्हें हमारी कसम है।'

'कल शाम को तुम आये नहीं...' सुधा रोनी आवाज में बोली।

'बस इस बात पर इतनी नाराज हो, पागल!'

'हाँ, इस बात पर इतनी नाराज हूँ! तुम आओ चाहे हजार बार न आओय इस पर हम क्यों नाराज होंगे! बड़े कहीं के आये, नहीं आएँगे तो जैसे हमारा घर-बार नहीं है। अपने को जाने क्या समझ लिया है!' सुधा ने चिढकर जवाब दिया।

'अरे तो तुम्हीं तो कह रही थी, भाई।' चन्दर ने हँसकर कहा।

'तो बात पूरी भी सुनो। शाम को गेसू का नौकर आया था। उसके छोटे भाई हसरत की सालगिरह थी। सुबह 'कुरानखानी' होने वाली थी और उसकी माँ ने बुलाया था।'

'तो गयी क्यों नहीं?'

'गयी क्यों नहीं! किससे पूछकर जाती? आप तो इस वक्त आ रहे हैं जब सब खत्म हो गया!' सुधा बोली।

'तो पापा से पूछ के चली जाती!' चन्दर ने समझाकर कहा, 'और फिर गेसू के यहाँ तो यों अकसर जाती हो तुम!'

'तो? आज तो डान्स भी करने के लिए कहा था उसने। फिर बाद में तुम कहते, 'सुधा, तुम्हें ये नहीं करना चाहिए, वो नहीं करना चाहिए। लड़कियों को ऐसे रहना चाहिए, वैसे रहना चाहिए।' और बैठ के उपदेश पिलाते और नाराज होते। बिना तुमसे पूछे हम कहीं सिनेमा, पिकनिक, जलसों में गये हैं कभी?' और फिर आँसू टपक पड़े।

'पगली कहीं की! इतनी-सी बात पर रोना क्या? किसी के हाथ कुछ उपहार भेज दो और फिर किसी मौके पर चली जाना।'

'हाँ, चली जाना! तुम्हें कहते क्या लगता है! गेसू ने कितना बुरा माना होगा!' सुधा ने बिगड़ते हुए ही कहा। 'इम्तहान आ रहा है, फिर कब जाएँगे?'

'कब है इम्तहान तुम्हारा?'

'चाहे जब हो! मुझे पढ़ाने के लिए कहा किसी से?'

'अरे भूल गये! अच्छा, आज देखो कहेंगे!'

'कहेंगे-कहेंगे नहीं, आज दोपहर को आप बुला लाइए, वरना हम सब किताबों में लगाये देते हैं आग। समझे कि नहीं!'

'अच्छा-अच्छा, आज दोपहर को बुला लाएँगे। ठीक, अच्छा याद आया बिसरिया से कहूँगा तुम्हें पढ़ाने के लिए। उसे रुपये की जरूरत भी है।' चन्दर ने छुटकारे का कोई रास्ता न पाकर कहा।

'आज दोपहर को जरूर से।' सुधा ने फिर आँखें नचाकर कहा। 'लो, पापा आ गये नहाकर, जाओ!'

चन्दर उठा और चल दिया। सुधा उठी और अन्दर चली गयी।

डॉ. शुक्ला हल्के-साँवले रंग के जरा स्थूलकाय-से थे। बहुत गम्भीर अध्ययन और अध्यापन और उम्र के साथ-साथ ही उनकी नम्रता और भी बढ़ती जा रही थी।

लेकिन वे लोगों से मिलते-जुलते कम थे। व्यक्तिगत दोस्ती उनकी किसी से नहीं थी। लेकिन उत्तर भारत के प्रमुख विद्वान् होने के नाते कान्फ्रेन्सों में, मौखिक परीक्षाओं में, सरकारी कमेटियों में वे बराबर बुलाये जाते थे और इसमें प्रमुख दिलचस्पी से हिस्सा लेते थे। ऐसी जगहों में चन्दर अक्सर उनका प्रमुख सहायक रहता था और इसी नाते चन्दर भी प्रान्त के बड़े-बड़े लोगों से परिचित हो गया था। जब वह एम. ए. पास हुआ था तब से फाइनेन्स विभाग में उसे कई बार ऊँचे-ऊँचे पदों का 'ऑफर' आ चुका था लेकिन डॉ. शुक्ला इसके खिलाफ थे। वे चाहते थे कि पहले वह रिसर्च पूरी कर ले। सम्भव हो तो विदेश हो आये, तब चाहे कुछ काम करे। अपने व्यक्तिगत जीवन में डॉ. शुक्ला अन्तर्विरोधों के व्यक्ति थे। पार्टियों में मुसलमानों और ईसाइयों के साथ खाने में उन्हें कोई एतराज नहीं था लेकिन कच्चा खाना वे चौके में आसन पर बैठकर, रेशमी धोती पहनकर खाते थे। सरकार को उन्होंने सलाह दी कि साधुओं और संन्यासियों को जबरदस्ती काम में लगाया जाए और मन्दिरों की जायदादें जब्त कर ली जाएँ, लेकिन सुबह घंटे-भर तक पूजा जरूर करते थे। पूजा-पाठ, खान-पान, जात-पाँत के पक्के हामी, लेकिन व्यक्तिगत जीवन में कभी यह नहीं जाना कि उनका कौन शिष्य ब्राह्मण है, कौन बनिया, कौन खत्री, कौन कायस्थ!

नहाकर वे आ रहे थे और दुर्गासप्तशती का कोई श्लोक गुनगुना रहे थे। कपूर को देखा तो रुक गये और बोले, 'हैलो, हो गया वह टाइप!'

'जी हाँ।'

'कहाँ कराया टाइप?'

'मिस डिक्रूज के यहाँ।'

'अच्छा! वह लड़की अच्छी है। अब तो बहुत बड़ी हुई होगी? अभी शादी नहीं हुई? मैंने तो सोचा वह मिले या न मिले!'

'नहीं, वह यहीं है। शादी हुई। फिर तलाक हो गया।'

'अरे! तो अकेले रहती है?'

'नहीं, अपने भाई के साथ है, बर्टी के साथ!'

'अच्छा! और बर्टी की पत्नी अच्छी तरह है?'

'वह मर गयी।'

'राम-राम, तब तो घर ही बदल गया होगा।'

'पापा, पूजा के लिए सब बिछा दिया है।' सहसा सुधा बोली।

'अच्छा बेटी, अच्छा चन्दर, मैं पूजा कर आऊँ जल्दी से। तुम चाय पी चुके?'

'जी हाँ।'

'अच्छा तो मेरी मेज पर एक चार्ट है, जरा इसको ठीक तो कर दो तब तक। मैं अभी आया।'

चन्दर स्टडी-रूम में गया और मेज पर बैठ गया। कोट उतारकर उसने खूँटी पर टाँग दिया और नक्शा देखने लगा। पास में एक छोटी-सी चीनी की प्याली में चाइना इंक रखी थी और मेज पर पानी। उसने दो बूँद पानी डालकर चाइना इंक घिसनी शुरू की, इतने में सुधा कमरे में दाखिल, 'ऐ सुनो!'' उसने चारों ओर देखकर बड़े सशंकित स्वरों में कहा और फिर झुककर चन्दर के कान के पास मुँह लगाकर कहा, 'चावल की नानखटाई खाओगे?'

'ये क्या बला है?' चन्दर ने इंक घिसते-घिसते पूछा।

'बड़ी अच्छी चीज होती है, पापा को बहुत अच्छी लगती है। आज हमने सुबह अपने हाथ से बनायी थी। ऐं, खाओगे?' सुधा ने बड़े दुलार से पूछा।

'ले आओ।'' चन्दर ने कहा।

'ले आये हम, लो!' और सुधा ने अपने आँचल में लिपटी हुई दो नानखटाई निकालकर मेज पर रख दी।

'अरे तश्तरी में क्यों नहीं लायी? सब धोती में घी लग गया। इतनी बड़ी हो गयी, शऊर नहीं जरा-सा।' चन्दर ने बिगडकर कहा।

'छिपा करके लाये हैं, फिर ये सकरी होती हैं कि नहीं? चौके के बाहर कैसे लाते! तुम्हारे लिये तो लाये हैं और तुम्हीं बिगड़ रहे हो। अन्धे को नोन दो, अन्धा कहे मेरी आँखें फोड़ीं।' सुधा ने मुँह बनाकर कहा, 'खाना है कि नहीं?'

'हाथ में तो हमारे स्याही लगी है।' चन्दर बोला।

'हम अपने हाथ से नहीं खिलाएँगे, हमारा हाथ जूठा हो जाएगा और राम राम! पता नहीं तुम रेस्तराँ में मुसलमान के हाथ का खाते होगे। थू-थू!'

चन्दर हँस पड़ा सुधा की इस बात पर और उसने पानी में हाथ डुबोकर बिना पूछे सुधा के आँचल में हाथ पोंछ दिये स्याही के और बेतकल्लुफी से नानखटाई उठाकर खाने लगा।

'बस, अब धोती का किनारा रंग दिया और यही पहनना है हमें दिनभर।' सुधा ने बिगडकर कहा।

'खुद नानखटाई छिपाकर लायी और घी लग गया तो कुछ नहीं और हमने स्याही पोंछ दी तो मुँह बिगड़ गया।' चन्दर ने मैपिंग पेन में इंक लगाते हुए कहा।

'हाँ, अभी पापा देखें तो और बिगड़ें कि धोती में घी, स्याही सब लगाये रहती है। तुम्हें क्या?' और उसने स्याही लगा हुआ छोर कसकर कमर में खोंस लिया।

'छिह, वही घी में तर छोर कमर में खोंस लिया। गन्दी कहीं की!'' चन्दर ने चार्ट की लाइनें ठीक करते हुए कहा।

'गन्दी हैं तो, तुमसे मतलब!' और मुँह चिढ़ाते हुए सुधा कमरे से बाहर चली गयी।

चन्दर चुपचाप बैठा चार्ट दुरुस्त करता रहा। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिला-बलिया, आजमगढ़, बस्ती, बनारस आदि में बच्चों की मृत्यु-संख्या का ग्राफ बनाना था और एक ओर उनके नक्शे पर बिन्दुओं की एक सघनता से मृत्यु-संख्या का निर्देश करना था। चन्दर की एक आदत थी वह काम में लगता था तो भूत की तरह लगता था। फिर उसे दीन-दुनिया, किसी की खबर नहीं रहती थी। खाना-पीना, तन-बदन, किसी का होश नहीं रहता था। इसका एक कारण था। चन्दर उन लड़कों में से था जिनकी जिंदगी बाहर से बहुत हल्की-फुल्की होते हुए भी अन्दर से बहुत गम्भीर और अर्थमयी होती है, जिनके सामने एक स्पष्ट उद्देश्य, एक लक्ष्य होता है। बाहर से चाहे जैसे होने पर भी अपने आन्तरिक सत्य के प्रति घोर ईमानदारी यह इन लोगों की विशेषता होती है और सारी दुनिया के प्रति अगम्भीर और उच्श्रृंखल होने पर भी जो चीजें इनकी लक्ष्यपरिधि में आ जाती हैं, उनके प्रति उनकी गम्भीरता, साधना और पूजा बन जाती है। इसलिए बाहर से इतना व्यक्तिवादी और सारी दुनिया के प्रति निरपेक्ष और लापरवाह दिख पडने पर भी वह अन्तरतम से समाज और युग और अपने आस-पास के जीवन और व्यक्तियों के प्रति अपने को बेहद उत्तरदायी अनुभव करता था। वह देशभक्त भी था और शायद समाजवादी भी, पर अपने तरीके से। वह खद्दर नहीं पहनता था, कांग्रेस का सदस्य नहीं था, जेल नहीं गया था, फिर

भी वह अपने देश को प्यार करता था। बेहद प्यार। उसकी देशभक्ति, उसका समाजवाद, सभी उसके अध्ययन और खोज में समा गया था। वह यह जानता था कि समाज के सभी स्तम्भों का स्थान अपना अलग होता है। अगर सभी मन्दिर के कंगूरे का फूल बनने की कोशिश करने लगें तो नींव की ईंट और सीढ़ी का पत्थर कौन बनेगा? और वह जानता था कि अर्थशास्त्र वह पत्थर है जिस पर समाज के सारे भवन का बोझ है और उसने निश्चय किया था कि अपने देश, अपने युग के आर्थिक पहलू को वह खूब अच्छी तरह से अपने ढंग से विश्लेषण करके देखेगा और उसे आशा थी कि वह एक दिन ऐसा समाधान खोज निकालेगा कि मानव की बहुत-सी समस्याएँ हल हो जाएँगी और आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में अगर आदमी खूँखार जानवर बन गया है तो एक दिन दुनिया उसकी एक आवाज पर देवता बन सकेगी।

इसलिए जब वह बैठकर कानपुर की मिलों के मजदूरों के वेतन का चार्ट बनाता था, या उपयुक्त साधनों के अभाव में मर जाने वाली गरीब औरतों और बच्चों का लेखा-जोखा करता था तो उसके सामने अपना कैरियर, अपनी प्रतिष्ठा, अपनी डिग्री का सपना नहीं होता था। उसके मन में उस वक्त वैसा सन्तोष होता था जो किसी पुजारी के मन में होता है, जब वह अपने देवता की अर्चना के लिए धूप, दीप, नैवेद्य सजाता है। बल्कि चन्दर थोड़ा भावुक था, एक बार तो जब चन्दर ने अपने रिसर्च के सिलसिले में यह पढ़ा कि अंग्रेजों ने अपनी पूँजी लगाने और अपना व्यापार फैलाने के लिए किस तरह मुर्शिदाबाद से लेकर रोहतक तक हिन्दुस्तान के गरीब से गरीब और अमीर से अमीर बाशिन्दे को अमानुषिकता से लूटा, तब वह फूट-फूटकर रो पड़ा था लेकिन इसके बावजूद उसने राजनीति में कभी डूबकर हिस्सा नहीं लिया क्योंकि उसने देखा कि उसके जो भी मित्र राजनीति में गये, वे थोड़े दिन बाद बहुत प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा पा गये मगर आदमीयत खो बैठे।

अपने अर्थशास्त्र के बावजूद वह यह समझता था कि आदमी की जिंदगी सिर्फ आर्थिक पहलू तक सीमित नहीं और वह यह भी समझता था कि जीवन को सुधारने के लिए सिर्फ आर्थिक ढाँचा बदल देने-भर की जरूरत नहीं है। उसके लिए आदमी का सुधार करना होगा, व्यक्ति का सुधार करना होगा। वरना एक भरे-पूरे और वैभवशाली समाज में भी आज के-से अस्वस्थ और पाशविक वृत्तियों वाले व्यक्ति रहेंगे तो दुनिया ऐसी ही लगेगी जैसे एक खूबसूरत सजा-सजाया महल जिसमें कीड़े और राक्षस रहते हों।

वह यह भी समझता था कि वह जिस तरह की दुनिया का सपना देखता, वह दुनिया आज किसी भी एक राजनीतिक क्रान्ति या किसी भी विशेष पार्टी की सहायता मात्र से नहीं बन सकती है। उसके लिए आदमी को अपने को बदलना होगा, किसी समाज को बदलने से काम नहीं चलेगा। इसलिए वह अपने व्यक्ति के संसार में निरन्तर लगा रहता था और समाज के आर्थिक पहलू को समझने की कोशिश करता रहता था। यही कारण है कि अपने जीवन में आनेवाले व्यक्तियों के प्रति वह बेहद ईमानदार रहता था और अपने अध्ययन और काम के प्रति वह सचेत और जागरूक रहता था और वह अच्छी तरह समझता था कि इस तरह वह दुनिया को उस ओर बढ़ाने में थोड़ी-सी मदद कर रहा है। चूँकि अपने में भी वह सत्य की वही चिनगारी पाता था इसलिए कवि या दार्शनिक न होते हुए भी वह इतना भावुक, इतना दृढ़-चरित्र, इतना सशक्त और इतना गम्भीर था और काम तो अपना वह इस तरह करता था जैसे वह किसी की एकाग्र उपासना कर रहा हो। इसलिए जब वह चार्ट के नक्शे पर कलम चला रहा था तो उसे मालूम नहीं हुआ कि कितनी देर से डॉ. शुक्ला आकर उसके पीछे खड़े हो गये।

'वाह, नक्शे पर तो तुम्हारा हाथ बहुत अच्छा चलता है। बहुत अच्छा! अब उसे रहने दो। लाओ, देखें, तुम्हारा काम कैसा चल रहा है। आज तो इतवार है न?'

डॉ. शुक्ला पास की कुरसी पर बैठकर बोले, 'चन्दर! आजकल मैं एक किताब लिखने की सोच रहा हूँ। मैंने सोचा कि भारतवर्ष की जाति-व्यवस्था का नये वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन और विश्लेषण किया जाए। तुम इसके बारे में क्या सोचते हो?'

'व्यर्थ है! जो व्यवस्था आज नहीं तो कल चूर-चूर होने जा रही है, उसके बारे में तूमार बाँधना और समय बरबाद करना बेकार है।' चन्दर ने बहुत आत्मविश्वास से कहा।

'यही तो तुम लोगों में खराबी है। कुछ थोड़ी-सी खराबियाँ जाति-व्यवस्था की देख लीं और उसके खिलाफ हो गये। एक रिसर्च स्कॉलर का दृष्टिकोण ही दूसरा होना चाहिए। फिर हमारे भारत की प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओं को तो बहुत ही सावधानी से समझने की आवश्यकता है। यह समझ लो कि मानव जाति दुर्बल नहीं है। अपने विकास-क्रम में वह उन्हीं संस्थाओं, रीति-रिवाजों और परम्पराओं को रहने देती है, जो उसके अस्तित्त्व के लिए बहुत आवश्यक होती

है। अगर वे आवश्यक न हुईं तो मानव उससे छुटकारा माँग लेता है। यह जाति-व्यवस्था जाने कितने सालों से हिन्दुस्तान में कायम है, क्या यही इस बात का प्रमाण नहीं कि यह बहुत सशक्त है, अपने में बहुत जरूरी है?'

'अरे हिन्दुस्तान की भली चलायी।'' चन्दर बोला, 'हिन्दुस्तान में तो गुलामी कितने दिनों से कायम है तो क्या वह भी जरूरी है।'

'बिल्कुल जरूरी है।'' डॉ. शुक्ला बोले, 'मुझे भी हिन्दुस्तान पर गर्व है। मैंने कभी कांग्रेस का काम किया, लेकिन मैं इसे नतीजे पर पहुँचा हूँ कि जरा-सी आजादी अगर मिलती है हिन्दुस्तानियों को, तो वे उसका भरपूर दुरुपयोग करने से बाज नहीं आते और कभी भी ये लोग अच्छे शासक नहीं निकलेंगे।'

'अरे नहीं! ऐसी बात नहीं। हिन्दुस्तानियों को ऐसा बना दिया है अंग्रेजों ने। वरना हिन्दुस्तान ने ही तो चन्द्रगुप्त और अशोक पैदा किये थे और रही जाति-व्यवस्था की बात तो मुझे तो स्पष्ट दिख रहा है कि जाति-व्यवस्था टूट रही है।'' कपूर बोला, 'रोटी-बेटी की कैद थी। रोटी की कैद तो करीब-करीब टूट गयी, अब बेटी की कैद भी... ब्याह-शादियाँ भी दो-एक पीढ़ी के बाद स्वच्छन्दता से होने लगेंगी।'

'अगर ऐसा होगा तो बहुत गलत होगा। इससे जातिगत पतन होता है। ब्याह-शादी को कम-से-कम मैं भावना की दृष्टि से नहीं देखता। यह एक सामाजिक तथ्य है और उसी दृष्टिकोण से हमें देखना चाहिए। शादी में सबसे बड़ी बात होती है सांस्कृतिक समानता और जब अलग-अलग जाति में अलग-अलग रीति-रिवाज हैं तो एक जाति की लड़की दूसरी जाति में जाकर कभी भी अपने को ठीक से सन्तुलित नहीं कर सकती और फिर एक बनिया की व्यापारिक प्रवृत्तियों की लड़की और एक ब्राह्माण्ड का अध्ययन वृत्ति का लड़का, इनकी सन्तान न इधर विकास कर सकती है न उधर। यह तो सामाजिक व्यवस्था को व्यर्थ के लिए असन्तुलित करना हुआ।'

'हाँ, लेकिन विवाह को आप केवल समाज के दृष्टिकोण से क्यों देखते हैं? व्यक्ति के दृष्टिकोण से भी देखिए। अगर दो विभिन्न जाति के लड़के-लड़की अपना मानसिक सन्तुलन ज्यादा अच्छा कर सकते हैं तो क्यों न विवाह की इजाजत दी जाए!'

'ओह, एक व्यक्ति के सुझाव के लिए हम समाज को क्यों नुकसान पहुँचाएँ! और इसका क्या निश्चय कि विवाह के समय यदि दोनों में मानसिक सन्तुलन है तो विवाह के बाद भी रहेगा ही। मानसिक सन्तुलन और प्रेम जितना

अपने मन पर आधारित होता है उतना ही बाहरी परिस्थितियों पर। क्या जाने ब्याह के वक्त की परिस्थिति का दोनों के मन पर कितना प्रभाव है और उसके बाद सन्तुलन रह पाता है या नहीं? और मैंने तो लव-मैरिजेज (प्रेम-विवाह) को असफल ही होते देखा है। बोलो है या नहीं?' डॉ. शुक्ला ने कहा।

'हाँ, प्रेम-विवाह अकसर असफल होते हैं, लेकिन सम्भव है वह प्रेम न होता हो। जहाँ सच्चा प्रेम होगा वहाँ कभी असफल विवाह नहीं होंगे।' चन्दर ने बहुत साहस करके कहा।

'ओह! ये सब साहित्य की बातें हैं। समाजशास्त्र की दृष्टि से या वैज्ञानिक दृष्टि से देखो! अच्छा खैर, अभी मैंने उसकी रूप-रेखा बनायी है। लिखूँगा तो तुम सुनते चलना। लाओ, वह निबन्ध कहाँ है!' डॉ. शुक्ला बोले।

चन्दर ने उन्हें टाइप की हुई प्रतिलिपि दे दी। उलट-पुलटकर डॉ. शुक्ला ने देखा और कहा, 'ठीक है। अच्छा चन्दर, अपना काम इधर ठीक-ठीक कर लो, अगले इतवार को लखनऊ कॉन्फ्रेन्स में चलना है।'

'अच्छा! कार पर चलेंगे या ट्रेन से?'

'ट्रेन से। अच्छा।' घड़ी देखते हुए उन्होंने कहा, 'अब जरा मैं काम से चल रहा हूँ। तुम यह चार्ट बना डालो और एक निबन्ध लिख डालना-'पूर्वी जिलों में शिशु मृत्यु।' प्रान्त के स्वास्थ्य विभाग ने एक पुरस्कार घोषित किया है।'

डॉ. शुक्ला चले गये। चन्दर ने फिर चार्ट में हाथ लगाया।

चन्दर के जाने के जरा ही देर बाद पापा आये और खाने बैठे। सुधा ने रसोई की रेशमी धोती पहनी और पापा को पंखा झलने बैठ गयी। सुधा अपने पापा की सिरचढ़ी दुलारी बेटियों में से थी और इतनी बड़ी हो जाने पर भी वह दुलार दिखाने से बाज नहीं आती थी। फिर आज तो उसने पापा की प्रिय नानखटाई अपने हाथ से बनायी थी। आज तो दुलार दिखाने का उसका हक था और भली-बुरी हर तरह की जिद को मान लेना करना, यह पापा की मजबूरी थी।

मुश्किल से डॉ. साहब ने अभी दो कौर खाये होंगे कि सुधा ने कहा, 'नानखटाई खाओ, पापा!'

डॉ. शुक्ला ने एक नानखटाई तोडकर खाते हुए कहा, 'बहुत अच्छी है!'' खाते-खाते उन्होंने पूछा, 'सोमवार को कौन दिन है, सुधा!'

'सोमवार को कौन दिन है? सोमवार को 'मण्डे' है।'' सुधा ने हँसकर कहा। डॉ. शुक्ला भी अपनी भूल पर हँस पड़े। 'अरे देख तो मैं कितना भुलक्कड़ हो गया हूँ। मेरा मतलब था कि सोमवार को कौन तारीख है?'

'11 तारीख।' सुधा बोली, 'क्यों?'

'कुछ नहीं, 10 को कॉन्फ्रेन्स है और 14 को तुम्हारी बुआ आ रही हैं।'

'बुआ आ रही हैं और बिनती भी आएगी?'

'हाँ, उसी को तो पहुँचाने आ रही हैं। विदुषी का केन्द्र यहीं तो है।'

'आहा! अब तो बिनती तीन महीने यहीं रहेगी, पापा अब बिनती को यहीं बुला लो। मैं बहुत अकेली रहती हूँ।'

'हाँ, अब तो जून तक यहीं रहेगी। फिर जुलाई में उसकी शादी होगी।'' डॉ. शुक्ला ने कहा।

'अरे, अभी से? अभी उसकी उम्र ही क्या है!'' सुधा बोली।

'क्यों, तेरे बराबर है। अब तेरे लिए भी तेरी बुआ ने लिखा है।'

'नहीं पापा, हम ब्याह नहीं करेंगे।'' सुधा ने मचलकर कहा।

'तब?'

'बस हम पढ़ेंगे। एफ.ए. कर लेंगे, फिर बी.ए., फिर एम.ए., फिर रिसर्च, फिर बराबर पढ़ते जाएँगे, फिर एक दिन हम भी तुम्हारे बराबर हो जाएँगे। क्यों, पापा?'

'पागल नहीं तो, बातें तो सुनो इसकी! ला, दो नानखटाई और दे।' शुक्ला हँसकर बोले।

'नहीं, पहले तो कबूल दो तब हम नानखटाई देंगे। बताओ ब्याह तो नहीं करोगे।' सुधा ने दो नानखटाइयाँ हाथ में उठाकर कहा।

'ला, रख।'

'नहीं, पहले बता दो।'

'अच्छा-अच्छा, नहीं करेंगे।'

सुधा ने दोनों नानखटाइयाँ रखकर पंखा झलना शुरू किया। इतने में फिर नानखटाइयाँ खाते हुए डॉ. शुक्ला बोले, 'तेरी सास तुझे देखने आएगी तो यही नानखटाइयाँ तुमसे बनवा कर खिलाएँगे।'

'फिर वही बात!' सुधा ने पंखा पटककर कहा, 'अभी तुम वादा कर चुके हो कि ब्याह नहीं करेंगे।'

'हाँ-हाँ, ब्याह नहीं करूँगा, यह तो कह दिया मैंने। लेकिन तेरा ब्याह नहीं करूँगा, यह मैंने कब कहा?'

'हाँ आँ, ये तो फिर झूठ बोल गये तुम...' सुधा बोली।

'अच्छा, ए! चलो ओहर।' महराजिन ने डाँटकर कहा, 'एत्ती बड़ी बिटिया हो गयी, मारे दुलारे के बररानी जात है।' महराजिन पुरानी थी और सुधा को डाँटने का पूरा हक था उसे और सुधा भी उसका बहुत लिहाज करती थी। वह उठी और चुपचाप जाकर अपने कमरे में लेट गयी। बारह बज रहे थे।

वह लेटी-लेटी कल रात की बात सोचने लगी। क्लास में क्या मजा आया था कल, गेसू कितनी अच्छी लड़की है! इस वक्त गेसू के यहाँ खाना-पीना हो रहा होगा और फिर सब लोग मिलकर गाएँगे। कौन जाने शायद दोपहर को कव्वाली भी हो। इन लोगों के यहाँ कव्वाली इतनी अच्छी होती है। सुधा सुन नहीं पाएगी और गेसू ने भी कितना बुरा माना होगा और यह सब चन्दर की वजह से। चन्दर हमेशा उसके आने-जाने, उठने-बैठने में कतर-ब्योंत करता रहता है। एक बार वह अपने मन से लड़कियों के साथ पिकनिक में चली गयी। वहीं चन्दर के बहुत-से दोस्त भी थे। एक दोस्त ने जाकर चन्दर से जाने क्या कह दिया कि चन्दर उस पर बहुत बिगड़ा और सुधा कितनी रोयी थी उस दिन। यह चन्दर बहुत खराब है। सच पूछो तो अगर कभी-कभी वह सुधा का कहना मान लेता है तो उससे दुगुना सुधा पर रोब जमाता है और सुधा को रुला-रुलाकर मार डालता है और खुद अपने-आप दुनियाभर में घूमेंगे। अपना काम होगा तो 'चलो सुधा, अभी करो, फौरन।' और सुधा का काम होगा तो-'अरे भाई, क्या करें, भूल गये।' अब आज ही देखो, सुबह आठ बजे आये और अब देखो दो बजे भी जनाब आते हैं या नहीं? और कह गये हैं दो बजे तक के लिए तो दो बजे तक सुधा को चैन नहीं पड़ेगी। न नींद आएगी, न किसी काम में तबीयत लगेगी। लेकिन अब ऐसे काम कैसे चलेगा। इम्तहान को कितने थोड़े दिन रह गये हैं और सुधा की तबीयत सिवा पोयट्री (कविता) के और कुछ पढने में लगती ही नहीं। कब से वह चन्दर से कह रही है थोड़ा-सा इकोनामिक्स पढ़ा दो, लेकिन ऐसा स्वार्थी है कि बस चाय पी ली, नानखटाई खा ली, रुला लिया और फिर अपने मस्त साइकिल पर घूम रहे हैं।

यही सब सोचते-सोचते सुधा को नींद आ गयी।

और तीन बजे जब गेसू आयी तो भी सुधा सो रही थी। पलंग के नीचे डी.एम.सी. का गोला खुला हुआ था और तकिये के पास क्रोशिया पड़ी थी। सुधा थी बड़ी प्यारी। बड़ी खूबसूरत और खासतौर से उसकी पलकें तो अपराजिता के फूलों को मात करती थीं और थी इतनी गोरी गुदकारी कि कहीं पर दबा दो तो फूल खिल जाए। मूँगिया होंठों पर जाने कैसा अछूता गुलाब मुसकराता था और

बाँहें तो जैसे बेले की पाँखुरियों की बनी हों। गेसू आयी। उसके हाथ में मिठाई थी जो उसकी माँ ने सुधा के लिए भेजी थी। वह पल-भर खड़ी रही और फिर उसने मेज पर मिठाई रख दी और क्रोशिया से सुधा की गर्दन गुदगुदाने लगी। सुधा ने करवट बदल ली। गेसू ने नीचे पड़ा हुआ डोरा उठाया और आहिस्ते से उसका चुटीला डोरे के एक छोर से बाँधकर दूसरा छोर मेज के पाये से बाँध दिया और उसके बाद बोली, 'सुधा, सुधा उठो।'

सुधा चौंककर उठ गयी और आँखें मलते-मलते बोली, 'अब दो बजे हैं? लाये उन्हें या नहीं?'

'ओहो! उन्हें लाये या नहीं किसे बुलाया था रानी, दो बजेय जरा हमें भी तो मालूम हो?' गेसू ने बाँह में चुटकी काटते हुए पूछा।

'उफ्फोह!' सुधा बाँह झटककर बोली, 'मार डाला! बेदर्द कहीं की! ये सब अपने उन्हीं अख्तर मियाँ को दिखाया कर!' और ज्यों ही सुधा ने सिर ढँकने के लिए पल्ला उठाया तो देखा कि चोटी डोर में बँधी हुई है। इसके पहले कि सुधा कुछ कहे, गेसू बोली, 'या सनम! जरा पढ़ाई तो देखो, मैंने तो सुना था कि नींद न आये इसलिए लड़के अपनी चोटी खूँटी में बाँध लेते हैं पर यह नहीं मालूम था कि लड़कियाँ भी अब वही करने लगी हैं।'

सुधा ने चोटी से डोर खोलते हुए कहा, 'मैं ही सताने को रह गयी हूँ। अख्तर मियाँ की चोटी बाँधकर नचाना उन्हें। अभी से बेताब क्यों हुई जाती है?'

'अरे रानी, उनके चोटी कहाँ? मियाँ हैं मियाँ?'

'चोटी न सही, दाढ़ी सही।'

'दाढ़ी, खुदा खैर करे, मगर वो दाढ़ी रख लें तो मैं उनसे मोहब्बत तोड़ लूँ।'

सुधा हँसने लगी।

'ले, अम्मी ने तेरे लिए मिठाई भेजी है। तू आयी क्यों नहीं?'

'क्या बताऊँ?'

'बताऊँ-वताऊँ कुछ नहीं। अब कब आएगी तू?'

'गेसू, सुनो, इसी मंगल, नहीं-नहीं बृहस्पति को बुआ आ रही हैं। वो चली जाएँगी तब आऊँगी मैं।'

'अच्छा, अब मैं चलूँ। अभी कामिनी और प्रभा के यहाँ मिठाई पहुँचानी है।'

गेसू मुड़ते हुए बोली।

'अरे बैठो भी।' सुधा ने गेसू की ओढनी पकडकर उसे खींचकर बिठलाते हुए कहा, 'अभी आये हो, बैठे हो, दामन सँभाला है।'

'आहा। अब तो तू भी उर्दू शायरी कहने लगी।' गेसू ने बैठते हुए कहा।

'तेरा ही मर्ज लग गया।' सुधा ने हँसकर कहा।

'देख कहीं और भी मर्ज न लग जाए, वरना फिर तेरे लिए भी इन्तजाम करना होगा!' गेसू ने पलंग पर लेटते हुए कहा।

'अरे ये वो गुड़ नहीं कि चींटे खाएँ।'

'देखूँगी और देखूँगी क्या, देख रही हूँ। इधर पिछले दो साल से कितनी बदल गयी है तू। पहले कितना हँसती-बोलती थी, कितनी लड़ती-झगड़ती थी और अब कितना हँसने-बोलने पर भी गुमसुम हो गयी है तू और वैसे हमेशा हँसती रहे चाहे लेकिन जाने किस खयाल में डूबी रहती है हमेशा।' गेसू ने सुधा की ओर देखते हुए कहा।

'धत् पगली कहीं की।' सुधा ने गेसू के एक हल्की-सी चपत मारकर कहा, 'यह सब तेरे अपने खयाली-पुलाव हैं। मैं किसी के ध्यान में डूबूँगी, ये हमारे गुरु ने नहीं सिखाया।'

'गुरु तो किसी के नहीं सिखाते सुधा रानी, बिल्कुल सच-सच, क्या कभी तुम्हारे मन में किसी के लिए मोहब्बत नहीं जागी?' गेसू ने बहुत गम्भीरता से पूछा।

'देख गेसू, तुझसे मैंने आज तक तो कभी कुछ नहीं छिपाया, न शायद कभी छिपाऊँगी। अगर कभी कोई बात होती तो तुझसे छिपी न रहती और रहा मुहब्बत का, तो सच पूछ तो मैंने जो कुछ कहानियों में पढ़ा है कि किसी को देखकर मैं रोने लगूँ, गाने लगूँ, पागल हो जाऊँ यह सब कभी मुझे नहीं हुआ और रहीं कविताएँ तो उनमें की बातें मुझे बहुत अच्छी लगती हैं। कीट्स की कविताएँ पढकर ऐसा लगा है अक्सर कि मेरी नसों का कतरा-कतरा आँसू बनकर छलकने वाला है। लेकिन वह महज कविता का असर होता है।'

'महज कविता का असर,' गेसू ने पूछा, 'कभी किसी खास आदमी के लिए तेरे मन में हँसी या आँसू नहीं उमड़ते! कभी अपने मन को जाँचकर तो देख, कहीं तेरी नाजुक-खयाली के परदे में किसी एक की सूरत तो नहीं छिपी है।'

'नहीं गेसू बानो, नहीं, इसमें मन को जाँचने की क्या बात है। ऐसी बात होती और मन किसी के लिए झुकता तो क्या खुद मुझे नहीं मालूम होता?' सुधा बोली, 'लेकिन तुम ऐसा क्यों सोचती हो?'

'बात यह है, सुधी!' गेसू ने सुधा को अपनी गोद में खींचते हुए कहा, 'देखो, तुम मुझसे इल्म में ऊँची हो, तुमने अंग्रेजी शायरी छान डाली है, लेकिन जिंदगी से जितना मुझे साबिका पड़ चुका है, अभी तुम्हें नहीं पड़ा। अक्सर कब, कहाँ और कैसे मन अपने को हार बैठता है, यह खुद हमें पता नहीं लगता। मालूम तब होता है जब जिसके कदम पर हमने सिर रखा है, वह झटके से अपने कदम घसीट ले। उस वक्त हमारी नींद टूट जाती है और तब हम जाकर देखते हैं कि अरे हमारा सिर तो किसी के कदमों पर रखा हुआ था और उनके सहारे आराम से सोते हुए हम सपना देख रहे थे कि हमारा सिर कहीं झुका ही नहीं और मुझे जाने तेरी आँखों में इधर क्या दीख रहा है कि मैं बेचैन हो उठी हूँ। तूने कभी कुछ नहीं कहा, लेकिन मैंने देखा कि नाजुक अशआर तेरे दिल को उस जगह छू लेते हैं जिस जगह उसी को छू सकते हैं, जो अपना दिल किसी के कदमों पर चढ़ा चुका हो और मैं यह नहीं कहती कि तूने मुझसे छिपाया है। कौन जानता है तेरे दिल ने खुद तुझसे यह राज छिपा रखा हो।'' और सुधा के गाल थपथपाते हुए गेसू बोली, 'लेकिन मेरी एक बात मानेगी तू? तू कभी इस दर्द को मोल न लेना, बहुत तकलीफ होती है।'

सुधा हँसने लगी, 'तकलीफ की क्या बात? तू तो है ही। तुझसे पूछ लूँगी उसका इलाज।'

'मुझसे पूछकर क्या कर लेगी–

दर्दे दिल क्या बाँटने की चीज है?

बाँट लें अपने पराये दर्दे दिल?

नहीं, तू बड़ी सुकुवाँर है। तू इन तकलीफों के लिए बनी नहीं मेरी चम्पा!'' और गेसू ने उसका सिर अपनी छाती में छिपा लिया।

टन से घड़ी ने साढ़े तीन बजाये।

सुधा ने अपना सिर उठाया और घड़ी की ओर देखकर कहा–

'ओफ्फोह, साढ़े तीन बजे गये और अभी तक गायब!'

'किसके इन्तजार में बेताब है तू?' गेसू ने उठकर पूछा।

'बस दर्दे दिल, मुहब्बत, इन्तजार, बेताबी, तेरे दिमाग में तो यही सब भरा रहता है आज कल, वही तू सबको समझती है। इन्तजार-विन्तजार नहीं, चन्दर अभी मास्टर लेकर आएँगे। अब इम्तहान कितना नजदीक है।'

'हाँ, ये तो सच है और अभी तक मुझसे पूछ, क्या पढ़ाई हुई है। असल बात तो यह है कि कॉलेज में पढ़ाई हो तो घर में पढने में मन लगे और राजा

कॉलेज में पढ़ाई नहीं होती। इससे अच्छा सीधे यूनिवर्सिटी में बी.ए. करते तो अच्छा था। मेरी तो अम्मी ने कहा कि वहाँ लड़के पढ़ते हैं, वहाँ नहीं भेजूँगी, लेकिन तू क्यों नहीं गयी, सुधा?'

'मुझे भी चन्दर ने मना कर दिया था।'' सुधा बोली।

सहसा गेसू ने एक क्षण को सुधा की ओर देखा और कहा, 'सुधी, तुझसे एक बात पूछूँ!'

'हाँ!'

'अच्छा जाने दे!'

'पूछो न!'

'नहीं, पूछना क्या, खुद जाहिर है।'

'क्या?'

'कुछ नहीं।'

'पूछो न!'

'अच्छा, फिर कभी पूछ लेंगे! अब देर हो रही है। आधा घंटा हो गया। कोचवान बाहर खड़ा है।'

सुधा गेसू को पहुँचाने बाहर तक आयी।

'कभी हसरत को लेकर आओ।' सुधा बोली।

'अब पहले तुम आओ।' गेसू ने चलते-चलते कहा।

'हाँ, हम तो बिनती को लेकर आएँगे और हसरत से कह देना तभी उसके लिए तोहफा लाएँगे!'

'अच्छा, सलाम...'

और गेसू की गाड़ी मुश्किल से फाटक के बाहर गयी होगी कि साइकिल पर चन्दर आते हुए दीख पड़ा। सुधा ने बहुत गौर से देखा कि उसके साथ कौन है, मगर वह अकेला था।

सुधा सचमुच झल्ला गयी। आखिर लापरवाही की हद होती है। चन्दर को दुनिया भर के काम याद रहते हैं, एक सुधा से जाने क्या खार खाये बैठा है कि सुधा का काम कभी नहीं करेगा। इस बात पर सुधा कभी-कभी दु:खी हो जाती है और घर में किससे वह कहे काम के लिए। खुद कभी बाजार नहीं जाती। नतीजा यह होता है कि वह छोटी-से-छोटी चीज के लिए मोहताज होकर बैठ जाती है और काम नौकरों से करवा भी ले, पर अब मास्टर तो नौकर से नहीं ढुँढ़वाया जा सकता? ऊन तो नौकर नहीं पसन्द कर सकता? किताबें तो नौकर

नहीं ला सकता? और चन्दर का यह हाल है। इसी बात पर कभी-कभी उसे रुलाई आ जाती है।

चन्दर ने आकर बरामदे में साइकिल रखी और सुधा का चेहरा देखते ही वह समझ गया। 'काहे मुँह बना रखा है, पाँच बजे मास्टर साहब आएँगे तुम्हारे। अभी उन्हीं के यहाँ से आ रहे हैं। बिसरिया को जानती हो, वही आएँगे।' और उसके बाद चन्दर सीधा स्टडी-रूम में पहुँच गया। वहाँ जाकर देखा तो आराम-कुर्सी पर बैठे-ही-बैठे डॉ. शुक्ला सो रहे हैं, अतः उसने अपना चार्ट और पेन उठाया और ड्राइंगरूम में आकर चुपचाप काम करने लगा।

बड़ा गम्भीर था वह। जब इंक घोलने के लिए उसने सुधा से पानी नहीं माँगा और खुद गिलास लाकर आँगन में पानी लेने लगा, तब सुधा समझ गयी कि आज दिमाग कुछ बिगड़ा है। वह एकदम तड़प उठी। क्या करे वह! वैसे चाहे वह चन्दर से कितना ही ढीठ क्यों न हो पर चन्दर गुस्सा रहता था तब सुधा की रूह काँप उठती थी। उसकी हिम्मत नहीं पड़ती थी कि वह कुछ भी कहे। लेकिन अन्दर-ही-अन्दर वह इतनी परेशान हो उठती थी कि बस।

कई बार वह किसी-न-किसी बहाने से ड्राइंगरूम में आयी, कभी गुलदस्ता बदलने, कभी मेजपोश बदलने, कभी आलमारी में कुछ रखने, कभी अलमारी में से कुछ निकालने, लेकिन चन्दर अपने चार्ट में निगाह गड़ाये रहा। उसने सुधा की ओर देखा तक नहीं। सुधा की आँख में आँसू छलक आये और वह चुपचाप अपने कमरे में चली गयी और लेट गयी। थोड़ी देर वह पड़ी रही, पता नहीं क्यों वह फूट-फूटकर रो पड़ी। खूब रोयी, खूब रोयी और फिर मुँह धोकर आकर पढने की कोशिश करने लगी। जब हर अक्षर में उसे चन्दर का उदास चेहरा नजर आने लगा तो उसने किताब बन्द करके रख दी और ड्राइंगरूम में गयी। चन्दर ने चार्ट बनाना भी बन्द कर दिया था और कुरसी पर सिर टेके छत की ओर देखता हुआ जाने क्या सोच रहा था।

वह जाकर सामने बैठ गयी तो चन्दर ने चौंककर सिर उठाया और फिर चार्ट को सामने खिसका लिया। सुधा ने बड़ी हिम्मत करके कहा-

'चन्दर!'

'क्या!' बड़े भर्राये गले से चन्दर बोला।

'इधर देखो!' सुधा ने बहुत दुलार से कहा।

'क्या है!' चन्दर ने उधर देखते हुए कहा, 'अरे सुधा! तुम रो क्यों रही हो?'

'हमारी बात पर नाराज हो गये तुम। हम क्या करें, हमारा स्वभाव ही ऐसा हो गया। पता नहीं क्यों तुम पर इतना गुस्सा आ जाता है।' सुधा के गाल पर दो बड़े-बड़े मोती ढलक आये।

'अरे पगली! मालूम होता है तुम्हारा तो दिमाग बहुत जल्दी खराब हो जाएगा, हमने तुमसे कुछ कहा है?'

'कह लेते तो हमें सन्तोष हो जाता। हमने कभी कहा तुमसे कि तुम कहा मत करो। गुस्सा मत हुआ करो। मगर तुम तो फिर गुस्सा मन-ही-मन में छिपाने लगते हो। इसी पर हमें रुलाई आ जाती है।'

'नहीं सुधी, तुम्हारी बात नहीं थी और हम गुस्सा भी नहीं थे। पता नहीं क्यों मन बड़ा भारी-सा था।'

'क्या बात है, अगर बता सको तो बताओ, वरना हम कौन हैं तुमसे पूछने वाले।'' सुधा ने बड़े करुण स्वर में कहा।

'तो तुम्हारा दिमाग खराब हुआ। हमने कभी तुमसे कोई बात छिपायी? जाओ, अच्छी लड़की की तरह मुँह धो आओ।'

सुधा उठी और मुँह धोकर आकर बैठ गयी।

'अब बताओ, क्या बात थी?'

'कोई एक बात हो तो बताएँ। पता नहीं तुम्हारे घर से गये तो एक-न-एक ऐसी बात होती गयी कि मन बड़ा उदास हो गया।'

'आखिर फिर भी कोई बात तो हुई ही होगी!'

'बात यह हुई कि तुम्हारे यहाँ से मैं घर गया खाना खाने। वहाँ देखा चाचाजी आये हुए हैं, उनके साथ एक कोई साहब और हैं। खैर बड़ी खुशी हुई। खाना-वाना खाकर जब बैठे तब मालूम हुआ कि चाचाजी मेरा ब्याह तय करने के लिए आये हैं और साथ वाले साहब मेरे होनेवाले ससुर हैं। जब मैंने इनकार कर दिया तो बहुत बिगडकर चले गये और बोले हम आज से तुम्हारे लिए मर गये और तुम हमारे लिए मर गये।'

'तुम्हारी माताजी कहाँ हैं?'

'प्रतापगढ़ में, लेकिन वो तो सौतेली हैं और वे तो चाहती ही नहीं कि मैं घर लौटूँ, लेकिन चाचाजी जरूर आज तक मुझसे कुछ मुहब्बत करते थे। आज वह भी नाराज होकर चले गये।'

सुधा कुछ देर तक सोचती रही, फिर बोली, 'तो चन्दर, तुम शादी कर क्यों नहीं लेते?'

'नहीं सुधा, शादी नहीं करनी है मुझे। मैंने देखा कि जिसकी शादी हुई, कोई भी सुखी नहीं हुआ। सभी का भविष्य बिगड़ गया और क्यों एक तवालत पाली जाए? जाने कैसी लड़की हो, क्या हो?'

'तो उसमें क्या? पापा से कहो उस लड़की को जाकर देख लें। हम भी पापा के साथ चले जाएँगे। अच्छी हो तो कर लो न, चन्दर। फिर यहीं रहना। हमें अकेला भी नहीं लगेगा। क्यों?'

'नहीं जी, तुम तो समझती नहीं हो। जिंदगी निभानी है कि कोई गाय-भैंस खरीदना है!'' चन्दर ने हँसकर कहा, 'आदमी एक-दूसरे को समझे, बूझे, प्यार करे, तब ब्याह के भी कोई माने हैं।'

'तो उसी से कर लो जिससे प्यार करते हो!'

चन्दर ने कुछ जवाब नहीं दिया।

'बोलो! चुप क्यों हो गये! अच्छा, तुमने किसी को प्यार किया, चन्दर!'

'क्यों?'

'बताओ न!'

शायद नहीं!'

'बिल्कुल ठीक, हम भी यही सोच रहे थे अभी।' सुधा बोली।

'क्यों, ये क्यों सोच रही थी?'

'इसलिए कि तुमने किया होता तो तुम हमसे थोड़े ही छिपाते, हमें जरूर बताते और नहीं बताया तो हम समझ गये कि अभी तुमने किसी से प्यार नहीं किया।'

'लेकिन तुमने यह पूछा क्यों, सुधा! यह बात तुम्हारे मन में उठी कैसे?'

'कुछ नहीं, अभी गेसू आयी थी। वह बोली-सुधा, तुमने किसी से कभी प्यार किया है, असल में वह अख्तर को प्यार करती है। उससे उसका विवाह होनेवाला है। हाँ, तो उसने पूछा कि तूने किसी से प्यार किया है, हमने कहा, नहीं। बोली, तू अपने से छिपाती है। तो हम मन-ही-मन में सोचते रहे कि तुम आओगे तो तुमसे पूछेंगे कि हमने कभी प्यार तो नहीं किया है। क्योंकि तुम्हीं एक हो जिससे हमारा मन कभी कोई बात नहीं छिपाता, अगर कोई बात छिपाई भी होती हमने, तो तुम्हें जरूर बता देती। फिर हमने सोचा, शायद कभी हमने प्यार किया हो और तुम्हें बताया हो, फिर हम भूल गये हों। अभी उसी दिन देखो, हम पापा की दवाई का नाम भूल गये और तुम्हें याद रहा। शायद हम भूल गये हों और तुम्हें मालूम हो। कभी हमने प्यार तो नहीं किया न?'

'नहीं, हमें तो कभी नहीं बताया।' चन्दर बोला।

'तब तो हमने प्यार-वार नहीं किया। गेसू यूँ ही गप्प उड़ा रही थी।' सुधा ने सन्तोष की साँस लेकर कहा, 'लेकिन बस! चाचाजी के नाराज होने पर तुम इतने दु:खी हो गये हो! हो जाने दो नाराज। पापा तो हैं अभी, क्या पापा मुहब्बत नहीं करते तुमसे?'

'सो क्यों नहीं करते, तुमसे ज्यादा मुझसे करते हैं, लेकिन उनकी बात से मन तो भारी हो ही गया। उसके बाद गये बिसरिया के यहाँ। बिसरिया ने कुछ बड़ी अच्छी कविताएँ सुनायीं और भी मन भारी हो गया।'' चन्दर ने कहा।

'लो, तब तो चन्दर, तुम प्यार करते होगे! जरूर से?'' सुधा ने हाथ पटककर कहा।

'क्यों?'

'गेसू कह रही थी-शायरी पर जो उदास हो जाता है वह जरूर मुहब्बत-वुहब्बत करता है।' सुधा ने कहा, 'अरे यह पोर्टिको में कौन है?'

चन्दर ने देखा, 'लो बिसरिया आ गया!'

चन्दर उसे बुलाने उठा तो सुधा ने कहा, 'अभी बाहर बिठलाना उन्हें, मैं तब तक कमरा ठीक कर लूँ।'

बिसरिया को बाहर बिठाकर चन्दर भीतर आया, अपना चार्ट वगैरह समेटने के लिए, तो सुधा ने कहा, 'सुनो!'

चन्दर रुक गया।

सुधा ने पास आकर कहा, 'तो अब तो उदास नहीं हो तुम। नहीं चाहते मत करो शादी, इसमें उदास क्या होना और कविता-ववित पर मुँह बनाकर बैठे तो अच्छी बात नहीं होगी।'

'अच्छा!' चन्दर ने कहा।

'अच्छा-वच्छा नहीं, बताओ, तुम्हें मेरी कसम है, उदास मत हुआ करो फिर हमसे कोई काम नहीं होता।'

'अच्छा, उदास नहीं होंगे, पगली!' चन्दर ने हल्की-सी चपत मारकर कहा और बरबस उसके मुँह से एक ठण्डी साँस निकली। उसने चार्ट उठाकर स्टडी रूम में रखा। देखा डॉक्टर साहब अभी सो ही रहे हैं। सुधा कमरा ठीक कर रही थी। वह आकर बिसरिया के पास बैठ गया।

थोड़ी देर में कमरा ठीक करके सुधा आकर कमरे के दरवाजे पर खड़ी हो गयी। चन्दर ने पूछा-'क्यों, सब ठीक है?'

उसने सिर हिला दिया, कुछ बोली नहीं।

'यही हैं आपकी शिष्या। सुश्री सुधा शुक्ला। इस साल बी.ए. फाइनल का इम्तहान देंगी।'

बिसरिया ने बिना आँखें उठाये ही हाथ जोड़ लिये। सुधा ने हाथ जोड़े फिर बहुत सकुचा-सी गयी। चन्दर उठा और बिसरिया को लाकर उसने अन्दर बिठा दिया। बिसरिया के सामने सुधा और उसकी बगल में चन्दर।

चुप। सभी चुप।

अन्त में चन्दर बोला-'लो, तुम्हारे मास्टर साहब आ गये। अब बताओ न, तुम्हें क्या-क्या पढना है?'

सुधा चुप। बिसरिया कभी यह पुस्तक उलटता, कभी वह। थोड़ी देर बाद वह बोला-'आपके क्या विषय हैं?'

'जी!' बड़ी कोशिश से बोलते हुए सुधा ने कहा-'हिन्दी, इकोनॉमिक्स और गृह-विज्ञान।' और उसके माथे पर पसीना झलक आया।

'आपको हिन्दी कौन पढ़ाता है?' बिसरिया ने किताब में ही निगाह गड़ाये हुए कहा।

सुधा ने चन्दर की ओर देखा और मुस्कराकर फिर मुँह झुका लिया।

'बोलो न तुम खुद, ये राजा गर्ल्स कॉलेज में हैं। शायद मिस पवार हिन्दी पढ़ाती हैं।' चन्दर ने कहा-'अच्छा, अब आप पढ़ाइए, मैं अपना काम करूँ।' चन्दर उठकर चल दिया। स्टडी रूम में मुश्किल से चन्दर दरवाजे तक पहुँचा होगा कि सुधा ने बिसरिया से कहा-

'जी, मैं पेन ले आऊँ!' और लपकती हुई चन्दर के पास पहुँची।

'ए सुनो, चन्दर!' चन्दर रुक गया और उसका कुरता पकड़कर छोटे बच्चों की तरह मचलते हुए सुधा बोली-'तुम चलकर बैठो तो हम पढ़ेंगे। ऐसे शरम लगती है।'

'जाओ, चलो! हर वक्त वही बचपना!' चन्दर ने डाँटकर कहा-'चलो, पढ़ो सीधे से। इतनी बड़ी हो गयी, अभी तक वही आदतें!'

सुधा चुपचाप मुँह लटकाकर खड़ी हो गयी और फिर धीरे-धीरे पढ़ने लग गयी। चन्दर स्डटी रूम में जाकर चार्ट बनाने लगा। डॉक्टर साहब अभी तक सो रहे थे। एक मक्खी उड़कर उनके गले पर बैठ गयी और उन्होंने बायें हाथ से मक्खी मारते हुए नींद में कहा-'मैं इस मामले में सरकार की नीति का विरोध करता हूँ।'

चन्दर ने चौंककर पीछे देखा। डॉक्टर साहब जग गये थे और जमुहाई ले रहे थे।

'जी, आपने मुझसे कुछ कहा?' चन्दर ने पूछा।

'नहीं, क्या मैंने कुछ कहा था? ओह! मैं सपना देख रहा था कै बज गये?'

'साढ़े पाँच।'

'अरे बिल्कुल शाम हो गयी!' डॉक्टर साहब ने बाहर देखकर कहा–'अब रहने दो कपूर, आज काफी काम किया है तुमने। चाय मँगवाओ। सुधा कहाँ है?'

'पढ़ रही है। आज से उसके मास्टर साहब आने लगे हैं।'

'अच्छा–अच्छा, जाओ उन्हें भी बुला लाओ और चाय भी मँगवा लो। उसे भी बुला लो–सुधा को।'

चन्दर जब ड्राइंग रूम में पहुँचा तो देखा सुधा किताबें समेट रही है और बिसरिया जा चुका है। उसने सुधा से कहना चाहा लेकिन सुधा का मुँह देखते ही उसने अनुमान किया कि सुधा लड़ने के मूड में है, अत: वह स्वयं ही जाकर महराजिन से कह आया कि तीन प्याला चाय पढ़ने के कमरे में भेज दो। जब वह लौटने लगा तो खुद सुधा ही उसके रास्ते में खड़ी हो गयी और धमकी के स्वर में बोली–'अगर कल से साथ नहीं बैठोगे तुम, तो हम नहीं पढ़ेंगे।'

'हम साथ नहीं बैठ सकते, चाहे तुम पढ़ो या न पढ़ो।' चन्दर ने ठंडे स्वर में कहा और आगे बढ़ा।

'तो फिर हम नहीं पढ़ेंगे।' सुधा ने जोर से कहा।

'क्या बात है? क्यों लड़ रहे हो तुम लोग?' डॉ. शुक्ला अपने कमरे से बोले। चन्दर कमरे में जाकर बोला, 'कुछ नहीं, ये कह रही हैं कि...'

'पहले हम कहेंगे,' बात काटकर सुधा बोली–'पापा, हमने इनसे कहा कि तुम पढ़ाते वक्त बैठा करो, हमें बहुत शरम लगती है, ये कहते हैं पढ़ो चाहे न पढ़ो, हम नहीं बैठेंगे।'

'अच्छा–अच्छा, जाओ चाय लाओ।'

जब सुधा चाय लाने गयी तो डॉक्टर साहब बोले–'कोई विश्वासपात्र लड़का है? अपने घर की लड़की समझकर सुधा को सौंपना पढ़ने के लिए। सुधा अब बच्ची नहीं है।'

'हाँ–हाँ, अरे यह भी कोई कहने की बात है!'

'हाँ, वैसे अभी तक सुधा तुम्हारी ही निगहबानी में रही है। तुम खुद ही अपनी जिम्मेदारी समझते हो। लड़का हिन्दी में एम.ए. है?'

'हाँ, एम.ए. कर रहा है।'

'अच्छा है, तब तो बिनती आ रही है, उसे भी पढ़ा देगा।'

सुधा चाय लेकर आ गयी थी।

'पापा, तुम लखनऊ कब जाओगे?'

'शुक्रवार को, क्यों?'

'और ये भी जाएँगे?'

'हाँ।'

'और हम अकेले रहेंगे?'

'क्यों, महराजिन यहीं सोएगी और अगले सोमवार को हम लौट आएँगे।' डॉ. शुक्ला ने चाय का प्याला मुँह से लगाते हुए कहा।

एक गमकदे की शाम, मन उदास, तबीयत उचटी-सी, सितारों की रोशनी फीकी लग रही थी। मार्च की शुरुआत थी और फिर भी जाने शाम इतनी गरम थी, या सुधा को ही इतनी बेचैनी लग रही थी। पहले वह जाकर सामने के लॉन में बैठी लेकिन सामने के मौलसिरी के पेड़ में छोटी-छोटी गौरैयों ने मिलकर इतनी जोर से चहचहाना शुरू किया कि उसकी तबीयत घबरा उठी। वह इस वक्त एकान्त चाहती थी और सबसे बढ़कर सन्नाटा चाहती थी जहाँ कोई न बोले, कोई बात न करे, सभी खामोशी में डूबे हुए हों।

वह उठकर टहलने लगी और जब लगा कि पैरों में ताकत ही नहीं रही तो फिर लेट गयी, हरी-हरी घास पर। मंगलवार की शाम थी और अभी तक पापा नहीं आये थे। आना तो दूर, पापा या चन्दर के हाथ के एक पुरजे के लिए तरस गयी थी। किसी ने यह भी नहीं लिखा कि वे लोग कहाँ रह गये हैं, या कब तक आएँगे। किसी को भी सुधा का खयाल नहीं। शनिवार या इतवार को तो वह हर रोज खाना खाते वक्त रोयी, चाय पीना तो उसने उसी दिन से छोड़ दिया था और सोमवार को सुबह पापा नहीं आये तो वह इतना फूट-फूटकर रोयी कि महराजिन को सिंकती हुई रोटी छोड़कर चूल्हे की आँच निकालकर सुधा को समझाने आना पड़ा और सुधा की रुलाई देखकर तो महराजिन के हाथ-पाँव ढीले हो गये थे। उसकी सारी डाँट हवा हो गयी थी और वह सुधा का मुँह-ही-मुँह देखती थी। कल से कॉलेज भी नहीं गयी थी और दोनों दिन इन्तजार करती रही कि कहीं दोपहर को पापा न आ जाएँ। गेसू से भी दो दिन से मुलाकात नहीं हुई थी।

लेकिन मंगल को दोपहर तक जब कोई खबर न आयी तो उसकी घबराहट बेकाबू हो गयी। इस वक्त उसने बिसरिया से कोई भी बात नहीं की। आधा घंटा पढने के बाद उसने कहा कि उसके सिर में दर्द हो रहा है और उसके बाद खूब रोयी, खूब रोयी। उसके बाद उठी, चाय पी, मुँह-हाथ धोया और सामने के लॉन में टहलने लगी और फिर लेट गयी हरी-हरी घास पर।

बड़ी ही उदास शाम थी और क्षितिज की लाली के होठ भी स्याह पड़ गये थे। बादल साँस रोके पड़े थे और खामोश सितारे टिमटिमा रहे थे। बगुलों की धुँधली-धुँधली कतारें पर मारती हुई गुजर रही थीं। सुधा ने एक लम्बी साँस लेकर सोचा कि अगर वह चिड़िया होती तो एक क्षण में उडकर जहाँ चाहती वहाँ की खबर ले आती। पापा इस वक्त घूमने गये होंगे। चन्दर अपने दोस्तों की टोली में बैठा रँगरेलियाँ कर रहा होगा। वहाँ भी दोस्त बना ही लिये होंगे उसने। बड़ा बातूनी है चन्दर और बड़ा मीठे स्वभाव का। आज तक किसी से सुधा ने उसकी बुराई नहीं सुनी। सभी उसको प्यार करते थे। यहाँ तक कि महराजिन, जो सुधा को हमेशा डाँटती रहती थी, चन्दर का हमेशा पक्ष लेती थी और सुधा हरेक से पूछ लेती थी कि चन्दर के बारे में उसकी क्या राय है? लेकिन सब लोग जितनी चन्दर की तारीफ करते वह उतना अच्छा उसे नहीं समझती थी। आदमी की परख तब होती है जब दिन-रात बरते। चन्दर उसका ऊन कभी नहीं लाकर देता था, बादामी रंग का रेशम मँगाओ तो केसरिया रंग का ला देता था। इतने नक्शे बनाता रहता था और सुधा ने हमेशा उससे कहा कि मेजपोश की कोई डिजाइन बना दो तो उसने कभी नहीं बनायी। एक बार सुधा ने बहुत अच्छी वायल कानपुर से मँगवायी और चन्दर ने कहा, 'लाओ, यह बहुत अच्छी है, इस पर हम किनारे की डिजाइन बना देंगे।' और उसके बाद उसने उसमें तमाम पान-जैसा जाने क्या बना दिया और जब सुधा ने पूछा, 'यह क्या है?' तो बोला, 'लंका का नक्शा है।' जब सुधा बिगड़ी तो बोला, 'लड़कियों के हृदय में रावण से मेघनाद तक करोड़ों राक्षसों का वास होता है, इसलिए उनकी पोशाक में लंका का नक्शा ज्यादा सुशोभित होता है।' मारे गुस्से के सुधा ने वह धोती अपनी मालिन को दे डाली थी। यह सब बातें तो किसी को मालूम नहीं। उनके सामने तो जरा-सा कपूर साहब हँस दिये, चार मजाक की बातें कर दीं, छोटे-मोटे उनके काम कर दिये, मीठी बातें कर लीं और सब समझे कपूर साहब तो बिल्कुल गुलाब के फूल हैं। लेकिन कपूर साहब एक तीखे काँटे हैं, जो दिन-रात सुधा के मन में चुभते रहते हैं, यह तो दुनिया को नहीं मालूम। दुनिया क्या जाने कि

सुधा कितनी परेशानी रहती है चन्दर की आदतों से! अगर दुनिया को मालूम हो जाए तो कोई चन्दर की जरा भी तारीफ न करे, सब सुधा को ही ज्यादा अच्छा कहें, लेकिन सुधा कभी किसी से कुछ नहीं कहती, मगर आज उसका मन हो रहा था कि किसी से चन्दर की जी भरकर बुराई कर ले तो उसका मन बहुत हल्का हो जाए।

'चलो बिटिया रानी, तई खाय लेव, फिर भीतर लेटो। अबहिन लेटे का बखत नहीं आवा!' सहसा महराजिन ने आकर सुधा की स्वप्न-शृंखला तोड़ते हुए कहा।

'अब हम नहीं खाएँगे, भूख नहीं।' सुधा ने अपने सुनहले सपनों में ही डूबी हुई बेहोश आवाज में जवाब दिया।

'खाय लेव बिटिया, खाय-पियै छोड़ै से कसस काम चली, आव उठौ!' महराजिन ने बड़े दुलार से कहा। सुधा पीछा छूटने की कोई आशा न देखकर उठ गयी और चल दी खाने। कौर उठाते ही उसकी आँख में आँसू छलक आये, लेकिन अपने को रोक लिया उसने। दूसरों के सामने अपने को बहुत शान्त रखना आता था। उसे। दो कौर खाने के बाद वह महराजिन से बोली, 'आज कोई चिठ्ठी तो नहीं आयी?'

'नहीं बिटिया, आज तो दिन भर घरै में रह्यो!' महराजिन ने पराठे उलटते हुए जवाब दिया-'काहे बिटिया, बाबूजी कुछौ नाही लिखिन तो छोटे बाबू तो लिख देते।'

'अरे महराजिन, यही तो हमारी जान का रोना है। हम चाहे रो-रोकर मर जाएँ मगर न पापा को खयाल, न पापा के शिष्य को और चन्दर तो ऐसे खराब हैं कि हम क्या करें। ऐसे स्वार्थी हैं, अपने मतलब के कि बस! सुबह-शाम आएँ और हम या पापा न मिलें तो आफत ढा देंगे-बहुत घूमने लगी हो तुम, बहुत बाहर कदम निकल गया है तुम्हारा-और सच पूछो तो चन्दर की वजह से हमने सब जगह आना-जाना बन्द कर दिया और खुद हैं कि आज लखनऊ, कल कलकत्ता और एक चिठ्ठी भेजने तक का वक्त नहीं मिलता! अभी हम ऐसा करते तो हमारी जान नोच खाते! और पापा को देखो, उनके दुलारे उनके साथ हैं तो बस और किसी की फिक्र ही नहीं। अब तुम महराजिन, चन्दर को तो कभी कुछ चाय-वाय बना के मत देना।'

'काहे बिटिया, काहे कोसत हो। कैसा चाँद-से तो हैं छोटे बाबू और कैसा हँस के बातें करत हैं। माई का जाने कैसे हियाव पड़ा कि उन्हें अलग कै दिहिस। बेचारा

होटल में जाने कैसे रोटी खात होई। उन्हें हिंयई बुलाय लेव तो अपने हाथ की खिलाय के दुई महीना माँ मोटा कै देई। हमें तोसे ज्यादा उसकी ममता लगत है।'

'बीबीजी, बाहर एक मेम पूछत हैं-हिंया कोनो डाकदर रहत हैं? हम कहा, नाहीं, हिंया तो बाबूजी रहत हैं तो कहत हैं, नहीं यही मकान आय।' मालिन ने सहसा आकर बहुत स्वतंत्र स्वरों में कहा।

'बैठाओ उन्हें, हम आते हैं।' सुधा ने कहा और जल्दी-जल्दी खाना शुरू किया और जल्दी-जल्दी खत्म कर दिया।

बाहर जाकर उसने देखा तो नीलकाँटे के झाड़ से टिकी हुई एक बाइसिकिल रखी थी और एक ईसाई लड़की लॉन पर टहल रही है। होगी करीब चौबीस-पच्चीस बरस की, लेकिन बहुत अच्छी लग रही थी।

'कहिए, आप किसे पूछ रही हैं?' सुधा ने अंग्रेजी में पूछा।

'मैं डॉक्टर शुक्ला से मिलने आयी हूँ।' उसने शुद्ध हिन्दुस्तानी में कहा।

'वे तो बाहर गये हैं और कब आएँगे, कुछ पता नहीं। कोई खास काम है आपको?' सुधा ने पूछा।

'नहीं, यूँ ही मिलने आ गयी। आप उनकी लड़की हैं?' उसने साइकिल उठाते हुए कहा।

'जी हाँ, लेकिन अपना नाम तो बताती जाइए।'

'मेरा नाम कोई महत्वपूर्ण नहीं। मैं उनसे मिल लूँगी और हाँ, आप उसे जानती हैं, मिस्टर कपूर को?'

'आहा! आप पम्मी हैं, मिस डिक्रूज!' सुधा को एकदम खयाल आ गया-'आइए, आइएय हम आपको ऐसे नहीं जाने देंगे। चलिए, बैठिए।' सुधा ने बड़ी बेतकल्लुफी से उसकी साइकिल पकड़ ली।

'अच्छा-अच्छा, चलो!' कहकर पम्मी जाकर ड्राइंग रूम में बैठ गयी।

'मिस्टर कपूर रहते कहाँ हैं?' पम्मी ने बैठने से पहले पूछा।

'रहते तो वे चौक में हैं, लेकिन आजकल तो वे भी पापा के साथ बाहर गये हैं। वे तो आपकी एक दिन बहुत तारीफ कर रहे थे, बहुत तारीफ। इतनी तारीफ किसी लड़की की करते तो हमने सुना नहीं।'

'सचमुच!' पम्मी का चेहरा लाल हो गया। 'वह बहुत अच्छे हैं, बहुत अच्छे हैं!'

थोड़ी देर पम्मी चुप रही, फिर बोली-'क्या बताया था उन्होंने हमारे बारे में?'

'ओह तमाम! एक दिन शाम को तो हम लोग आप ही के बारे में बातें करते रहे। आपके भाई के बारे में बताते रहे। फिर आपके काम के बारे में बताया कि आप कितना तेज टाइप करती हैं, फिर आपकी रुचियों के बारे में बताया कि आपको साहित्य से बहुत शौक नहीं है और आप शादी से बेहद नफरत करती हैं और आप ज्यादा मिलती-जुलती नहीं, बाहर आती-जाती नहीं और मिस डिक्रूज...'

'न, आप पम्मी कहिए मुझे?'

'हाँ, तो मिस पम्मी, शायद इसीलिए आप उसे इतनी अच्छी लगीं कि आप कहीं आती-जाती नहीं, वह लड़कियों का आना-जाना और आजादी बहुत नापसन्द करता है।' सुधा बोली।

'नहीं, वह ठीक सोचता है।' पम्मी बोली-'मैं शादी और तलाक के बाद इसी नतीजे पर पहुँची हूँ कि चौदह बरस से चौंतीस बरस तक लड़कियों को बहुत शासन में रखना चाहिए।' पम्मी ने गम्भीरता से कहा।

एक ईसाई मेम के मुँह से यह बात सुनकर सुधा दंग रह गयी।

'क्यों?' उसने पूछा।

'इसलिए कि इस उम्र में लड़कियाँ बहुत नादान होती हैं और जो कोई भी चार मीठी बातें करता है, तो लड़कियाँ समझती हैं कि इससे ज्यादा प्यार उन्हें कोई नहीं करता और इस उम्र में जो कोई भी ऐरा-गैरा उनके संसर्ग में आ जाता है, उसे वे प्यार का देवता समझने लगती हैं और नतीजा यह होता है कि वे ऐसे जाल में फँस जाती हैं कि जिंदगी भर उससे छुटकारा नहीं मिलता। मेरा तो यह विचार है कि या तो लड़कियाँ चौंतीस बरस के बाद शादियाँ करें जब वे अच्छा-बुरा समझने के लायक हो जाएँ, नहीं तो मुझे तो हिन्दुओं का कायदा सबसे ज्यादा पसन्द आता है कि चौदह वर्ष के पहले ही लड़की की शादी कर दी जाए और उसके बाद उसका संसर्ग उसी आदमी से रहे जिससे उसे जिंदगी भर निबाह करना है और अपने विकास-क्रम से दोनों ही एक-दूसरे को समझते चलें। लेकिन यह तो सबसे भद्दा तरीका है कि चौदह और चौंतीस बरस के बीच में लड़की की शादी हो, या उसे आजादी दी जाए। मैंने तो स्वयं अपने ऊपर बन्धन बाँध लिये थे।....तुम्हारी तो शादी अभी नहीं हुई?'

'नहीं।'

'बहुत ठीक, तुम चौंतीस बरस के पहले शादी मत करना, अच्छा हाँ और क्या बताया चन्दर ने मेरे बारे में?'

'और तो कुछ खास नहीं, हाँ, यह कह रहा था, आपको चाय और सिगरेट बहुत अच्छी लगती है। ओहो, देखिए मैं भूल ही गयी, लीजिए सिगरेट मँगवाती हूँ।'' और सुधा ने घंटी बजायी।

'रहने दीजिए, मैं सिगरेट छोड़ रही हूँ।'

'क्यों?'

'इसलिए कि कपूर को अच्छा नहीं लगता और अब वह मेरा दोस्त बन गया है और दोस्ती में एक-दूसरे से निबाह ही करना पड़ता है। उसने आपसे यह नहीं बताया कि मैंने उसे दोस्त मान लिया है?' पम्मी ने पूछा।

'जी हाँ, बताया था, अच्छा तो चाय लीजिए!'

'हाँ-हाँ, चाय मँगवा लीजिए। आपका कपूर से क्या सम्बन्ध है?' पम्मी ने पूछा।

'कुछ नहीं। मुझसे भला क्या सम्बन्ध होगा उनका, जब देखिए तब बिगड़ते रहते हैं मुझ परय और बाहर गये हैं और आज तक कोई खत नहीं भेजा। ये कहीं सम्बन्ध हैं?'

'नहीं, मेरा मतलब आप उनसे घनिष्ठ हैं!'

'हाँ, कभी वह छिपाते तो नहीं मुझसे कुछ! क्यों?'

'तब तो ठीक है, सच्चे दिल के आदमी मालूम पड़ते हैं। आप तो यह बता सकती हैं कि उन्हें क्या-क्या चीजें पसन्द हैं?'

'हाँ...उन्हें कविता पसन्द है। बस कविता के बारे में बात न कीजिए, कविता सुना दीजिए उन्हें या कविता की किताब दे दीजिए उन्हें और उनको सुबह घूमना पसन्द है। रात को गंगाजी की सैर करना पसन्द है। सिनेमा तो बेहद पसन्द है और, और क्या, चाय की पत्ती का हलुआ पसन्द है।'

'यह क्या होता है?'

'मेरा मतलब बिना दूध की चाय उन्हें पसन्द है।'

'अच्छा, अच्छा। देखिए आप सोचेंगी कि मैं इस तरह से मि. कपूर के बारे में पूछ रही हूँ जैसे मैं कोई जासूस होऊँ, लेकिन असल बात मैं आपको बता दूँ। मैं पिछले दो-तीन साल से अकेली रहती रही। किसी से भी नहीं मिलती-जुलती थी। उस दिन मिस्टर कपूर गये तो पता नहीं क्यों मुझ पर प्रभाव पड़ा। उनको देखकर ऐसा लगा कि यह आदमी है जिसमें दिल की सच्चाई है, जो आदमियों में बिल्कुल नहीं होती। तभी मैंने सोचा, इनसे दोस्ती कर लूँ। लेकिन चूँकि एक बार दोस्ती करके विवाह और विवाह के बाद अलगाव, मैं भोग चुकी हूँ इसलिए

इनके बारे में पूरी जाँच-पड़ताल कर लेना चाहती हूँ। लेकिन दोस्त तो अब बना ही चुकी हूँ।'' चाय आ गयी थी और पम्मी ने सुधा के प्याले में चाय ढाली।

'न, मैं तो अभी खाना खा चुकी हूँ।' सुधा बोली।

'पम्मी ने दो-तीन चुस्कियों के बाद कहा-'आपके बारे में चन्दर ने मुझसे कहा था।'

'कहा होगा!' सुधा मुँह बिगाडकर बोली-'मेरी बुराई कर रहे होंगे और क्या?'

पम्मी चाय के प्याले से उठते हुए धुएँ को देखती हुई अपने ही खयाल में डूबी थी। थोड़ी देर बाद बोली, 'मेरा अनुमान गलत नहीं होता। मैंने कपूर को देखते ही समझ लिया था कि यही मेरे लिए उपयुक्त मित्र हैं। मैंने कविता पढ़नी बहुत दिनों से छोड़ दी लेकिन किसी कवयित्री ने, शायद मिसेज ब्राउनिंग ने कहीं लिखा था, कि वह मेरी जिंदगी में रोशनी बनकर आया, उसे देखते ही मैं समझ गयी कि यह वह आदमी है जिसके हाथ में मेरे दिल के सभी राज सुरक्षित रहेंगे। वह खेल नहीं करेगा और प्यार भी नहीं करेगा। जिंदगी में आकर भी जिंदगी से दूर और सपनों में बँधकर भी सपनों से अलग...यह बात कपूर पर बहुत लागू होती है। माफ करना मिस सुधा, मैं आपसे इसलिए कह रही हूँ कि आप इनकी घनिष्ठ हैं और आप उन्हें बतला देंगी कि मेरा क्या खयाल है उनके बारे में। अच्छा, अब मैं चलूँगी।'

'बैठिए न!' सुधा बोली।

'नहीं, मेरा भाई अकेला खाने के लिए इन्तजार कर रहा होगा।' उठते हुए पम्मी ने कहा।

'आप बहुत अच्छी हैं। इस वक्त आप आयीं तो मैं थोड़ी-सी चिन्ता भूल गयी वरना मैं तीन दिन से उदास थी। बैठिए, कुछ और चन्दर के बारे में बताइए न!'

'अब नहीं। वह अपने ढंग का अकेला आदमी है, यह मैं कह सकती हूँ. ..ओह तुम्हारी आँखें बड़ी सुन्दर हैं। देखूँ।' और छोटे बच्चे की तरह उसके मुँह को हथेलियों से ऊपर उठाकर पम्मी ने कहा, 'बहुत सुन्दर आँखें हैं। माफ करना, मैं कपूर से भी इतनी ही बेतकल्लुफ हूँ!'

सुधा झेंप गयी। उसने आँखें नीची कर लीं।

पम्मी ने अपनी साइकिल उठाते हुए कहा-'कपूर के साथ आप आइएगा और आपने कहा था कपूर को कविता पसन्द है।'

'जी हाँ, गुडनाइट।'

जब पम्मी बँगले पर पहुँची तो उसकी साइकिल के कैरियर में अंग्रेजी कविता के पाँच-छह ग्रन्थ बँधे थे।

आठ बज चुके थे। सुधा जाकर अपने बिस्तरे पर लेटकर पढ़ने लगी। अंग्रेजी कविता पढ़ रही थी। अंग्रेजी लड़कियाँ कितनी आजाद और स्वच्छन्द होती होंगी! जब पम्मी, जो ईसाई है, इतनी आजाद है, उसने सोचा और पम्मी कितनी अच्छी है उसकी बेतकल्लुफी में भोलापन तो नहीं है, पर सरलता बेहद है। बड़ा साफ दिल है, कुछ छिपाना नहीं जानती और सुधा से सिर्फ पाँच-छह साल बड़ी है, लेकिन सुधा उसके सामने बच्ची लगती है। कितना जानती है पम्मी और कितनी अच्छी समझ है उसकी और चन्दर की तारीफ करते नहीं थकती। चन्दर के लिए उसने सिगरेट छोड़ दी। चन्दर उसका दोस्त है, इतनी पढ़ी-लिखी लड़की के लिए रोशनी का देवदूत है। सचमुच चन्दर पर सुधा को गर्व है और उसी चन्दर से वह लड़-झगड़ लेती है, इतनी मान-मनुहार कर लेती है और चन्दर सब बर्दाश्त कर लेता है वरना चन्दर के इतने बड़े-बड़े दोस्त हैं और चन्दर की इतनी इज्जत है। अगर चन्दर चाहे तो सुधा की रत्ती भर परवाह न करे लेकिन चन्दर सुधा की भली-बुरी बात बर्दाश्त कर लेता है और वह कितना परेशान करती रहती है चन्दर को।

कभी अगर सचमुच चन्दर बहुत नाराज हो गया और सचमुच हमेशा के लिए बोलना छोड़ दे तब क्या होगा? या चन्दर यहाँ से कहीं चला जाए तब क्या होगा? खैर, चन्दर जाएगा तो नहीं इलाहाबाद छोडकर, लेकिन अगर वह खुद कहीं चली गयी तब क्या होगा? वह कहाँ जाएगी! अरे पापा को मनाना तो बायें हाथ का खेल है और ऐसा प्यार वह करेगी नहीं कि शादी करनी पड़े।

लेकिन यह सब तो ठीक है। पर चन्दर ने चिठ्ठी क्यों नहीं भेजी? क्या नाराज होकर गया है? जाते वक्त सुधा ने परेशान तो बहुत किया था। होलडॉल की पेटी का बक्सुआ खोल दिया था और उठाते ही चन्दर के हाथ से सब कपड़े बिखर गये। चन्दर कुछ बोला नहीं लेकिन जाते समय उसने सुधा को डाँटा भी नहीं और न यही समझाया कि घर का खयाल रखना, अकेले घूमना मत, महराजिन से लड़ना मत, पढ़ती रहना। इससे सुधा समझ तो गयी थी कि वह नाराज है, लेकिन कुछ कहा नहीं।

लेकिन चन्दर को खत तो भेजना चाहिए था। चाहे गुस्से का ही खत क्यों न होता? बिना खत के मन उसका कितना घबरा रहा है और क्या चन्दर को

मालूम नहीं होगा। यह कैसे हो सकता है? जब इतनी दूर बैठे हुए सुधा को मालूम हो गया कि चन्दर नाखुश है तो क्या चन्दर को नहीं मालूम होगा कि सुधा का मन उदास हो गया है। जरूर मालूम होगा। सोचते-सोचते उसे जाने कब नींद आ गयी और नींद में उसे पापा या चन्दर की चिठ्ठी मिली या नहीं, यह तो नहीं मालूम, लेकिन इतना जरूर है कि जैसे यह सारी सृष्टि एक बिन्दु से बनी और एक बिन्दु में समा गयी, उसी तरह सुधा की यह भादों की घटाओं जैसी फैली हुई बेचैनी और गीली उदासी एक चन्दर के ध्यान से उठी और उसी में समा गयी।

दूसरे दिन सुबह सुधा आँगन में बैठी हुई आलू छील रही थी और चन्दर का इन्तजार कर रही थी। उसी दिन रात को पापा आ गये थे और दूसरे दिन सुबह बुआजी और बिनती।

'सुधी!' किसी ने इतने प्यार से पुकारा कि हवाओं में रस भर गया।

'अच्छा! आ गये चन्दर!' सुधा आलू छोडकर उठ बैठी, 'क्या लाये हमारे लिए लखनऊ से?'

'बहुत कुछ, सुधा!'

'के है सुधा!' सहसा कमरे में से कोई बोला।

'चन्दर हैं।' सुधा ने कहा, 'चन्दर, बुआ आ गयीं।' और कमरे से बुआजी बाहर आयीं।

'प्रणाम, बुआजी!' चन्दर बोला और पैर छूने के लिए झुका।

'हाँ, हाँ, हाँ!' बुआजी तीन कदम पीछे हट गयीं। 'देखत्यों नैं हम पूजा की धोती पहने हैं। ई के है, सुधा!'

सुधा ने बुआ की बात का कुछ जवाब नहीं दिया-'चन्दर, चलो अपने कमरे मेंय यहाँ बुआ पूजा करेंगी।'

चन्दर अलग हटा। बुआ ने हाथ के पंचपात्र से वहाँ पानी छिड़का और जमीन फूँकने लगीं। 'सुधा, बिनती को भेज देव।' बुआजी ने धूपदानी में महराजिन से कोयला लेते हुए कहा।

सुधा अपने कमरे में पहुँचकर चन्दर को खाट पर बिठाकर नीचे बैठ गयी।

'अरे, ऊपर बैठो।'

'नहीं, हम यहीं ठीक हैं।' कहकर वह बैठ गयी और चन्दर की पैंट पर पेन्सिल से लकीरें खींचने लगीं।

'अरे यह क्या कर रही हो?' चन्दर ने पैर उठाते हुए कहा।

'तो तुमने इतने दिन क्यों लगाये?' सुधा ने दूसरे पाँयचे पर पेन्सिल लगाते हुए कहा।

'अरे, बड़ी आफत में फँस गये थे, सुधा। लखनऊ से हम लोग गये बरेली। वहाँ एक उत्सव में हम लोग भी गये और एक मिनिस्टर भी पहुँचे। कुछ सोशलिस्ट, कम्युनिस्ट और मजदूरों ने विरोध प्रदर्शन किया। फिर तो पुलिसवालों और मजदूरों में जमकर लड़ाई हुई। वह तो कहो एक बेचारा सोशलिस्ट लड़का था कैलाश मिश्रा, उसने हम लोगों की जान बचायी, वरना पापा और हम, दोनों ही अस्पताल में होते...'

'अच्छा! पापा ने हमें कुछ बताया नहीं!' सुधा घबराकर बोली और बड़ी देर तक बरेली, उपद्रव और कैलाश मिश्रा की बात करती रही।

'अरे ये बाहर गा कौन रहा है?' चन्दर ने सहसा पूछा।

बाहर कोई गाता हुआ आ रहा था, 'आँचल में क्यों बाँध लिया मुझ परदेशी का प्यार....आँचल में क्यों...' और चन्दर को देखते ही उस लड़की ने चौंककर कहा, 'अरे?' क्षण-भर स्तब्ध और फिर शरम से लाल होकर भागी बाहर।

'अरे, भागती क्यों है? यही तो हैं चन्दर।'' सुधा ने कहा।

लड़की बाहर रुक गयी और गरदन हिलाकर इशारे से कहा, 'मैं नहीं आऊँगी। मुझे शरम लगती है।'

'अरे चली आ, देखो हम अभी पकड़ लाते हैं, बड़ी झक्की है यह।' कहकर सुधा उठी, वह फिर भागी। सुधा पीछे-पीछे भागी। थोड़ी देर बाद सुधा अन्दर आयी तो सुधा के हाथ में उस लड़की की चोटी और वह बेचारी बुरी तरह अस्त-व्यस्त थी। दाँत से अपने आँचल का छोर दबाये हुए थी बाल की तीन-चार लटें मुँह पर झुक रही थीं और लाज के मारे सिमटी जा रही थी और आँखें थीं कि मुस्काये या रोये, यह तय ही नहीं कर पायी थीं।

'देखो...चन्दर...देखो।' सुधा हाँफ रही थी-'यही है बिनती मोटकी कहीं की, इतनी मोटी है कि दम निकल गया हमारा।' सुधा बुरी तरह हाँफ रही थी।

चन्दर ने देखा-बेचारी की बुरी हालत थी। मोटी तो बहुत नहीं थी पर हाँ, गाँव की तन्दुरुस्ती थी, लाल चेहरा, जिसे शरम ने तो दूना बना दिया था। एक हाथ से अपनी चोटी पकड़े थी, दूसरे से अपने कपड़े ठीक कर रही थी और दाँत से आँचल पकड़े।

'छोड़ दो उसे, यह क्या है सुधा! बड़ी जंगली हो तुम।' चन्दर ने डाँटकर कहा।

'जंगली मैं हूँ या यह?' चोटी छोड़कर सुधा बोली-'यह देखो, दाँत काट लिया है इसने।' सचमुच सुधा के कन्धे पर दाँत के निशान बने हुए थे।

चन्दर इस सम्भावना पर बेतहाशा हँसने लगा कि इतनी बड़ी लड़की दाँत काट सकती है-'क्यों जी, इतनी बड़ी हो गयी और दाँत काटती हो?' उसकी हँसी रुक नहीं रही थी। 'सचमुच यह तो बड़े मजे की लड़की है। बिनती है इसका नाम? क्यों रे, महुआ बीनती थी क्या वहाँ, जो बुआजी ने बिनती नाम रखा है?'

वह पल्ला ठीक से ओढ़ चुकी थी। बोली, 'नमस्ते।'

चन्दर और सुधा दोनों हँस पड़े। 'अब इतनी देर बाद याद आयी।' चन्दर और भी हँसने लगा।

'बिनती! ए बिनती!' बुआ की आवाज आयी। बिनती ने सुधा की ओर देखा और चली गयी।

'और कहो सुधी,' चन्दर बोला-'क्या हाल-चाल रहा यहाँ?'

'फिर भी एक चिठ्ठी भी तो नहीं लिखी तुमने।' सुधा बड़ी शिकायत के स्वर में बोली, 'हमें रोज रुलाई आती थी और तुम्हारी वो आयी थी।'

'हमारी वो?' चन्दर ने चौंककर पूछा।

'अरे हाँ, तुम्हारी पम्मी रानी।'

'अच्छा वो आयी थीं। क्या बात हुई?'

'कुछ नहीं, तुम्हारी तसवीर देख-देखकर रो रही थीं।' सुधा ने उँगलियाँ नचाते हुए कहा।

'मेरी तसवीर देखकर! अच्छा और थी कहाँ मेरी तसवीर?'

'अब तुम तो बहस करने लगे, हम कोई वकील हैं! तुम कोई नयी बात बताओ।' सुधा बोली।

'हम तो तुम्हें बहुत-बहुत बात बताएँगे। पूरी कहानी है।'

इतने में बिनती आयी। उसके हाथ में एक तश्तरी थी और एक गिलास। तश्तरी में कुछ मिठाई थी और गिलास में शरबत। उसने लाकर तश्तरी चन्दर के सामने रख दी।

'ना भई, हम नहीं खाएँगे।' चन्दर ने इनकार किया।

बिनती ने सुधा की ओर देखा।

'खा लो। लगे नखरा करने। लखनऊ से आ रहे हैं न, तकल्लुफ न करें तो मालूम कैसे हो?' सुधा ने मुँह चिढ़ाते हुए कहा। चन्दर मुसकराकर खाने लगा।

'दीदी के कहने पर खाने लगे आप!' बिनती ने अपने हाथ की अँगूठी की ओर देखते हुए कहा।

चन्दर हँस दिया, कुछ बोला नहीं। बिनती चली गयी।

'बड़ी अच्छी लड़की मालूम पड़ती है यह।'' चन्दर बोला।

'बहुत प्यारी है और पढ़ने में हमारी तरह नहीं है, बहुत तेज है।'

'अच्छा! तुम्हारी पढ़ाई कैसी चल रही है?'

'मास्टर साहब बहुत अच्छा पढ़ाते हैं और चन्दर, अब हम खूब बात करते हैं उनसे दुनिया-भर की और वे बस हमेशा सिर नीचे किये रहते हैं। एक दिन पढ़ते वक्त हम गरी पास में रखकर खाते गये, उन्हें मालूम ही नहीं हुआ। उनसे एक दिन कविता सुनवा दो।' सुधा बोली।

चन्दर ने कुछ जवाब नहीं दिया और डॉ. साहब के कमरे में जाकर किताबें उलटने लगा।

इतने में बुआजी का तेज स्वर आया-'हमें मालूम होता कि ई मुँह-झौंसी हमके ऐसी नाच नचइहै तौ हम पैदा होतै गला घोंट देइत। हरे राम! अक्काश सिर पर उठाये है। कै घंटे से नरियात-नरियात गटई फट गयी। ई बोलतै नाहीं जैसे साँप सूँघ गवा होय।'

प्रोफेसर शुक्ला के घर में वह नया सांस्कृतिक तत्त्व था। कितनी शालीनता और शिष्टता से वह रहते थे। कभी इस तरह की भाषा भी उनके घर में सुनने को मिलेगी, इसकी चन्दर को जरा भी उम्मीद न थी। चन्दर चौंककर उधर देखने लगा। डॉ. शुक्ला समझ गये। कुछ लज्जित-से और मुसकराकर ग्लानि छिपाते हुए-से बोले, 'मेरी विधवा बहन है, कल गाँव से आयी है लड़की को पहुँचाने।'

उसके बाद कुछ पटकने का स्वर आया, शायद किसी बरतन के। इतने में सुधा आयी, गुस्से से लाल-'सुना पापा तुमने, बुआ बिनती को मार डालेंगी।'

'क्या हुआ आखिर?' डॉ. शुक्ला ने पूछा।

'कुछ नहीं, बिनती ने पूजा का पंचपात्र उठाकर ठाकुरजी के सिंहासन के पीछे रख दिया था। उन्हें दिखाई नहीं पड़ा, तो गुस्सा बिनती पर उतार रही हैं।'

इतने में फिर उनकी आवाज आयी-'पैदा करते बखत बहुत अच्छा लाग रहा, पालत बखत टें बोल गये। मर गये रह्यो तो आपन सन्तानौ अपने साथ लै जात्यौ। हमारे मूड़ पर ई हत्या काहे डाल गयौ। ऐसी कुलच्छनी है कि पैदा होतेहिन बाप को खाय गयी।'

'सुना पापा तुमने?'

'चलो हम चलते हैं।' डॉ. शुक्ला ने कहा। सुधा वहीं रह गयी। चन्दर से बोली, 'ऐसा बुरा स्वभाव है बुआ का कि बस। बिनती ऐसी है कि इतना बर्दाश्त कर लेती है।'

बुआ ने ठाकुरजी का सिंहासन साफ करते हुए कहा, 'रोवत काहे हो, कौन तुम्हारे माई-बाप को गरियावा है कि ई अँसुआ ढरकाय रही हो। ई सब चोचला अपने ओ को दिखाओ जायके। दुई महीना और हैं-अबहिन से उधियानी न जाओ।'

अब अभद्रता सीमा पार कर चुकी थी।

'बिनती, चलो कमरे के अन्दर, हटो सामने से।' डॉ. शुक्ला ने डाँटकर कहा, 'अब ये चरखा बन्द होगा या नहीं। कुछ शरम-हया है या नहीं तुममें?'

बिनती सिसकते हुए अन्दर गयी। स्टडी रूम में देखा कि चन्दर है तो उलटे पाँव लौट आयी सुधा के कमरे में और फूट-फूटकर रोने लगी।

डॉ. शुक्ला लौट आये-'अब हम ये सब करें कि अपना काम करें! अच्छा कल से घर में महाभारत मचा रखा है। कब जाएँगी ये, सुधा?'

'कल जाएँगी। पापा अब बिनती को कभी मत भेजना इनके पास।'' सुधा ने गुस्सा-भरे स्वर में कहा।

'अच्छा-जाओ, हमारा खाना परसो। चन्दर, तुम अपना काम यहाँ करो। यहाँ शोर ज्यादा हो तो तुम लाइब्रेरी में चले जाना। आज भर की तकलीफ है।'

चन्दर ने अपनी कुछ किताबें उठायीं और उसने चला जाना ही ठीक समझा। सुधा खाना परोसने चली गयी। बिनती रो-रोकर और तकिये पर सिर पटककर अपनी कुंठा और दु:ख उतार रही थी। बुआ घंटी बजा रही थीं, दबी जबान जाने क्या बकती जा रही थीं, यह घंटी के भक्ति-भावना-भरे मधुर स्वर में सुनायी नहीं देता था।

लेकिन बुआजी दूसरे दिन गयीं नहीं। जब तीन-चार दिन बाद चन्दर गया तो देखा बाहर के सेहन में डॉ. शुक्ला बैठे हुए हैं और दरवाजा पकड़कर बुआजी खड़ी बातें कर रही हैं। लेकिन इस वक्त बुआजी काफी गम्भीर थीं और किसी विषय पर मन्त्रणा कर रही थीं। चन्दर के पास पहुँचने पर फौरन वे चुप हो गयीं और चन्दर की ओर सशंकित नेत्रों से देखने लगीं। डॉ. शुक्ला बोले, 'आओ चन्दर, बैठो।' चन्दर बगल की कुर्सी खींचकर बैठ गया तो डॉ. साहब बुआजी

से बोले, 'हाँ, हाँ, बात करो, अरे ये तो घर के आदमी हैं। इनके बारे में सुधा ने नहीं बताया तुम्हें? ये चन्दर हैं हमारे शिष्य, बहुत अच्छा लड़का है।'

'अच्छा, अच्छा, भइया बइठो, तू तो एक दिन अउर आये रह्यो, बी. ए. में पढ़त हौ सुधा के संगे।'

'नहीं बुआजी, मैं रिसर्च कर रहा हूँ।'

'वाह, बहुत खुशी भई तोको देख के-हाँ तो सुकुल!' वे अपने भाई से बोलीं, 'फिर यही ठीक होई। बिनती का बियाह टाल देव और अगर ई लड़का ठीक हुई जाय तो सुधा का बियाह अषाढ़-भर में निपटाय देव। अब अच्छा नाहीं लागत। ठूँठ ऐसी बिटिया, सूनी माँग लिये छररावा करत है एहर-ओहर!' बुआ बोलीं।

'हाँ, ये तो ठीक है।' डॉ. शुक्ला बोले, 'मैं खुद सुधा का ब्याह अब टालना नहीं चाहता। बी.ए. तक की शिक्षा काफी है वरना फिर हमारी जाति में तो लड़के नहीं मिलते। लेकिन ये जो लड़का तुम बता रही हो तो घर वाले कुछ एतराज तो नहीं करेंगे! और फिर, लड़का तो हमें अच्छा लगा लेकिन घरवाले पता नहीं कैसे हों?'

'अरे तो घरवालन से का करै का है तोको। लड़कातो अलग है, अपने-आप पढ़ रहा है और लड़की अलग रहिए, न सास का डर, न ननद की धौंस। हम पत्री मँगवाये देइत ही, मिलवाय लेव।'

डॉ. शुक्ला ने स्वीकृति में सिर हिला दिया।

'तो फिर बिनती के बारे में का कहत हौ? अगहन तक टाल दिया जाय न?' बुआजी ने पूछा।

'हाँ हाँ,' डॉ. शुक्ला ने विचार में डूबे हुए कहा।

'तो फिर तुम ही इन जूतापिटऊ, बड़नक्कू से कह दियौय आय के कल से हमरी छाती पर मूँग दलत हैं।' बुआजी ने चन्दर की ओर किसी को निर्देशित करते हुए कहा और चली गयीं।

चन्दर चुपचाप बैठा था। जाने क्या सोच रहा था। शायद कुछ भी नहीं सोच रहा था! मगर फिर भी अपनी विचार-शून्यता में ही खोया हुआ-सा था। जब डॉ. शुक्ला उसकी ओर मुड़े और कहा, 'चन्दर!' तो वह एकदम से चौंक गया और जाने किस दुनिया से लौट आया। डॉ. साहब ने कहा, 'अरे! तुम्हारी तबीयत खराब है क्या?'

'नहीं तो।' एक फीकी हँसी हँसकर चन्दर ने कहा।

'तो मेहनत बहुत कर रहे होगे। कितने अध्याय लिखे अपनी थीसिस के? अब मार्च खत्म हो रहा है और पूरा अप्रैल तुम्हें थीसिस टाइप कराने में लगेगा और मई में हर हालत में जमा हो जानी चाहिए।'

'जी, हाँ।' बड़े थके स्वर में चन्दर ने कहा, 'दस अध्याय हो ही गये हैं। तीन अध्याय और होने हैं और अनुक्रमणिका बनानी है। अप्रैल के पहले सप्ताह तक खत्म हो ही जायेगा। अब सिवा थीसिस के और करना ही क्या है?' एक बहुत गहरी साँस लेते हुए चन्दर ने कहा और माथा थामकर बैठ गया।

'कुछ तबीयत ठीक नहीं है तुम्हारी। चाय बनवा लो! लेकिन सुधा तो है नहीं, न महराजिन है।' डॉक्टर साहब बोले।

अरे सुधा, सुधा के नाम पर चन्दर चौंक गया। हाँ, अभी वह सुधा के ही बारे में सोच रहा था, जब बुआजी बात कर रही थीं। क्या सोच रहा था। देखो. ..उसने याद करने की कोशिश की पर कुछ याद ही नहीं आ रहा था, पता नहीं क्या सोच रहा था। पता नहीं था।..कुछ सुधा के ब्याह की बात हो रही थी शायद। क्या बात हो रही थी...?

'कहाँ गयी है सुधा?' चन्दर ने पूछा।

'आज शायद साबिर साहब के यहाँ गयी है। उनकी लड़की उनके साथ पढ़ती है न, वहीं गयी है बिनती के साथ।'

'अब इम्तहान को कितने दिन रह गये हैं, अभी घूमना बन्द नहीं हुआ उनका?'

'नहीं, दिन-भर पढ़ने के बाद उठी थी, उसके भी सिर में दर्द था, चली गयी। घूम-फिर लेने दो बेचारी को, अब तो जा ही रही है।' डॉ. शुक्ला बोले, एक हँसी के साथ जिसमें आँसू छलके पड़ते थे।

'कहाँ तय हो रही है सुधा की शादी?'

'बरेली में। अब उसकी बुआ ने बताया है। जन्मपत्री दी है मिलवा लो, फिर तुम जरा सब बातें देख लेना। तुम तो थीसिस में व्यस्त रहोगे, मैं जाकर लड़का देख आऊँगा। फिर मई के बाद जुलाई तक सुधा का ब्याह कर देंगे। तुम्हें डॉक्टरेट मिल जाए और यूनिवर्सिटी में जगह मिल जाए। बस हम तो लड़का-लड़की दोनों से फारिग।' डॉ. शुक्ला बहुत अजब-से स्वरों में बोले।

चन्दर चुप रहा।

'बिनती को देखा तुमने?' थोड़ी देर बाद डॉक्टर ने पूछा।

'हाँ, वही न जिनको डाँट रही थीं ये उस दिन?'

'हाँ, वही। उसके ससुर आये हुए हैं, उनसे कहना है कि अब शादी अगहन-पूस के लिए टाल दें। पहले सुधा की हो जाए, वह बड़ी है और हम चाहते हैं कि बिनती को तब तक विदुषी का दूसरा खंड भी दिला दें। आओ, उनसे बात कर लें अभी।' डॉ. शुक्ला उठे। चन्दर भी उठा।

और उसने अन्दर जाकर बिनती के ससुर के दिव्य दर्शन प्राप्त किये। वे एक पलँग पर बैठे थे, लेकिन वह अभागा पलँग उनके उदर के ही लिए नाकाफी था। वे चित पड़े थे और साँस लेते थे तो पुराणों की उस कथा का प्रदर्शन हो जाता था कि धीरे-धीरे पृथ्वी का गोला वाराह के मुँह पर कैसे ऊपर उठा होगा। सिर पर छोटे-छोटे बाल और कमर में एक अँगोछे के अलावा सारा शरीर दिगम्बर। सुबह शायद गंगा नहाकर आये थे क्योंकि पेट तक में चन्दन, रोली लगी हुई थी।

डॉ. शुक्ला जाकर बगल में कुर्सी पर बैठ गयेय 'कहिए दुबेजी, कुछ जलपान किया आपने?'

पलंग चरमराया। उस विशाल मांस-पिंड में एक भूडोल आया और दुबेजी जलपान की याद करके गद्‌गद होकर हँसने लगे। एक थलथलाहट हुई और कमरे की दीवारें गिरते-गिरते बचीं। दुबेजी ने उठकर बैठने की कोशिश की लेकिन असफल होकर लेटे-ही-लेटे कहा, 'हो-हो! सब आपकी कृपा है। खूब छकके मिष्टान्न पाया। अब जरा सरबत-उरबत कुछ मिलै तो जो कुछ पेट में जलन है, सो शान्त होय!' उन्होंने पेट पर अपना हाथ फेरते हुए कहा।

'अच्छा, अरे भाई जरा शरबत बना देना।' डॉ. शुक्ला ने दरवाजे की ओट में खड़ी हुई बुआजी से कहा। बुआजी की आवाज सुनाई पड़ी, 'बाप रे! ई ढाई मन की लहास कम-से-कम मसक-भर के शरबत तो उलीचौ लैईहैं।' चन्दर को हँसी आ गयी, डॉ. शुक्ला मुसकराने लगे लेकिन दुबेजी के दिव्य मुखमंडल पर कहीं क्षोभ या उल्लास की रेखा तक न आयी। चन्दर मन-ही-मन सोचने लगा, प्राचीन काल के ब्रह्मानन्द सिद्ध महात्मा ऐसे ही होते होंगे।

बुआ एक गिलास में शरबत ले आयीं। दुबेजी काँख-काँखकर उठे और एक साँस में शरबत गले से नीचे उतारकर, गिलास नीचे रख दिया।

'दुबेजी, एक प्रार्थना है आपसे!' डॉ. शुक्ला ने हाथ जोडकर बड़े विनीत स्वर में कहा।

'नहीं! नहीं!' बात काटकर दुबेजी बोले, 'बस अब हम कुछ न खावैं। आप बहुत सत्कार किये। हम एही से छक गये। आपको देखके तो हमें बड़ी प्रसन्नता भई। आप सचमुच दिव्य पुरुष हौ! और फिर आप तो लड़की के मामा हो और बियाह-शादी में जो है सो मामा का पक्ष देखा जाता है। ई तो भगवान् ऐसा जोड़ मिलाइन हैं कि वरपक्ष अउर कन्यापक्ष दुइन के मामा बड़े ज्ञानी हैं। आप हैं तौन कालिज में पुरफेसर और ओहर हमार सार-लड़काकेर मामा जौन हैं तौन डाकघर में मुंशी हैं, आपकी किरपा से।' दुबेजी ने गर्व से कहा। चन्दर मुसकराने लगा।

'अरे सो तो आपकी नम्रता है, लेकिन मैं सोच रहा हूँ कि गरमियों में अगर ब्याह न रखकर जाड़े में रखा जाए तो ज्यादा अच्छा होगा। तब तक आपके सत्कार की हम कुछ तैयारी भी कर लेंगे।' डॉ. शुक्ला बोले।

दुबेजी इसके लिए तैयार नहीं थे। वे बड़े अचरज में भरकर उनकी ओर देखने लगे। लेकिन बहुत कहने-सुनने के बाद अन्त में वे इस शर्त पर राजी हुए कि अगहन तक हर तीज-त्यौहार पर लड़के के लिए कुरता-धोती का कपड़ा और ग्यारह-बारह रुपये नजराना जाएगा और अगहन में अगर ब्याह हो रहा है तो सास-ननद और जिठानी के लिए गरम साड़ी जाएगी और जब-जब दुबेजी गंगा नहाने प्रयागराज आएँगे तो उनका रोचना एक थाल, कपड़े और एक स्वर्णमण्डित जौ से होगा। जब डॉ. शुक्ला ने यह स्वीकार कर लिया तो दुबेजी ने उठकर अपना झालम-झोला कुरता गले में अटकाया और अपनी गठरी हाथ में उठाकर बोले-

'अच्छा तो अब आज्ञा देव, हम चली अब और ई रुपिया लड़की को दै दियो, अब बात पक्की है।'' और अपनी टेंट से उन्होंने एक मुड़ा-मुड़ाया तेल लगा हुआ पाँच रुपये का नोट निकाला और डॉ. साहब को दे दिया।

'चन्दर एक ताँगा कर दो, दुबेजी को। अच्छा, आओ हम भी चलें।'

जब ये लोग लौटे तो बुआजी एक थैली से कुछ धर-निकाल रही थीं। डॉ. शुक्ला ने नोट बुआजी को देते हुए कहा, 'लो, ये दे गये तुम्हारे समधी जी, लड़की को।'

पाँच का नोट देखा तो बुआजी सुलग उठीं-'न गहना न गुरिया, बियाह पक्का कर गये ई कागज के टुकड़े से। अपना-आप तो सोना और रुपिया और कपड़ा सब लीलै को तैयार और देत के दाँई पेट पिराता है जूता-पिटऊ का। अरे राम चाही तो जमदूत ई लहास की बोटी-बोटी करके रामजी के कुत्तन को खिलइहैं।'

चन्दर हँसी के मारे पागल हो गया।

बुआजी ने थैली का मुँह बाँधा और बोलीं, 'अबहिन तक बिनती का पता नै और ऊ तुरकन-मलेच्छन के हियाँ कुछ खा-पी लिहिस तो फिर हमरे हियाँ गुजारा नाहि ना ओका। बड़ी आजाद हुई गयी है सुधा की सह पाय के। आवै देव, आज हम भद्रा उतारित ही।'

डॉ. शुक्ला अपने कमरे में चले गये। चन्दर को प्यास लगी थी। उसने बुआजी से एक गिलास पानी माँगा। बुआ ने एक गिलास में पानी दिया और बोलीं, 'बैठ के पियो बेटाय बैठ के। कुछ खाय का देई?'

'नहीं, बुआजी!' बुआ बैठकर हँसिया से कटहल छीलने लगीं और चन्दर पानी पीता हुआ सोचने लगा, बुआजी सभी से इतनी मीठी बात करती हैं तो आखिर बिनती से ही इतनी कटु क्यों हैं?

इतने में अन्दर चप्पलों की आहट सुनाई पड़ी। चन्दर ने देखा, सुधा और बिनती आ गयी थीं। सुधा अपनी चप्पल उतारकर अपने कमरे में चली गयी और बिनती आँगन में आयी। बुआजी के पास आकर बोली, 'लाओ, हम तरकारी काट दें।'

'चल हट ओहर। पहिले नहाव जाय के। कुछ खाय तो नै रहयो। एत्ती देर कहाँ घूमति रहयो ? हम खूब अच्छी तरह जानित ही तूँ हमार नाक कटाइन के रहबो। पतुरियन के ढँग सीखे हैं!'

बिनती चुप। एक तीखी वेदना का भाव उसके मुँह पर आया। उसने आँखें झुका लीं। रोयी नहीं और चुपचाप सिर झुकाये हुए सुधा के कमरे में चली गयी।

चन्दर क्षण-भर खड़ा रहा। फिर सुधा के पास गया। सुधा के कमरे में अकेले बिनती खाट पर पड़ी थी-औंधे मुँह, तकिया में मुँह छिपाये। चन्दर को जाने कैसा लगा। उसके मन में बेहद तरस आ रहा था इस बेचारी लड़की के लिए, जिसके पिता हैं ही नहीं और जिसे प्रताड़ना के सिवा कुछ नहीं मिला। चन्दर को बहुत ही ममता लग रही थी इस अभागिनी के लिए। वह सोचने लगा, कितना अन्तर है दोनों बहनों में। एक बचपन से ही कितने असीम दुलार, वैभव और स्नेह में पली है और दूसरी प्रताड़ना और कितने अपमान में पली और वह भी अपनी ही सगी माँ से जो दुनिया भर के प्रति स्नेहमयी है, अपनी लड़की को छोड़कर।

वह कुर्सी पर बैठकर चुपचाप यही सोचने लगा-अब आगे भी इस बेचारी को क्या सुख मिलेगा। ससुराल कैसी है, यह तो ससुर को देखकर ही मालूम देता है।

इतने में सुधा कपड़े बदलकर हाथ में किताब लिये, उसे पढ़ती हुई, उसी में डूबी हुई आयी और खाट पर बैठ गयी। 'अरे! बिनती! कैसे पड़ी हो? अच्छा तुम हो चन्दर! बिनती! उठो!' उसने बिनती की पीठ पर हाथ रखकर कहा।

बिनती, जो अभी तक निचेष्ट पड़ी थी, सुधा के ममता-भरे स्पर्श पर फूट-फूटकर रो पड़ी। तो सुधा ने चन्दर से कहा, 'क्या हुआ बिनती रानी को।' और बिनती भी जोरों से सिसकियाँ भरने लगी तो सुधा ने चन्दर से कहा, 'कुछ तुमने कहा होगा। चौदह दिन बाद आये और आते ही लगे रुलाने उसे। कुछ कहा होगा तुमने! समझ गये। घूमने के लिए उसे भी डाँटा होगा। हम साफ-साफ बताये देते हैं चन्दर, हम तुम्हारी डाँट सह लेते हैं इसके ये मतलब नहीं कि अब तुम इस बेचारी पर भी रोब झाडने लगो। इससे कभी कुछ कहा तो अच्छी बात नहीं होगी!'

'तुम्हारे दिमाग का कोई पुरजा ढीला हो गया है क्या? मैं क्यों कहूँगा बिनती को कुछ!'

'बस फिर यही बात तुम्हारी बुरी लगती है।' सुधा बिगड़कर बोली, 'क्यों नहीं कहोगे बिनती को कुछ? जब हमें कहते हो तो उसे क्यों नहीं कहोगे? हम तुम्हारे अपने हैं तो क्या वो तुम्हारी अपनी नहीं है?'

चन्दर हँस पड़ा-'सो क्यों नहीं है, लेकिन तुम्हारे साथ न ऐसे निबाह, न वैसे निबाह।'

'ये सब कुछ हम नहीं जानते! क्यों रो रही है यह?' सुधा बोली धमकी के स्वर में।

'बुआजी ने कुछ कहा था।' चन्दर बोला।

'अरे तो उसके लिए क्या रोना! इतना समझाया तुझे कि उनकी तो आदत है। हँसकर टाल दिया कर। चल उठ! हँसती है कि गुदगुदाऊँ।' सुधा ने गुदगुदाते हुए कहा। बिनती ने उसका हाथ पकडकर झटक दिया और फिर सिसकियाँ भरने लगी।

'नहीं मानेगी तू?' सुधा बोली, 'अभी ठीक करती हूँ तुझे मैं। चन्दर, पकड़ो तो इसका हाथ।'

चन्दर चुप रहा।

'नहीं उठे। उठो, तुम इसका हाथ पकड़ लो तो हम अभी इसे हँसाते हैं।' सुधा ने चन्दर का हाथ पकड़कर बिनती की ओर बढ़ते हुए कहा। चन्दर ने अपना

हाथ खींच लिया और बोला, 'वह तो रो रही है और तुम बजाय समझाने के उसे परेशान कर रही हो।'

'अरे जानते हो, क्यों रो रही है? अभी इसके ससुर आये थे, वो बहुत मोटे थे तो ये सोच रही है कहीं 'वो' भी मोटे हों!' सुधा ने फिर उसकी गरदन गुदगुदाकर कहा।

बिनती हँस पड़ी। सुधा उछल पड़ी–'लो, ये तो हँस पड़ी, अब रोओगी?' अब फिर सुधा ने गुदगुदाना शुरू किया। बिनती पहले तो हँसी से लोट गयी फिर पल्ला सँभालते हुए बोली, 'छिह, दीदी! वो बैठे हैं कि नहीं!' और उठकर बाहर जाने लगी।

'कहाँ चली?' सुधा ने पूछा।

'जा रही हूँ नहाने।' बिनती पल्लू से सिर ढँकते हुए चल दी।

'क्यों, मैंने तेरा बदन छू दिया इसलिए?' सुधा हँसकर बोली, 'ऐ चन्दर, वो गेसू का छोटा भाई है न–हसरत, मैंने उसे छू लिया तो फौरन उसने जाकर अपना मुँह साबुन से धोया और अम्मीजान से बोला, 'मेरा मुँह जूठा हो गया।'' और आज हमने गेसू के अख्तर मियाँ को देखा। बड़े मजे के हैं। मैं तो गेसू से बात करती रही लेकिन बिनती और फूल ने बहुत छेड़ा उन्हें। बेचारे घबरा गये। फूल बहुत चुलबुली है और बड़ी नाजुक है। बड़ी बोलने वाली है और बिनती और फूल का खूब जोड़ मिला। दोनों खूब गाती हैं।'

'बिनती गाती भी है?' चन्दर ने पूछा, 'हमने तो रोते ही देखा।'

'अरे बहुत अच्छा गाती है। इसने एक गाँव का गाना बहुत अच्छा गाया था।. ..अरे देखो वह सब बताने में हम तुम पर गुस्सा होना तो भूल ही गये। कहाँ रहे चार रोज? बोलो, बताओ जल्दी से।'

'व्यस्त थे सुधा, अब थीसिस तीन हिस्सा लिख गयी। इधर हम लगातार पाँच घंटे से बैठकर लिखते थे!' चन्दर बोला।

'पाँच घंटे!'' सुधा बोली, 'दूध आजकल पीते हो कि नहीं?'

'हाँ–हाँ, तीन गायें खरीद ली हैं...।' चन्दर बोला।

'नहीं, मजाक नहीं, कुछ खाते–पीते रहना, कहीं तबीयत खराब हुई तो अब हमारा इम्तहान है, पड़े–पड़े मक्खी मारोगे और अब हम देखने भी नहीं आ सकेंगे।'

'अब कितना कोर्स बाकी है तुम्हारा?'

'कोर्स तो खत्म था हमारा। कुछ कठिनाइयाँ थीं सो पिछले दो-तीन हफ्ते में मास्टर साहब ने बता दी थीं। अब दोहराना है। लेकिन बिनती का इम्तहान मई में है, उसे भी तो पढ़ाना है।'

'अच्छा, अब चलें हम।'

'अरे बैठो! फिर जाने कै दिन बाद आओगे। आज बुआ तो चली जाएँगी फिर कल से यहीं पढ़ो न। तुमने बिनती के ससुर को देखा था?'

'हाँ, देखा था!' चन्दर उनकी रूपरेखा याद करके हँस पड़ा-'बाप रे! पूरे टैंक थे वे तो।'

'बिनती की ननद से तुम्हारा ब्याह करवा दें। करोगे?' सुधा बोली, 'लड़की इतनी ही मोटी है। उसे कभी डाँट लेना तो देखेंगे तुम्हारी हिम्मत।'

ब्याह! एकदम से चन्दर को याद आ गया। अभी बुआ ने बात की थी सुधा के ब्याह की। तब उसे कैसा लगा था? कैसा लगा था? उसका दिमाग घूम गया था। लगा जैसे एक असहनीय दर्द था या क्या था-जो उसकी नस-नस को तोड़ गया। एकदम...।

'क्या हुआ, चन्दर? अरे चुप क्यों हो गये? डर गये मोटी लड़की के नाम से?' सुधा ने चन्दर का कन्धा पकड़कर झकझोरते हुए कहा।

चन्दर एक फीकी हँसी हँसकर रह गया और चुपचाप सुधा की ओर देखने लगा। सुधा चन्दर की निगाह से सहम गयी। चन्दर की निगाह में जाने क्या था, एक अजब-सा पथराया सूनापन, एक जाने किस दर्द की अमंगल छाया, एक जाने किस पीड़ा की मूक आवाज, एक जाने कैसी पिघलती हुई-सी उदासी और वह भी गहरी, जाने कितनी गहरी...और चन्दर था कि एकटक देखता जा रहा था, एकटक अपलक...।

सुधा को जाने कैसा लगा। ये अपना चन्दर तो नहीं, ये अपने चन्दर की निगाह तो नहीं है। चन्दर तो ऐसी निगाह से, इस तरह अपलक तो सुधा को कभी नहीं देखता था। नहीं, यह चन्दर की निगाह तो नहीं। इस निगाह में न शरारत है, न डाँट न दुलार और न करुणा। इसमें कुछ ऐसा है जिससे सुधा बिल्कुल परिचित नहीं, जो आज चन्दर में पहली बार दिखाई पड़ रहा है। सुधा को जैसा डर लगने लगा, जैसे वह काँप उठी। नहीं, यह कोई दूसरा चन्दर है, जो उसे इस तरह देख रहा है। यह कोई अपरिचित है, कोई अजनबी, किसी दूसरे देश का कोई व्यक्ति जो सुधा को...

'चन्दर, चन्दर! तुम्हें क्या हो गया!' सुधा की आवाज मारे डर के काँप रही थी, उसका मुँह पीला पड़ गया, उसकी साँस बैठने लगी थी-'चन्दर...श' और जब उसका कुछ बस न चला तो उसकी आँखों में आँसू छलक आये।

हाथों पर एक गरम-गरम बूँद आकर पड़ते ही चन्दर चौंक गया। 'अरे सुधी! रोओ मत। नहीं पगली। हमारी तबीयत कुछ ठीक नहीं है, एक गिलास पानी तो ले आओ।'

सुधा अब भी काँप रही थी। चन्दर की आवाज में अभी भी वह मुलायमियत नहीं आ पायी थी। वह पानी लाने के लिए उठी।

'नहीं, तुम कहीं जाओ मत, तुम बैठो यहीं।' उसने उसकी हथेली अपने माथे पर रखकर जोर से अपने हाथों में दबा ली और कहा, 'सुधा!...'

'क्यों, चन्दर!'

'कुछ नहीं!' चन्दर ने आवाज दी लेकिन लगता था वह आवाज चन्दर की नहीं थी। न जाने कहाँ से आ रही थी...

'क्या सिर में दर्द है? बिनती, एक गिलास पानी लाओ जल्दी से।'

सुधा ने आवाज दी। चन्दर जैसे पहले-सा हो गया-'अरे! अभी मुझे क्या हो गया था? तुम क्या बात कर रही थीं सुधा?'

'पता नहीं तुम्हें अभी क्या हो गया था?' सुधा ने घबरायी हुई गौरेया की तरह सहमकर कहा।

चन्दर स्वस्थ हो गया-'कुछ नहीं सुधा! मैं ठीक हूँ। मैं तो यूँ ही तुम्हें परेशान करने के लिए चुप था।' उसने हँसकर कहा।

'हाँ, चलो रहने दो। तुम्हारे सिर में दर्द है जरूर से।' सुधा बोली। बिनती पानी लेकर आ गयी थी।

'लो, पानी पियो!'

'नहीं, हमें कुछ नहीं चाहिए।' चन्दर बोला।

'बिनती, जरा पेनबाम ले जाओ।' सुधा ने गिलास जबर्दस्ती उसके मुँह से लगाते हुए कहा। बिनती पेनबाम ले आयी थी-'बिनती, तू जरा लगा दे इनके। अरे खड़ी क्यों है? कुर्सी के पीछे खड़ी होकर माथे पर जरा हल्की उँगली से लगा दे।'

बिनती आज्ञाकारी लड़की की तरह आगे बढ़ी, लेकिन फिर हिचक गयी। किसी अजनबी लड़के के माथे पर कैसे पेनबाम लगा दे। 'चलती है या अभी

काट के गाड़ देंगे यहीं। मोटकी कहीं की! खा-खाकर मुटानी है। जरा-सा काम नहीं होता।'

बिनती ने हारकर पेनबाम लगाया। चन्दर ने उसका हाथ हटा दिया तो सुधा ने बिनती के हाथ से पेनबाम लेकर कहा, 'आओ, हम लगा दें।' बिनती पेनबाम देकर चली गयी तो चन्दर बोला, 'अब बताओ, क्या बात कर रही थीं? हाँ, बिनती के ब्याह की। ये उनके ससुर तो बहुत ही भद्दे मालूम पड़ रहे थे। क्या देखकर ब्याह कर रही हो तुम लोग?'

'पता नहीं क्या देखकर ब्याह कर रही हैं बुआ। असल में बुआ पता नहीं क्यों बिनती से इतनी चिढ़ती हैं, वह तो चाहती हैं किसी तरह से बोझ टले सिर से। लेकिन चन्दर, यह बिनती बड़ी खुश है। यह तो चाहती है किसी तरह जल्दी से ब्याह हो!' सुधा मुसकराती हुई बोली।

'अच्छा, यह खुद ब्याह करना चाहती है!' चन्दर ने ताज्जुब से पूछा।

'और क्या? अपने ससुर की खूब सेवा कर रही थी सुबह। बल्कि पापा तो कह रहे थे कि अभी यह बी.ए. कर ले तब ब्याह करो। हमसे पापा ने कहा इससे पूछने को। हमने पूछा तो कहने लगी बी.ए. करके भी वही करना होगा तो बेकार टालने से क्या फायदा। फिर पापा हमसे बोले कि कुछ वजहों से अगहन में ब्याह होगा, तो बड़े ताज्जुब से बोली, 'अगहन में?'

'सुधी, तुम जानती हो अगहन में उसका ब्याह क्यों टल रहा है? पहले तुम्हारा ब्याह होगा।' चन्दर हँसकर बोला। वह पूर्णतया शान्त था और उसके स्वर में कम-से-कम बाहर सिवा चुहल के और कुछ भी न था।

'मेरा ब्याह, मेरा ब्याह!' आँखें फाडकर, मुँह फैलाकर, हाथ नचाकर, कौतूहल-भरे आश्चर्य से सुधा ने कहा और फिर हँस पड़ी, खूब हँसी-'कौन करेगा मेरा ब्याह? बुआ? पापा करने ही नहीं देंगे। हमारे बिना पापा का काम ही नहीं चलेगा और बाबूसाहब, तुम किस पर आकर रंग जमाओगे? ब्याह मेरा। हूँ!' सुधा ने मुँह बिचकाकर उपेक्षा से कहा।

'नहीं सुधा, मैं गम्भीरता से कह रहा हूँ। तीन-चार महीने के अन्दर तुम्हारा ब्याह हो जाएगा।' चन्दर उसे विश्वास दिलाते हुए बोला।

'अरे जाओ!' सुधा ने हँसते हुए कहा, 'ऐसे हम तुम्हारे बनाने में आ जाएँ तो हो चुका।'

'अच्छा जाने दो। तुम्हारे पास कोई पोस्टकार्ड है? लाओ जरा इस कॉमरेड को एक चिठ्ठी तो लिख दें।' चन्दर बात बदलकर बोला। पता नहीं क्यों इस विषय की बात के चलने में उसे कैसा लगता था।

'कौन कामरेड?' सुधा ने पूछा, 'तुम भी कम्युनिस्ट हो गये क्या?'

'नहीं, जी, वो बरेली का सोशलिस्ट लड़का कैलाश जिसने झगड़े में हम लोगों की जान बचायी थी। हमने तुम्हें बताया नहीं था सब किस्सा उस झगड़े का, जब हम और पापा बाहर गये थे!'

'हाँ-हाँ, बताया था। उसे जरूर खत लिख दो!' सुधा ने पोस्टकार्ड देते हुए कहा, 'तुम्हें पता मालूम है?'

चन्दर जब पोस्टकार्ड लिख रहा था तो सुधा ने कहा, 'सुनो, उसे लिख देना कि पापा की सुधा, पापा की जान बचाने के एवज में आपकी बहुत कृतज्ञ है और कभी अगर हो सके तो आप इलाहाबाद जरूर आएँ!...लिख दिया?'

'हाँ!' चन्दर ने पोस्टकार्ड जेब में रखते हुए कहा।

'चन्दर, हम भी सोशलिस्ट पार्टी के मेम्बर होंगे!' सुधा ने मचलते हुए कहा।

'चलो, अब तुम्हें नयी सनक सवार हुई। तुम क्या समझ रही हो सोशलिस्ट पार्टी को। राजनीतिक पार्टी है वह। यह मत करना कि सोशलिस्ट पार्टी में जाओ और लौटकर आओ तो पापा से कहो-अरे हम तो समझे पार्टी है, वहाँ चाय-पानी मिलेगा। वहाँ तो सब लोग लेक्चर देते हैं।'

'धत्, हम कोई बेवकूफ हैं क्या?' सुधा ने बिगड़कर कहा।

'नहीं, सो तो तुम बुद्धिसागर हो, लेकिन लड़कियों की राजनीतिक बुद्धि कुछ ऐसी ही होती है!' चन्दर बोला।

'अच्छा रहने दो। लड़कियाँ न हों तो काम ही न चले।' सुधा ने कहा।

'अच्छा, सुधा! आज कुछ रुपये दोगी। हमारे पास पैसे खतम हैं और सिनेमा देखना है जरा।' चन्दर ने बहुत दुलार से कहा।

'हाँ-हाँ, जरूर देंगे तुम्हें। मतलबी कहीं के!' सुधा बोली, 'अभी-अभी तुम लड़कियों की बुराई कर रहे थे न?'

'तो तुम और लड़कियों में से थोड़े ही हो। तुम तो हमारी सुधा हो। सुधा महान।'

सुधा पिघल गयी-'अच्छा, कितना लोगे?' अपनी पॉकेट में से पाँच रुपये का नोट निकालकर बोली, 'इससे काम चल जाएगा?'

'हाँ-हाँ, आज जरा सोच रहे हैं पम्मी के यहाँ जाएँ, तब सेकेंड शो जाएँ।'

'पम्मी रानी के यहाँ जाओगे। समझ गये, तभी तुमने चाचाजी से ब्याह करने से इनकार कर दिया। लेकिन पम्मी तुमसे तीन साल बड़ी है। लोग क्या कहेंगे?' सुधा ने छेड़ा।

'ऊँह, तो क्या हुआ जी! सब यों ही चलता है!'' चन्दर हँसकर टाल गया।

'तो फिर खाना यहीं खाये जाओ और कार लेते जाओ।'' सुधा ने कहा।

'मँगाओ!' चन्दर ने पलँग पर पैर फैलाते हुए कहा। खाना आ गया और जब तक चन्दर खाता रहा, सुधा सामने बैठी रही और बिनती दौड़-दौडकर पूड़ी लाती रही। जब चन्दर पम्मी के बँगले पर पहुँचा तो शाम होने में देर नहीं थी। लेकिन अभी फर्स्ट शो शुरू होने में देरी थी। पम्मी गुलाबों के बीच में टहल रही थी और बर्टी एक अच्छा-सा सूट पहने लॉन पर बैठा था और घुटनों पर ठुड्डी रखे कुछ सोच-विचार में पड़ा था। बर्टी के चेहरे पर का पीलापन भी कुछ कम था। वह देखने से इतना भयंकर नहीं मालूम पड़ता था। लेकिन उसकी आँखों का पागलपन अभी वैसा ही था और खूबसूरत सूट पहनने पर भी उसका हाल यह था कि एक कालर अन्दर था और एक बाहर।

पम्मी ने चन्दर को आते देखा तो खिल गयी। 'हल्लो, कपूर! क्या हाल है। पता नहीं क्यों आज सुबह से मेरा मन कह रहा था कि आज मेरे मित्र जरूर आएँगे और शाम के वक्त तुम तो इतने अच्छे लगते हो जैसे वह जगमग सितारा जिसे देखकर कीट्स ने अपनी आखिरी सानेट लिखी थी।' पम्मी ने एक गुलाब तोड़ा और चन्दर के कोट के बटन होल में लगा दिया। चन्दर ने बड़े भय से बर्टी की ओर देखा कि कहीं गुलाब को तोड़े जाने पर वह फिर चन्दर की गरदन पर सवार न हो जाए। लेकिन बर्टी कुछ बोला नहीं। बर्टी ने सिर्फ हाथ उठाकर अभिवादन किया और फिर बैठकर सोचने लगा।

पम्मी ने कहा, 'आओ, अन्दर चलें।' और चन्दर और पम्मी दोनों ड्राइंग रूम में बैठ गये।

चन्दर ने कहा, 'मैं तो डर रहा था कि तुमने गुलाब तोड़कर मुझे दिया तो कहीं बर्टी नाराज न हो जाए, लेकिन वह कुछ बोला नहीं।'

पम्मी मुसकरायी, 'हाँ, अब वह कुछ कहता नहीं और पता नहीं क्यों गुलाबों से उसकी तबीयत भी इधर हट गयी। अब वह उतनी परवाह भी नहीं करता।'

'क्यों?' चन्दर ने ताज्जुब से पूछा।

'पता नहीं क्यों। मेरी तो समझ में यह आता है कि उसका जितना विश्वास अपनी पत्नी पर था वह इधर धीरे-धीरे हट गया और इधर वह यह विश्वास करने लगा है कि सचमुच वह सार्जेंट को प्यार करती थी। इसलिए उसने फूलों को प्यार करना छोड़ दिया।'

'अच्छा! लेकिन यह हुआ कैसे? उसने तो अपने मन में इतना गहरा विश्वास जमा रखा था कि मैं समझता था कि मरते दम तक उसका पागलपन न छूटेगा।' चन्दर ने कहा।

'नहीं, बात यह हुई कि तुम्हारे जाने के दो-तीन दिन बाद मैंने एक दिन सोचा कि मान लिया जाए अगर मेरे और बर्टी के विचारों में मतभेद है तो इसका मतलब यह नहीं कि मैं उसके गुलाब चुराकर उसे मानसिक पीड़ा पहुँचाऊँ और उसका पागलपन और बढ़ाऊँ। बुद्धि और तर्क के अलावा भावना और सहानुभूति का भी एक महत्व मुझे लगा और मैंने फूल चुराना छोड़ दिया। दो-तीन दिन वह बेहद खुश रहा, बेहद खुश और मुझे भी बड़ा सन्तोष हुआ कि लो अब बर्टी शायद ठीक हो जाए। लेकिन तीसरे दिन सहसा उसने अपना खुरपा फेंक दिया, कई गुलाब के पौधे उखाड़कर फेंक दिये और मुझसे बोला, 'अब तो कोई फूल भी नहीं चुराता, अब भी वह इन फूलों में नहीं मिलती। वह जरूर सार्जेंट के साथ जाती है। वह मुझे प्यार नहीं करती, हरगिज नहीं करती और वह रोने लगा।'' बस उसी दिन से वह गुलाबों के पास नहीं जाता और आजकल बहुत अच्छे-अच्छे सूट पहनकर घूमता है और कहता है-क्या मैं सार्जेंट से कम सुन्दर हूँ! और इधर वह बिल्कुल पागल हो गया है। पता नहीं किससे अपने-आप लड़ता रहता है।'

चन्दर ने ताज्जुब से सिर हिलाया।

'हाँ, मुझे बड़ा दु:ख हुआ!' पम्मी बोली, 'मैंने तो, हमदर्दी की कि फूल चुराने बन्द कर दिये और उसका नतीजा यह हुआ। पता नहीं क्यों कपूर, मुझे लगता है कि हमदर्दी करना इस दुनिया में सबसे बड़ा पाप है। आदमी से हमदर्दी कभी नहीं करनी चाहिए।'

चन्दर ने सहसा अपनी घड़ी देखी।

'क्यों, अभी तुम नहीं जा सकते। बैठो और बातें सुनो, इसलिए मैंने तुम्हें दोस्त बनाया है। आज दो-तीन साल हो गये, मैंने किसी से बातें ही नहीं की हैं और तुमसे इसलिए मैने मित्रता की है कि बातें करूँगी।'

चन्दर हँसा, 'आपने मेरा अच्छा उपयोग ढूँढ़ निकाला।'

'नहीं, उपयोग नहीं, कपूर! तुम मुझे गलत न समझना। जिंदगी ने मुझे इतनी बातें बतायी हैं और यह किताबें जो मैं इधर पढ़ने लगी हूँ, इन्होंने मुझे इतनी बातें बतायी हैं कि मैं चाहती हूँ कि उन पर बातचीत करके अपने मन का बोझ हल्का कर लूँ और तुम्हें बैठकर सुननी होंगी सभी बातें!'

'हाँ, मैं तैयार हूँ लेकिन किताबें पढ़नी कब से शुरू कर दीं तुमने?' चन्दर ने ताज्जुब से पूछा।

'अभी उस दिन मैं डॉ. शुक्ला के यहाँ गयी। उनकी लड़की से मालूम हुआ कि तुम्हें कविता पसन्द है। मैंने सोचा, उसी पर बातें करूँ और मैंने कविताएँ पढ़नी शुरू कर दीं।'

'अच्छा, तो देखता हूँ कि दो-तीन हफ्ते में भाई और बहन दोनों में कुछ परिवर्तन आ गये।'

पम्मी कुछ बोली नहीं, हँस दी।

'मैं सोचता हूँ पम्मी कि आज सिनेमा देखने जाऊँ। कार है साथ में, अभी पन्द्रह मिनट बाकी है। चाहो तो चलो।'

'सिनेमा! आज चार साल से मैं कहीं नहीं गयी हूँ। सिनेमा, हौजी, बाल डांस-सभी जगह जाना बन्द कर दिया है मैंने। मेरा दम घुटेगा हॉल के अन्दर लेकिन चलो देखें, अभी भी कितने ही लोग वैसे ही खुशी से सिनेमा देखते होंगे।' एक गहरी साँस लेकर पम्मी बोली, 'बर्टी को ले चलोगे?'

'हाँ, हाँ! तो चलो उठो, फिर देर हो जाएगी!' चन्दर ने घड़ी देखते हुए कहा।

पम्मी फौरन अन्दर के कमरे में गयी और एक जार्जेट का हल्का भूरा गाउन पहनकर आयी। इस रंग से वह जैसे निखर आयी। चन्दर ने उसकी ओर देखा, तो वह लजा गयी और बोली, 'इस तरह से मत देखो। मैं जानती हूँ यह मेरा सबसे अच्छा गाउन है। इसमें कुछ अच्छी लगती होऊँगी। चलो!' और आकर उसने बेतकल्लुफी से उसके कन्धे पर हाथ रख दिया।

दोनों बाहर आये तो बर्टी लॉन पर घूम रहा था। उसके पैर लड़खड़ा रहे थे। लेकिन वह बड़ी शान से सीना ताने था। 'बर्टी, आज मिस्टर कपूर मुझे सिनेमा दिखलाने जा रहे हैं। तुम भी चलोगे?'

'हूँ!' बर्टी ने सिर हिलाकर जोर से कहा, 'सिनेमा जाऊँगा? कभी नहीं। भूलकर भी नहीं। तुमने मुझे क्या समझा है? मैं सिनेमा जाऊँगा?' धीरे-धीरे उसका स्वर मन्द पड़ गया...'अगर सिनेमा में वह सार्जेंट के साथ मिल गयी तो! तो मैं उसका गला घोंट दूँगा।' अपने गले को दबाते हुए बर्टी बोला और इतनी जोर से दबा दिया अपना गला कि आँखें लाल हो गयीं और खाँसने लगा। खाँसी बन्द हुई तो बोला, 'वह मुझे प्यार नहीं करती। वह सार्जेंट को प्यार करती है। वह उसी के साथ घूमती है। अगर वह मिल जाएगी सिनेमा में तो उसकी हत्या

कर डालूँगा, तो पुलिस आएगी और खेल खत्म हो जाएगा। तुम जानते हो मि. कपूर, मैं उससे कितना नफरत करता हूँ...और...और लेकिन नहीं, कौन जानता है मैं नफरत करता होऊँ और वह मुझे...कुछ समझ में नहीं आता, मैं पागल हूँ, ओफ।' और वह सिर थामकर बैठ गया।

पम्मी ने चन्दर का हाथ पकडकर कहा, 'चलो, यहाँ रहने से उसका दिमाग और खराब होगा। आओ!'

दोनों जाकर कार में बैठे। चन्दर खुद ही ड्राइव कर रहा था। पम्मी बोली, 'बहुत दिन से मैंने कार नहीं ड्राइव की है। लाओ, आज ड्राइव करूँ।'

पम्मी ने स्टीयरिंग अपने हाथ में ले ली। चन्दर इधर बैठ गया।

थोड़ी देर में कार रीजेंट के सामने जा पहुँची। चित्र था–'सेलामी, ह्वेयर शी डांस्ड' ('सेलामी, जहाँ वह नाची थी')। चन्दर ने टिकट लिया और दोनों ऊपर बैठ गये। अभी न्यूज रील चल रही थी। सहसा पम्मी ने कहा, 'कपूर, सेलामी की कहानी मालूम है?'

'न! क्या यह कोई उपन्यास है!'' चन्दर ने पूछा।

'नहीं, यह बाइबिल की एक कहानी है। असल में एक राजा था हैराद। उसने अपने भाई को मारकर उसकी पत्नी से अपनी शादी कर ली। उसकी भतीजी थी सेलामी, जो बहुत सुन्दर थी और बहुत अच्छा नाचती थी। हैराद उस पर मुग्ध हो गया। लेकिन सेलामी एक पैगम्बर पर मुग्ध थी। पैगम्बर ने सेलामी के प्रणय को ठुकरा दिया। एक बार हैराद ने सेलामी से कहा कि यदि तुम नाचो तो मैं तुम्हें कुछ दे सकता हूँ। सेलामी नाची और पुरस्कार में उसने अपना अपमान करने वाले पैगम्बर का सिर माँगा! हैराद वचनबद्ध था। उसने पैगम्बर का सिर तो दे दिया लेकिन बाद में इस भय से कि कहीं राज्य पर कोई आपत्ति न आये, उसने सेलामी को भी मरवा डाला।'

चन्दर को यह कहानी बहुत अच्छी लगी। तब तो चित्र बहुत ही अच्छा होगा, उसने सोचा। सुधा की परीक्षा है वरना सुधा को भी दिखला देता। लेकिन क्या नैतिकता है इन पाश्चात्य देशों की कि अपनी भतीजी पर ही हैराद मुग्ध हो गया। उसने कहा पम्मी से–

'लेकिन हैराद अपनी भतीजी पर ही मुग्ध हो गया?'

'तो क्या हुआ! यह तो सेक्स है मि. कपूर। सेक्स कितनी भयंकर शक्तिशाली भावना है, यह भी शायद तुम नहीं समझते। अभी तुम्हारी आँखों में बड़ा भोलापन है। तुम रूप की आग के संसार से दूर मालूम पड़ते हो, लेकिन

शायद दो-एक साल बाद तुम भी जानोगे कि यह कितनी भयंकर चीज है। आदमी के सामने वक्त-बेवक्त, नाता-रिश्ता, मर्यादा-अमर्यादा कुछ भी नहीं रह जाता। वह अपनी भतीजी पर मोहित हुआ तो क्या? मैंने तो तुम्हारे यहाँ एक पौराणिक कहानी पढ़ी थी कि महादेव अपनी लड़की सरस्वती पर मुग्ध हो गये।'

'महादेव नहीं, ब्रह्मा।' चन्दर बोला।

'हाँ, हाँ, ब्रह्माड्ढ। मैं भूल गयी थी। तो यह तो सेक्स है। आदमी को कहाँ ले जाता है, यह अन्दाज भी नहीं किया जा सकता। तुम तो अभी बच्चों की तरह भोले हो और ईश्वर न करे तुम कभी इस प्याले का शरबत चखो। मैं भी तो तुम्हारी इसी पवित्रता को प्यार करती हूँ।' पम्मी ने चन्दर की ओर देखकर कहा, 'तुम जानते हो, मैंने तलाक क्यों दिया? मेरा पति मुझे बहुत चाहता था लेकिन मैं विवाहित जीवन के वासनात्मक पहलू से घबरा उठी! मुझे लगने लगा, मैं आदमी नहीं हूँ बस मांस का लोथड़ा हूँ जिसे मेरा पति जब चाहे मसल दे, जब चाहे...ऊब गयी थी! एक गहरी नफरत थी मेरे मन में। तुम आये तो तुम बड़े पवित्र लगे। तुमने आते ही प्रणय-याचना नहीं की। तुम्हारी आँखों में भूख नहीं थी। हमदर्दी थी, स्नेह था, कोमलता थी, निश्छलता थी। मुझे तुम काफी अच्छे लगे। तुमने मुझे अपनी पवित्रता देकर जिला दिया...।'

चन्दर को एक अजब-सा गौरव अनुभव हुआ और पम्मी के प्रति एक बहुत ऊँची आदर-भावना। उसने पवित्रता देकर जिला दिया। सहसा चन्दर के मन में आया-लेकिन यह उसके व्यक्तित्त्व की पवित्रता किसकी दी हुई है। सुधा की ही न! उसी ने तो उसे सिखाया है कि पुरुष और नारी में कितने ऊँचे सम्बन्ध रह सकते हैं।

'क्या सोच रहे हो?' पम्मी ने अपना हाथ कपूर की गोद में रख दिया।

कपूर सिहर गया लेकिन शिष्टाचारवश उसने अपना हाथ पम्मी के कन्धे पर रख दिया। पम्मी ने दो क्षण के बाद अपना हाथ हटा लिया और बोली, 'कपूर, मैं सोच रही हूँ अगर यह विवाह संस्था हट जाए तो कितना अच्छा हो। पुरुष और नारी में मित्रता हो। बौद्धिक मित्रता और दिल की हमदर्दी। यह नहीं कि आदमी औरत को वासना की प्यास बुझाने का प्याला समझे और औरत आदमी को अपना मालिक। असल में बँधने के बाद ही, पता नहीं क्यों सम्बन्धों में विकृति आ जाती है। मैं तो देखती हूँ कि प्रणय विवाह भी होते हैं तो वह असफल हो जाते हैं क्योंकि विवाह के पहले आदमी औरत को ऊँची निगाह से देखता है, हमदर्दी और प्यार की चीज समझता है और विवाह के

बाद सिर्फ वासना की। मैं तो प्रेम में भी विवाह-पक्ष में नहीं हूँ और प्रेम में भी वासना का विरोध करती हूँ।'

'लेकिन हर लड़की ऐसी थोड़े ही होती है!'' चन्दर बोला, 'तुम्हें वासना से नफरत हो लेकिन हर एक को तो नहीं।'

'हर एक को होती है। लड़कियाँ बस वासना की झलक, एक हल्की सिहरन, एक गुदगुदी पसन्द करती हैं। बस, उसी के पीछे उन पर चाहे जो दोष लगाया जाय लेकिन अधिकतर लड़कियाँ कम वासनाप्रिय होती हैं, लड़के ज्यादा।'

चित्र शुरू हो गया। वह चुप हो गयी। लेकिन थोड़ी ही देर में मालूम हुआ कि चित्र भ्रमात्मक था। वह बाइबिल की सेलामी की कहानी नहीं थी। वह एक अमेरिकन नर्तकी और कुछ डाकुओं की कहानी थी। पम्मी ऊब गयी। अब जब डाकू पकड़कर सेलामी को एक जंगल में ले गये तो इंटरवल हो गया और पम्मी ने कहा, 'अब चलो, आधे ही चित्र से तबीयत ऊब गयी।'

दोनों उठ खड़े हुए और नीचे आये।

'कपूर, अबकी बार तुम ड्राइव करो!'' पम्मी बोली।

'नहीं, तुम्हीं ड्राइव करो' कपूर बोला।

'कहाँ चलें,' पम्मी ने स्टार्ट करते हुए कहा।

'जहाँ चाहो।' कपूर ने विचारों में डूबे हुए कहा।

पम्मी ने गाड़ी खूब तेज चला दी। सड़कें साफ थीं। पम्मी का कालर फहराने लगा और उड़कर चन्दर के गालों पर थपकियाँ लगाने लगा। चन्दर दूर खिसक गया। पम्मी ने चन्दर की ओर देखा और बजाय कालर ठीक करने के, गले का एक बटन और खोल दिया और चन्दर को पास खींच लिया। चन्दर चुपचाप बैठ गया। पम्मी ने एक हाथ स्टीयरिंग पर रखा और एक हाथ से चन्दर का हाथ पकड़े रही जैसे वह चन्दर को दूर नहीं जाने देगी। चन्दर के बदन में एक हल्की सिहरन नाच रही थी। क्यों? शायद इसलिए कि हवा ठंडी थी या शायद इसलिए कि...उसने पम्मी का हाथ अपने हाथ से हटाने की कोशिश की। पम्मी ने हाथ खींच लिया और कार के अन्दर की बिजली जला दी।

कपूर चुपचाप ठाकुर साहब के बारे में सोचता रहा। कार चलती रही। जब चन्दर का ध्यान टूटा तो उसने देखा कार मैकफर्सन लेक के पास रुकी है।

दोनों उतरे। बीच में सड़क थी, इधर नीचे उतरकर झील और उधर गंगा बह रही थी। आठ बजा होगा। रात हो गयी थी, चारों तरफ सन्नाटा था। बस

सितारों की हल्की रोशनी थी। मैकफर्सन झील काफी सूख गयी थी। किनारे-किनारे मछली मारने के मचान बने थे।

'इधर आओ!' पम्मी बोली और दोनों नीचे उतरकर मचान पर जा बैठे। पानी का धरातल शान्त था। सिर्फ कहीं-कहीं मछलियों के उछलने या साँस लेने से पानी हिल जाता था। पास ही के नीवाँ गाँव में किसी के यहाँ शायद शादी थी जो शहनाई का हल्का स्वर हवाओं की तरंगों पर हिलता-डुलता हुआ आ रहा था। दोनों चुपचाप थे। थोड़ी देर बाद पम्मी ने कहा, 'कपूर, चुपचाप रहो, कुछ बात मत करना। उधर देखो पानी में। सितारों का प्रतिबिम्ब देख रहे हो। चुप्पे से सुनो, ये सितारे क्या बातें कर रहे हैं।'

पम्मी सितारों की ओर देखने लगी। कपूर चुपचाप पम्मी की ओर देखता रहा। थोड़ी देर बाद सहसा पम्मी एक बाँस से टिककर बैठ गयी। उसके गले के दो बटन खुले हुए थे और उसमें से रूप की चाँदनी फटी पड़ती थी। पम्मी आँखें बन्द किये बैठी थी। चन्दर ने उसकी ओर देखा और फिर जाने क्यों उससे देखा नहीं गया। वह सितारों की ओर देखने लगा। पम्मी के कालर के बीच से सितारे टूट-टूटकर बरस रहे थे।

सहसा पम्मी ने आँखें खोल दीं और चन्दर का कन्धा पकड़कर बोली, 'कितना अच्छा हो अगर आदमी हमेशा सम्बन्धों में एक दूरी रखे। सेक्स न आने दे। ये सितारे हैं, देखो कितने नजदीक हैं। करोड़ों बरस से साथ हैं, लेकिन कभी भी एक दूसरे को छूते तक नहीं, तभी तो संग निभ जाता है।'' सहसा उसकी आवाज में जाने क्या छलक आया कि चन्दर जैसे मदहोश हो गया-बोली वह-'बस ऐसा हो कि आदमी अपने प्रेमास्पद को निकटतम लाकर छोड़ दे, उसको बाँधे न। कुछ ऐसा हो कि होठों के पास खींचकर छोड़ दे।'' और पम्मी ने चन्दर का माथा होठों तक लाकर छोड़ दिया। उसकी गरम-गरम साँसें चन्दर की पलकों पर बरस गयीं...'कुछ ऐसा हो कि आदमी उसे अपने हृदय तक खींचकर फिर हटा दे।'' और चन्दर को पम्मी ने अपनी बाँहों में घेरकर अपने वक्ष तक खींचकर छोड़ दिया। वक्ष की गरमाई चन्दर के रोम-रोम में सुलग उठी, वह बेचैन हो उठा। उसके मन में आया कि वह अभी यहाँ से चला जाए। जाने कैसा लग रहा था उसे। सहसा पम्मी बोली, 'लेकिन नहीं, हम लोग मित्र हैं और कपूर, तुम बहुत पवित्र हो, निष्कलंक हो और तुम पवित्र रहोगे। मैं जितनी दूरी, जितना अन्तर, जितनी पवित्रता पसन्द करती हूँ, वह तुममें है और हम लोगों में हमेशा निभेगी जैसे इन सितारों में हमेशा निभती आयी है।'

चन्दर चुपचाप सोचने लगा, 'वह पवित्र है। एकाएक उसका मन जैसे ऊबने लगा। जैसे एक विहग शिशु घबराकर अपने नीड़ के लिए तड़प उठता है, वैसे ही वह इस वक्त तड़प उठा सुधा के पास जाने के लिए–क्यों? पता नहीं क्यों? यहाँ कुछ है, जो उसे जकड़ लेना चाहता है। वह क्या करे?

पम्मी उठी, वह भी उठा। बाँस का मचान हिला। लहरों में हरकत हुई। करोड़ों साल से अलग और पवित्र सितारे हिले, आपसे में टकराये और चूर–चूर होकर बिखर गये।

रात–भर चन्दर को ठीक से नींद नहीं आयी। अब गरमी काफी पड़ने लगी थी। एक सूती चादर से ज्यादा नहीं ओढ़ा जाता था और चन्दर ने वह भी ओढ़ना छोड़ दिया था, लेकिन उस दिन रात को अक्सर एक अजब–सी कँपकँपी उसे झकझोर जाती थी और वह कसकर चादर लपेट लेता था, फिर जब उसकी तबीयत घुटने लगती तो वह उठ बैठता था। उसे रात–भर नींद नहीं आयी, बार–बार झपकी आयी और लगा कि खिड़की के बाहर सुनसान अँधेरे में से अजब–सी आवाजें आती हैं और नागिन बनकर उसकी साँसों में लिपट जाती हैं। वह परेशान हो उठता है, इतने में फिर कहीं से कोई मीठी सतरंगी संगीत की लहर आती है और उसे सचेत और सजग कर जाती है। एक बार उसने देखा कि सुधा और गेसू कहीं चली जा रही हैं। उसने गेसू को कभी नहीं देखा था लेकिन उसने सपने में गेसू को पहचान लिया। लेकिन गेसू तो पम्मी की तरह गाउन पहने हुए थी! फिर देखा बिनती रो रही है और इतना बिलख–बिलखकर रो रही है कि तबीयत घबरा जाए। घर में कोई नहीं है। चन्दर समझ नहीं पाता कि वह क्या करे! अकेले घर में एक अपरिचित लड़की से बोलने का साहस भी नहीं होता उसका। किसी तरह हिम्मत करके वह समीप पहुँचा तो देखा अरे, यह तो सुधा है। सुधा लुटी हुई–सी मालूम पड़ती है। वह बहुत हिम्मत करके सुधा के पास बैठ गया। उसने सोचा, सुधा को आश्वासन दे लेकिन उसके हाथों पर जाने कैसे सुकुमार जंजीरें कसी हुई हैं। उसके मुँह पर किसी की साँसों का भार है। वह निश्चेष्ट है। उसका मन अकुला उठा। वह चौंककर जाग गया तो देखा वह पसीने से तर है। वह उठकर टहलने लगा। वह जाग गया था लेकिन फिर भी उसका मन स्वस्थ नहीं था। कमरे में ही टहलते–टहलते वह फिर लेट गया। लगा जैसे सामने की खुली खिड़की से सैकड़ों तारे टूट–टूटकर भयानक तेजी से आ रहे हैं और उसके माथे से टकरा–टकराकर चूर–चूर हो जाते हैं। एक मर्मान्तक पीड़ा उसकी नसों में खौल उठी और लगा जैसे उसके अंग–अंग में चिताएँ धधक रही हैं।

जैसे-तैसे रात कटी और सुबह उठते ही वह यूनिवर्सिटी जाने से पहले सुधा के यहाँ गया। सुधा लेटी हुई पढ़ रही थी। डॉ. शुक्ला पूजा कर रहे थे। बुआजी शायद रात को चली गयी थीं। क्योंकि बिनती बैठी तरकारी काट रही थी और खुश नजर आ रही थी। चन्दर सुधा के कमरे में गया। देखते ही सुधा मुसकरा पड़ी। बोली कुछ नहीं लेकिन आते ही उसने चन्दर के अंग-अंग को अपनी निगाहों के स्वागत में समेट लिया। चन्दर सुधा के पैरों के पास बैठ गया।

'कल रात को तुम कार लेकर वापस आये तो चुप्पे से चले गये!' सुधा बोली, 'कहो, कल कौन-सा खेल देखा?'

'कल बहुत बड़ा खेल देखाय बहुत बड़ा खेल, सुधी!' चन्दर व्याकुलता से बोला, 'अरे जाने कैसा मन हो गया कि रात-भर नींद ही नहीं आयी।' और उसके बाद चन्दर सब बता गया। कैसे वह सिनेमा गया। उसने पम्मी से क्या बात की। उसके बाद कैसे कार पर उसने चन्दर को पास खींच लिया। कैसे वे लोग मैकफर्सन झील गये और वहाँ पम्मी पागल हो गयी। फिर कैसे चन्दर को एकदम सुधा की याद आने लगी और फिर रात-भर चन्दर को कैसे-कैसे सपने आये। सुधा बहुत गम्भीर होकर मुँह में पेन्सिल दबाये कुहनी टेके बस चुपचाप सुनती रही और अन्त में बोली, 'तो तुम इतने परेशान क्यों हो गये, चन्दर! उसने तो अच्छी ही बात कही थी। यह तो अच्छा ही है कि ये सब जिसे तुम सेक्स कहते हो, यह सम्बन्धों में न आए। उसमें क्या बुराई है? क्या तुम चाहते हो कि सेक्स आए?'

'कभी नहीं, तुम मुझे अभी तक नहीं समझ पायीं।'

'तो ठीक है, तुम भी नहीं चाहते कि सेक्स आए और वह भी नहीं चाहती कि सेक्स आए तो झगड़ा क्या है? क्यों, तुम उदास क्यों हो इतने?' सुधा बोली बड़े अचरज से।

'लेकिन उसका व्यवहार कैसा है?' चन्दर ने सुधा से कहा।

'ठीक तो है। उसने बता दिया तुम्हें कि इतना अन्तर होना चाहिए। समझ गये। तुम लालची आदमी, चाहते होगे यह भी अन्तर न रहे! इसीलिए तुम उदास हो गये, छिह!'' होंठों में मुसकराहट और आँखों में शरारत की झलक छिपाते हुए सुधा बोली।

'तुम तो मजाक करने लगीं।' चन्दर बोला।

सुधा सिर्फ चन्दर की ओर देखकर मुसकराती रही। चन्दर सामने लगी हुई तसवीर की ओर देखता रहा। फिर उसने सुधा के कबूतरों-जैसे उजले मासूम नन्हे

पैर अपने हाथ में ले लिये और भर्रायी हुई आवाज में बोला, 'सुधा, तुम कभी हम पर विश्वास न हार बैठना।'

सुधा ने किताब बन्द करके रख दी और उठकर बैठ गयी। उसने चन्दर के दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर कहा, 'पागल कहीं के! हमें कहते हो, अभी सुधा में बचपन है और तुममें क्या है! वाह रे छुईमुई के फूल! किसी ने हाथ पकड़ लिया, किसी ने बदन छू लिया तो घबरा गये! तुमसे अच्छी लड़कियाँ होती हैं।' सुधा ने उसके दोनों हाथ झकझोरते हुए कहा।

'नहीं सुधी, तुम नहीं समझतीं। मेरी जिंदगी में एक ही विश्वास की चट्टान है। वह हो तुम। मैं जानता हूँ कि कितने ही जल-प्रलय हों लेकिन तुम्हारे सहारे मैं हमेशा ऊपर रहूँगा। तुम मुझे डूबने नहीं दोगी। तुम्हारे ही सहारे मैं लहरों से खेल भी सकता हूँ। लेकिन तुम्हारा विश्वास अगर कभी हिला तो मैं किन अँधेरी गहराइयों में डूब जाऊँगा, यह कभी मैं सोच नहीं पाता।' चन्दर ने बड़े कातर स्वर में कहा।

सुधा बहुत गम्भीर हो गयी। क्षण-भर वह चन्दर के चेहरे की ओर देखती रही, फिर चन्दर के माथे पर झूलती हुई एक लट को ठीक करती हुई बोली, 'चन्दर और मैं किसके विश्वास पर चल रही हूँ, बोलो! लेकिन मैंने तो कभी नहीं कहा कि चन्दर अपना विश्वास मत हारना! और क्या कहूँ। मुझे अपने चन्दर पर पूरा विश्वास है। मरते दम तक विश्वास रहेगा। फिर तुम्हारा मन इतना डगमगा क्यों गया? बुरी बात है न?'

चन्दर ने सुधा के कन्धे पर अपना सिर रख दिया। सुधा ने उसका हाथ लेकर कहा, 'लाओ, यहाँ छुआ था पम्मी ने तुम्हें!'' और उसका हाथ होठों तक ले गयी। चन्दर काँप गया, आज सुधा को यह क्या हो गया है। लेकिन होंठों तक हाथ ले जाकर झाड़ने-फूँकनेवालों की तरह सुधा ने फूँककर कहा, 'जाओ, तुम्हारे हाथ से पम्मी के स्पर्श का जहर उतर गया। अब तो ठीक हो गये! पवित्र हो गये! छू-मन्तर!'

चन्दर हँस पड़ा। उसका मन शान्त हो गया। सुधा में जादू था। सचमुच जादू था। बिनती चाय ले आयी। दो प्याले। सुधा बोली, 'अपने लिए भी लाओ।' बिनती ने सिर हिलाया।

सुधा ने चन्दर की ओर देखकर कहा, 'ये पगली जाने क्यों तुमसे झेंपती है?'

'झेंपती कहाँ हूँ?' बिनती ने प्रतिवाद किया और प्याला भी ले आयी और जमीन पर बैठ गयी। सुधा ने प्याला मुँह से लगाया और बोली, 'चन्दर, तुमने पम्मी को गलत समझा है। पम्मी बहुत अच्छी लड़की है। तुमसे बड़ी भी है और तुमसे ज्यादा समझदार और उसी तरह व्यवहार भी करती है। तुम अगर कुछ सोचते हो तो गलत सोचते हो। मेरा मतलब समझ गये न।'

'जी हाँ, गुरुआनीजी, अच्छी तरह से!' चन्दर ने हाथ जोडकर विनम्रता से कहा। बिनती हँस पड़ी और उसकी चाय छलक गयी। नीचे रखी हुई चन्दर की जरीदार पेशावरी सैंडिल भीग गयी। बिनती ने झुककर एक अँगोछे से उसे पोंछना चाहा तो सुधा चिल्ला उठी–'हाँ–हाँ, छुओ मत। कहीं इनकी सैंडिल भी बाद में आके न रोने लगे। सुन बिनती, एक लड़की ने कल इन्हें छू लिया तो आप आज उदास थे। अभी तुम सैंडिल छुओ तो कहीं जाके कोतावली में रपट न कर दें।'

चन्दर हँस पड़ा और उसका मन धुलकर ऐसे निखर गया जैसे शरद का नीलाभ आकाश।

'अब पम्मी के यहाँ कब जाओगे?' सुधा ने शरारत–भरी मुसकराहट से पूछा।

'कल जाऊँगा! ठाकुर साहब पम्मी के हाथ अपनी कार बेच रहे हैं तो कागज पर दस्तखत करना है।' चन्दर ने कहा, 'अब मैं निडर हूँ। कहो बिनती, तुम्हारे ससुर का क्या कोई खत नहीं आया।'

बिनती झेंप गयी। चन्दर चल दिया।

थोड़ी दूर जाकर फिर मुड़ा और बोला, 'अच्छा सुधा, आज तक जो काम हो बता दो फिर एक महीने तक मुझसे कोई मतलब नहीं। हम थीसिस पूरी करेंगे। समझीं?'

'समझे!' हाथ पटककर सुधा बोली।

सचमुच डेढ़ महीने तक चन्दर को होश नहीं रहा कि कहाँ क्या हो रहा है। बिसरिया रोज सुधा और बिनती को पढ़ाने आता रहा, सुधा और बिनती दोनों ही का इम्तहान खत्म हो गया। पम्मी दो बार सुधा और चन्दर से मिलने आयी लेकिन चन्दर एक बार भी उसके यहाँ नहीं गया। मिश्रा का एक खत बरेली से आया लेकिन चन्दर ने उसका भी जवाब नहीं दिया। डॉक्टर साहब ने अपनी पुस्तक के दो अध्याय लिख डाले लेकिन उसने एक दिन भी बहस नहीं की। बिनती उसे बराबर चाय, दूध, नाश्ता, शरबत और खरबूजा देती रही लेकिन चन्दर ने एक बार भी उसके ससुर का नाम लेकर नहीं चिढ़ाया। सुधा क्या करती है,

कहाँ जाती है, चन्दर से क्या कहती है, चन्दर को कोई होश नहीं, बस उसका पेन, उसके कागज, स्टडीरूम की मेज और चन्दर है कि आखिर थीसिस पूरी करके ही माना।

7 मई को जब उसने थीसिस का आखिरी पन्ना लिखकर पूरा किया और सन्तोष की साँस ली तो देखा कि शाम के पाँच बजे हैं, सायबान में अभी परदा पड़ा है, लेकिन धूप उतार पर है और लू बन्द हो गयी है। उसकी कुर्सी के पीछे एक चटाई बिछाये हुए सुधा बैठी है। ह्यूगो का अधपढ़ा हुआ उपन्यास बगल में खुला हुआ औंधा पड़ा है और आप चन्दर की एक मोटी-सी इकोनॉमिक्स की किताब खोले उस पर कलम से कुछ गोदा-गोदी कर रही है।

'सुधा!' एक गहरी साँस लेकर अँगड़ाई लेते हुए चन्दर ने कहा, 'लो, आज आखिरकार जान छूटी। बस, अब दो-तीन महीने में माबदौलत डॉक्टर बन जाएँगे!'

सुधा अपने कार्य में व्यस्त। चन्दर ने क्या कहा, यह सुनकर भी गुम। चन्दर ने हाथ बढ़ाकर चोटी झटक दी। 'हाय रे! हमें नहीं अच्छा लगता, चन्दर!' सुधा बिगडकर बोली, 'तुम्हारे काम के बीच में कोई बोलता है तो बिगड़ जाते हो और हमारा काम थोड़े ही महत्वपूर्ण है!'' कहकर सुधा फिर पेन लेकर गोदने लगी।

'आखिर कौन-सा उपनिषद लिख रही हैं आप? जरा देखें तो!' चन्दर ने किताब खींच ली। टाजिग की इकोनॉमिक्स की किताब में एक पूरे पन्ने पर सुधा ने एक बिल्ली बनायी थी और अगर निगाह जरा चूक जाए तो आप कह नहीं सकते थे यह चौरासी लाख योनियों में से किस योनि का जीव है, लेकिन चूँकि सुधा कह रही है कि यह बिल्ली है, इसलिए मानना होगा कि यह बिल्ली ही है।

चन्दर ने सुधा की बाँह पकडकर कहा, 'उठ! आलसी कहीं की, चल उठा ये पोथा! चलके पापा के पैर छू आएँ?'

सुधा चुपचाप उठी और आज्ञाकारी लड़की की तरह मोटी फाइल उठा ली। दरवाजे तक पहुँचकर रुक गयी और चन्दर के कन्धे पर फाइलें टिकाकर बोली, 'ऐ चन्दर, तो सच्ची अब तुम डॉक्टर हो जाओगे?'

'और क्या?'

'आहा!' कहकर जो सुधा उछली तो फाइल हाथ से खिसकी और सभी पन्ने जमीन पर।

चन्दर झल्ला गया। उसने गुस्से से लाल होकर एक घूँसा सुधा को मार दिया। 'अरे राम रे!' सुधा ने पीठ सीधी करते हुए कहा, 'बड़े परोपकारी हो डॉक्टर चन्दर कपूर! हमें बिना थीसिस लिखे डिग्री दे दी! लेकिन बहुत जोर की थी!'

चन्दर हँस पड़ा।

खैर दोनों पापा के पास गये। वे भी लिखकर ही उठे थे और शरबत पी रहे थे। चन्दर ने जाकर कहा, 'पूरी हो गयी।' और झुककर पैर छू लिये। उन्होंने चन्दर को सीने से लगाकर कहा, 'बस बेटा, अब तुम्हारी तपस्या पूरी हो गयी। अब जुलाई से यूनिवर्सिटी में जरूर आ जाओगे तुम!'

सुधा ने पोथा कोच पर रख दिया और अपने पैर बढ़ाकर खड़ी हो गयी। 'ये क्या?' पापा ने पूछा।

'हमारे पैर नहीं छुएँगे क्या?' सुधा ने गम्भीरता से कहा।

'चल पगली! बहुत बदतमीज होती जा रही है!' पापा ने कृत्रिम गुस्से से कहा, 'चन्दर! बहुत सिर चढ़ी हो गयी है। जरा दबाकर रखा करो। तुमसे छोटी है कि नहीं?'

'अच्छा पापा, अब आज मिठाई मिलनी चाहिए।' सुधा बोली, 'चन्दर ने थीसिस खत्म की है?'

'जरूर, जरूर बेटी!' डॉक्टर शुक्ला ने जेब से दस का नोट निकालकर दे दिया, 'जाओ, मिठाई मँगवाकर खाओ तुम लोग।'

सुधा हाथ में नोट लिये उछलते हुए स्टडी रूम में आयी, पीछे-पीछे चन्दर। सुधा रुक गयी और अपने मन में हिसाब लगाते हुए बोली, 'दस रुपये पौंड ऊन। एक पौंड में आठ लच्छी। छह लच्छी में एक शाल। बाकी बची दो लच्छी। दो लच्छी में एक स्वेटर। बस एक बिनती का स्वेटर, एक हमारा शाल।'

चन्दर का माथा ठनका। अब मिठाई की उम्मीद नहीं। फिर भी कोशिश करनी चाहिए।

'सुधा, अभी से शाल का क्या करोगी? अभी तो बहुत गरमी है!' चन्दर बोला।

❐❐❐